दो शब्द

हिन्दी-साहित्य मे श्री गोविंदवल्लभ पंत का एक विशिष्ट स्थान है। उनके लिखे मदारी, अभिताभ, यामिनी, तारिका आदि दर्जनो उपन्यास और अगूर की बेटी, अत पुर का छिद्र, वरमाला तथा राजमुकुट नाटक हिन्दी भाषा की स्थायी धरोहर बन गये हैं। आकर्षक शैली और भाव-विन्यास की अद्भुत क्षमता द्वारा पन्त जी किसी भी कथानक को सजीव बनाकर पूर्णाकार मे हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं।

नूरजहाँ उनका ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो चुका है। द्वितीय सस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस उपन्यास मे प्राण, जैसा पुस्तक के शीर्षक से स्पष्ट है, नूरजहाॅ है। इस उपन्यास मे उस भारती रमणी का चरित्र-चित्रण है, जिसने मुगलवंश के न्यायप्रिय, उदार-चित्त और प्रेमी राजकुमार सलीम को आरभ से अत तक अपने सौदर्य, अपने शौर्य, अपनी योग्यता और अपनी कार्य-कुशलता से विमोहित रक्खा और अत तक साम्राज्य की बाग-डोर धैर्य तथा नीतिज्ञता के बल पर अपने हाथो मे रखी।

ऐतिहासिक उपन्यासो मे सफलता का चरम-सत्य तत्कालीन वातावरण का सृजन और पात्रो के मनोभावो का सही-सही चित्रण माना गया है। पात्र और वातावरण एक-रस हो, तो स्वाभाविकता हृदय को स्पर्श कर लेती है, अनुभूतियाॅ शरद् के प्रात.कालीन गुलाब-सी विहस उठती है। नूरजहाॅ पन्त जी का सफल प्रयत्न है। भाषा, भाव और भाव-विन्यास तो है ही, मुगलकालीन रीति-रिवाज और ऐतिहासिक वातावरण के सृजन मे जो निष्ठा बरती गई है, उसने उपन्यास की आत्मा को अनुप्राणित कर दिया है।

हिन्दी-जगत ने जिस उत्साह से इस कृति का स्वागत किया है, उससे उत्साहित होकर ही हम यह द्वितीय सँस्करण अधिक सज-धज के साथ निकाल रहे है। आशा है प्रेमी पाठक इस नवीन आकृति का भी उसी उत्साह से स्वागत करगे।

—दुलारेलाल

[१]

"नही मेहेर, उधर न जाओ।"

दासी का वर्जन पाकर वह उदीयमान यौवना, चपला सहम उठी। बि[illegible]सी यह विचार-धारा उसके मानस मे चमक "बकने भी दो, उठी—अपने ही भय से बुझी हुई इस दासी की लड़की को। यह जान क्या सकती है मेरे रूप के स्वप्नों को। सम्राट् का कोई निषेध नही है यहाँ पर। हम उनके राजभवन के बाहर हैं।" उस सुंदरी ने साहस एकत्र किया। एक अज्ञात आकाक्षा से खिंची हुई वह आगे बढ़ी। उसने दासी के अनुरोध की उपेक्षा कर दी।

सम्राट् अकबर के राजप्रासाद के सिंहद्वार के बाहर द्वारपाल की एक छोटी-सी कुटिया थी। उसमे वह अपने परिवार के साथ रहता था। दासी तेहरान से नवागत मिर्जा की लडकी थी। वह सभ्रात पर आर्थिक सकटो मे घिरा हुआ साहसी मनुष्य, अनेक गिरि, वनो, मरु और सरिताओं को पार करता हुआ इतनी दूर भारतवर्ष मे चला आया था, मुग़ल सम्राटो के उस विभव-राज्य की देश-देशातर मे फैली हुई कीर्ति को सुनकर। उसकी स्त्री का [illegible] हो गया था। एक पुत्र और एक कन्या उसके साथ थे। दोनो की अवस्था विवाह के योग्य थी। मिर्ज़ा ने फिर विवाह

नही किया। अकबर के दरबार मे उसे नौकरी मिल गई थी। वह दासी उसी की है। द्वारपाल की स्त्री से उसका पीहर का सबध है।

निकट ही एक छोटे-से सरोवर मे अत पुर के कुछ प्रतिपालित कपोत क्रीडा कर रहे हैं। सरोवर के चारो ओर सगमर्मर के चबूतरे और सोपान-पक्तियाँ बनी हुई हैं। कुछ कपोत जल मे स्नान कर रहे हैं और कुछ चबूतरो पर खेल रहे है। उस नवयुवती का मन उधर ही खिचा हुआ था। उसने अपनी कल्पना मे यह ठान लिया था कि एक-दो कबूतर पकड कर वह अवश्य ही अपने घर ले जावेगी, और उन्हे अपना सहचर बनावेगी। वह अपने हृदय मे कहने लगी—"सम्राट् के हैं, तो क्या हुआ। अनगिनती यही पर है। भीतर राजभवन मे और भी न जाने कितने होगे। क्या कमी पड जायगी, यदि दो कबूतर मैं अपने साथ ले भी गई तो! कौन देखता है?"

परंतु देख रहा था युवराज सलीम। सिहद्वार के परकोटे पर चढा हुआ सलीम। लगभग पच्चीस-छब्बीस वर्ष की कच्ची आयु का वह राजकुमार, जिसके हृदय मे उद्दाम यौवन की लालसाएँ अनेक सुप्त और अधिकाश जागती-हुई थी। वह देख रहा था, उस एक अपरिचित नारी को। प्रथम दर्शन ही मे सलीम उसकी ओर बलात् आकृष्ट होगया—"कौन है यह? एक-एक अग मानो रूप का चरम आदर्श-साँचे मे ढला हुआ! एक-एक चेष्टा मानो माधुरी का उद्गम-स्रोत—हृदय मे गडकर वहाँ गढ बना लेनेवाला! इसकी छवि अलौकिक है। वेश-भूषा से भी यह किसी सभ्रात कुटुब की जान पडती है, फिर यह हमारे राजभवन मे क्यो नही आई? पहले कब देखा मैंने इसे? नही, आज ही, यही तो पहली बार है। सलीम परकोटे पर से उतरने लगा।

"शिशु-अवस्था मे ही माता मर गई इसकी।" दासी ने कहा—

"भाई की आयु कितने वर्ष की है?" द्वारपाल-स्त्री ने पूछा।

"होगा कोई इक्कीस-बाईस साल का, इससे चार-पाँच वर्ष बड़ा।"

"बड़ी सुंदर, रूप और लक्षणों से युक्त है यह कन्या ।"

"अभी देखा ही क्या है तुमने इसे । जिस कौशल से यह समस्त गृहस्थ का काम करती है, मै तो देख-देखकर विस्मय मूक हो जाती हूँ ।"

"गृहस्थ ही क्या हुआ ? पिता, पुत्र और यह लडकी ।"

"काम तो हुए ही सब । खाना-पीना, स्वच्छता-सजावट, धरना-ढकना, स्नान-श्रृङ्गार, साधु-अतिथि, सभी तो हुए ही । छोटा बालक नही है एक घर मे । दासी केवल एक मै हूँ, सब कुछ यह अपने हाथ से करती है । किसे देखा इसने ? किसने सिखाया इसे यह सब ?"

"विवाह योग्य हो तो गई है । कही चल रही है बातचीत ?"

"कहाँ से, अभी तो आए हैं । विदेश ही तो ठहरा यह इनका । जाति-कुल का नही कोई यहाँ अपना, जान-पहचान नही किसी से । बडी कठिनता से अभी पिता को एक नौकरी मिली है टकसाल मे । वृत्ति की विषम चिता से अभी छुटकारा पाया है, अब कन्या के विवाह की चेष्टा होगी ।"

"राजा के अंतःपुर के योग्य है यह ।"

'कोई संदेह नही इसमे, इसके पिता ईरान के राजा के प्रमुख सरदारो में से थे । दुर्भाग्य-वश राजा के अनुग्रह से च्युत हो बैठे । जीविका से तो हाथ धोने ही पडे, रातोरात जीवन बचाने के लिये घर छोड प्रवास की शरण लेनी पडी । गर्व की गंध भी नही है इसमे । दासी नही सहेली का सा व्यवहार करती है यह मेरे साथ । भीतर-बाहर एक-सा, कोई कृत्रिमता है नही उस व्यवहार मे ।"

"घर मे अकेले ही ऊब उठती होगी बेचारी । पास-पडोस है कोई ?"

"नही, गृहस्थी के काम से जो समय बचा लेती है, उसे पुस्तक-पाठ और कला-कौशल मे बिताती है, इसके पिता कहते हैं, यह भाई से अवस्था में कम है, विद्या मे नही ।"

मेहेर बडी सतर्तकता से आगे बढी। उसने अपने दोनो हाथो मे दो कबूतर पकड लिए।

इसी समय पीछे से किसी ने कहा—"दृढता से पकड लो इन्हे, कही उड न जावे।"

मेहेर ने लौटकर देखा। एक परम काति और श्री-सपन्न नवयुवक विमुग्ध दृष्टि से उसे निहार रहा है। उसके कपोल रक्तिम हो उठे, नेत्र विनत। आबद्ध कपोनो का बाहुपाश शिथिल होने लगा।

"नही-नही उडा न देना इन्हे। ये मेरे पालतू पक्षी हैं। मै तुम्हे प्यार करता हूँ। इन्होने तुम्हारा ममत्वा आकृष्ट किया है। मै तुम्हे दे देता हूँ इन्हे, ले जाओ।"

मेहेर मन-ही-मन पछताने लगी—"क्यो पकड लिए मैने ये कबूतर ? देख भी नही सकी मै इन्हे आते हुए। कौन होगे यह ?"

सलीम कह रहा था—'मै युवराज सलीम हूँ।"

सुनते ही मेहेर ने अत्यत सकुचित होकर पीठ फिरा ली।

द्वारपाल की स्त्री ने युवराज को आता हुआ देख लिया था। वह बोली—"भीतर आ जाओ। युवराज आ रहे हैं।"

दासी ने कहा—"मेहेर ?"

"रहने दो जहाँ भी है।"

"इतनी देर से बुला रही थी।" कहकर दासी भी उस कुटीर के भीतर चली गई, कुंठित होकर।

दोनो द्वार के पीछे छिपकर देखने लगी।

"तुम परम रूपवती हो, कहाँ से आई हो ?" सलीम ने पूछा।

पर उसने उत्तर नही दिया।

"तुम कहाँ रहती हो ?"

मेहेर फिर भी पाषाण-प्रतिमा बनी रही।

"दुराग्रह न करूँगा कुछ भी, पर इतना अवश्य ही प्रकट करूँगा कि

तुमने बिना वाक्यालाप किए थोडे ही समय मे मेरे हृदय के भीतर बहुत बडा स्थान बना लिया है। तुम बडी सरलता से अपना पथ ग्रहण करो। इन कबूतरो को ले जाओ। मै युवराज सलीम हूँ—सम्राट् अकबर के इस भारतव्यापी साम्राज्य का एकमात्र अधिकारी। इच्छा करने पर क्या नही दे सकता तुम्हे। यदि कभी मुझसे कुछ कहने की आयश्यकता पड जावे, तो लिखकर एक कबूतर के पैर मे बाँध देना। मै इसके लौट आने की प्रतीक्षा करूँगा।"

अचानक दूर पर जय-घोष सुनाई दिया—"भारत-सम्राट् की जय!"

"सम्राट् की सवारी आ रही है।" सलीम ने उस सुंदरी की दिशा से दृष्टि फिरा ली।

रोमाचित हो उठी मेहेर। कुछ क्षरण के लिये देश-काल और अपने अस्तित्व को भी भूल गई। उसके आलिंगन मे से एक कबूतर मुक्त होकर उड गया अपने पख फडफडाकर।

सलीम ने उस ओर दृष्टि कर पूछा—"उड़ गया?"

मेहेर ने मौन रहकर सम्मति जताई।

युवराज ने फिर पूछा—"कैसे?"

मेहेर ने दूसरा हाथ ऊपर उठाकर खोल दिया, मानो समस्त मूक प्रकृति ने वाणी में प्रकट होकर कहा "ऐसे उड गया!"

उस कोमल भुजपाश का बदी वह दूसरा कबूतर भी उड गया निकटर्ती आम की सघन डालियो पर।

"सुदरी! तुमने जिस भाव की सरलता से इस पक्षी को विमुक्त किया है, तुम नही जानती, उतनी ही जटिलता से तुमने इस सलीम का हृदय बदी कर लिया है। अब तुम्हे अपना परिचय देकर ही जाना होगा।" सलीम मेहेर की ओर को बढा।

एक ओर मेहेर का सकोच या हठ न-जाने क्या था और दूसरी दिशा मे सम्राट् की सवारी का बढता हुआ कोलाहल। सलीम द्रुत गति

से फिर दुर्ग के परकोटे पर चढ गया ।

कुटीर के भीतर से दासी ने उच्च स्वर से कहा—"मेहेर, लौट आओ, सम्राट् की सवारी आ रही है ।"

मेहेर ने यह सब लौटते हुए ही सुना, दासी के वाक्य के समाप्त होने से पूर्व ही वह कुटीर के भीतर पहुँच गई थी ।

"क्या कर रही थी ?" दासी ने पूछा ।

"कुछ नहीं । कबूतर पकड रही थी ।"

"युवराज ने क्या कहा ?"

"युवराज ने ?" मेहेर ने विस्तय प्रकट किया ।

"हाँ, युवराज ने । तुम परम सौभाग्यशालिनी हो । युवराज ने हँस-हँसकर तुमसे बाते की । क्या कहा ?" दासी ने फिर पूछा ।

मेहेर अपने हृदय की गहराई मे सब कुछ छिपा गई । बडा प्रयास करना पडा उसे । उसके नेत्र विद्रोही होकर उसका भेद खोल देने के लिये मचल रहे थे । वह अपने दोनो नेत्रो को मलने लगी ।

दासी ने फिर पूछा—"क्या कहा उन्होने तुमसे ?"

"तुमने देखा यहाँ से ?"

"हाँ ।"

"कुछ नही कहा उन्होने । केवल यही कि यदि कबूतर ले जाना चाहती हो, तो ले जाओ ।"

"लाई क्यो नही ?"

"दोनो उड गए । एक अपने प्रयास से और दूसरा कदाचित् मेरी असावधानी से ।" मेहेर अब भी आँखे मल रही थी ।

"क्या कुछ चला गया आँख मे ?"

"पवन मे उडता हुआ कोई धूलि का कण सभवत ।"

सम्राट् आखेट से आ रहे थे । उनकी तीक्ष्ण आँखो ने दूर से ही सलीम को मेहेर के साथ बाते करते हुए देख लिया था । उन्होने अज्ञात

और अपरिचित उस सु दरी को द्वारपाल की कुटिया मे प्रवेश करते हुए भी लक्ष्य किया।

न-जाने किस गहराई तक इस साधारण दृश्य को अकबर ने विचार लिया। सिहद्वार से कुछ दूरी पर ही अचानक सम्राट् के आदेश से महावर्त ने हाथी रोक लिया।

सम्राट् ने हाथी पर से उतरकर अपने एक अतरग चर के कान मे कुछ कहा। चर वही पर रुक गया, और महाराज अपने विशेष सहचरो के साथ अत.पुर के भीतर प्रविष्ट हुए।

परकोटे की ओट मे छिपे हुए युवराज ने यह सब कुछ देखा। वह सशय मे पड गया, और अवधान के साथ उस गुप्तचर की गति-विधि का अवलोकन करने लगा।

चर द्वारपाल के घर की ओर गया। दासी बाहर आई। चर ने न-जाने उसके साथ क्या बाते की। सम्राट् राजभवनो की ओर चले गए थे। सलीम परकोटे पर से उतरने लगा।

"मार्ग मे राजभवन को जाता हुआ गुप्तचर उसे मिला। सलीम ने उसका हाथ पकडकर पूछा—"कौन है वह ?"

भयाकुल होकर गुप्तचर ने कहा—"कौन ?"

"वह जिसका परिचय पाकर अभी तुम लौटे हो।"

"वह, हाँ" बडी साधारण हँसी के साथ चर ने गभीरता तोडकर कहा—"आगरे की टकसाल मे पिछले दिनों कोई नायब नियुक्त हुए हैं, ईरान से नवागँत, उनका नाम है मिर्जा गयास। उन्ही की लडकी है।"

"वह सु दरी है न, असाधारण ?" सलीम ने पूछा।

"मै नही जानता युवराज। उसने बुरके से अपना समस्त अग ढक रक्खा था।

"कहाँ रहते हैं ?"

"ईरानियो के मुहल्ले मे।"

"हो गया, जाओ। सम्राट् के पास जा रहे हो न ?"

"न।" तत्क्षण ही चर ने भूल सुधार ली—"हाँ।"

सलीम ने उच्च स्वर मे अट्टाहास किया, और उस चर की पीठ पर थपकी मारकर कहा—"देखो, सलीम अपने भाई मुराद और दानियाल के समान नही है। उसकी वासनाएँ उसके अधीन रहती हैं।"

"इसमे क्या सदेह है।" चर ने चाटुकारिता से कहा।

'आज अचानक ही सम्राट् आखेट से लौट आए। बता सकते हो किस लिये ?"

मैं नही कह सकता युवराज ! कदाचित् दक्षिण-विजय के ही सिल-सिले मे।"

सलीम निकट ही उपवन मे घूमने लगा, और चर सम्राट् के पास चला गया।

पर समस्त स्थैर्य डगमगा उठा था सलीम के मन का। फूलो और हरियाली पर उसकी दृष्टि थी, पर मस्तिष्क मे प्रतिबिब पडा हुआ था उस नवयौवना नारी का, जिसकी एक-एक चेष्टा मे खिले हुए थे शत-शत वसत !

सलीम बाहर की ओर पग बढाता, उसी समय सोचने लगता—"कोई देखेगा, तो क्या कहेगा। मै इतने विशाल साम्राज्य का सिंहासना-धिकारी। एक साधारण स्त्री के मोह मे पडा हुआ, क्या विचारेंगे ये प्रहरी और द्वारपाल ! पर वह एक सामान्य स्त्री नही है। मै महाराज से कहकर उसके पिता की पद-वृद्धि करा दूँगा। मै अपने उपकारो के भार से विनत कर उसकी कन्या का प्रेम जीत लूँगा।"

सलीम राजभवन की ओर जाने लगा, हठात् उसे निश्चय हुआ—"सम्राट् ने उस युवती के साथ बातें करते हुए देख लिया है मुझे। फिर इसमे हानि ही क्या हो गई। यदि उन्होने इस विषय को लेकर कोई भर्त्सना की मेरी तो ?" सलीम ने मुख की गंभीरता को तुरत ही

पोछकर कहा—"देख लिया जायगा।"

निकट ही एक बारहदरी मे जाकर बैठ गया वह—किसी प्रकार नही भूली जाती वह। मेरे मानस मे कितनी साकार होकर पैठ गई वह। जैसे कोई जादू कर दिया हो उसने। निताात समीप हीं उसे देख रहा हूँ। जीवित रहने के लिये श्वास के समान कौन है यह ? फिर आज तक इसकी स्मृति के बिना कैसे जीवित रहा ?"

सलीम चिंता-सागर मे डूबा पडा रह गया वहाँ पर। उसे भान ही नही रहा, कौन उस मार्ग से आया, और कौन गया ! वह अपने मन मे कहने लगा—"सम्राट् दुर्ग मे पधारे है, बहुत समय हो गया। मुझे उनकी अभ्यर्थना के लिये चला जाना चाहिए था अब तक। सहज ही उनके मन मे सतान के लिये उदार भाव नही है।" वह उठ गया, भारी पैरो से, मानो उनमे पारा भर दिया गया था, वह खडा होकर दिशा खोजने लगा सम्राट् के अवस्थान की। मन के अधकार में फिर वही रमणी नाच उठी। उसके हाथ से छूटे और छोड़ दिए गए कबूतर अन्य साथियो के दल मे मिलकर खो गए थे।

एक प्रहरी आकर उनके सामने विनीत भाव से खडा हो गया।

"क्या आज्ञा है ?" सलीम ने पूछा उससे।

प्रहरी इस व्यग्य से अप्रतिभ हो उठा—"अपराध क्षमा हों सेवक के युवराज ! प्रजावत्सल महाराज आपको स्मरण कर रहे हैं."

"चलो, मै आता हूँ।"

प्रहरी चला गया।

सम्राट् अकबर एकात कक्ष में सलीम की प्रतिक्षा कर रहे थे। उनके मुख-मण्डल पर बडी गहराई के साथ विषाद अकित था।

सलीम ने अत्यत आदर और धैर्य के साथ प्रवेश कर अभिवादन किया।

अकबर ने आशीर्वाद देकर उसे आसन ग्रहण करने का सकेत

दिया—"देखो सलीम, तुम मुझे एक महात्मा के वरदान-रूप मे प्राप्त हुए हो।"

"उस महात्मा के प्रति मेरे हृदय मे उचित श्रद्धा है पिता !"

"होनी ही चाहिए। मेरा तुम पर विशेष स्नेह है। सदैव ही तुम्हारी हित-चिंता मे मै रहता हूँ। तुम्हे अन्यथा नही सोचना चाहिए कभी। सुनो, भारतवर्ष का यह विशाल साम्राज्य हमारे पास धरोहर है। इसे यदि हम केवल अपनी व्यक्तिगत तृप्ति का साधन समझेंगे, तो वह हमारी बडी भयकर भूल होगी। दानियाल और मुराद की विलासिता को लक्ष्य न बनाओ। तुम मेरे सब से बडे पुत्र हो।"

"मैं हर घडी महाराज के गौरव की रक्षा के लिये प्रयत्नशील रहता हूँ।"

"मेरे स्पष्ट, पर सत्य शब्दो को मानसिक उत्तेजना खोकर सुनो युवराज ! मैंने तुम्हे दक्षिण की विजय-यात्रा का सेनापति बनाया था।"

"मैंने मुराद को उस पद के लिये अत्यत लालायित देखकर उसका उत्साह बढाना उचित समझा।"

"मुझे उसका बिलकुल भरोसा नही है। वह सुरा की उन्मत्तता मे मुगल सम्राटो की कीर्ति मे अपमान-जनक कलक लेकर लौटेगा। मै फिर तुमसे कहता हूँ, तुम जाकर उसका कार्य-भार सँभालने को प्रस्तुत हो।"

"मे ?" सलीम ने घबराकर पूछा। उसके मानस मे फिर वही ईरान की कन्या नृत्य करने लगी।

'हाँ तुम ! इसी सप्ताह के भीतर और एक बडी सेना के साथ दक्षिण को कूच कर दो।"

"अपराध क्षमा हो महाराज। इससे हम दोनो भाइयो के बीच मे विद्रोह उत्पन्न हो जायगा। मै भारत के राजमुकुट का लोभ छोड दूँगा, भाई का प्रेम नही।"

"तुम्हारी यह नैतिकता पोली है। मुराद के सहायक होकर जाओ।"

"मुराद की चढाई का फल प्रकट होने दीजिए।" सलीम खाँसता हुआ कहने लगा—"तब तक मेरा स्वास्थ्य भी ठीक हो जायगा।"

"सलीम, बडे परिताप का विषय है। मेरे राज्य की कल्पनाएँ परिपूर्ण न हो सकेगी। कदाचित मृत्यु-शय्या मे मेरा यही सबसे बड़ा दु:ख होगा कि मेरा उत्तराधिकारी मेरी इच्छाओं का अनुगमन न कर सकेगा। राजकुमार खुसरू—तुम्हारा पुत्र, यदि मै उसे ऐसी आज्ञा देता, तो वह बडी प्रसन्नता से रण-यात्रा के लिये प्रस्तुत हो जाता, पर उसकी अभी अवस्था ही क्या है।"

सलीम ने विनत मस्त उस महान् सम्राट् की जो अवमानना की, वह किसी प्रकार सह्य न हुई। उन्होने कुछ देर चुप रहकर युवराज के उत्तर की प्रतीक्षा की। विश्वास न था उन्हे कि वह शुद्ध उत्तर देगा। वह विचारने लगे—"ऐसे कापुरुष पुत्र का पिता होना कलङ्क की बात हुई मेरे लिये। समरागण की नाचती हुई तलवारो की झनकार में जिसकी प्रीति होनी उचित थी, वह युवतियो के कंकणनूपुर की रुनझुन का रसिक हो उठा है।" जब सलीम ने सम्राट् की कटु प्रतीक्षा के विलबित क्षण पचा लिए, तो वह भीतर-ही-भीतर क्रोध से तमतमा उठे। प्रकट मे अत्यत सयत स्वर मे कहा उन्होने—"सलीम !"

"हाँ महाराज।" सिर खुजाते हुए मुख मे बडी पीड़ा व्यक्त कर सलीम ने उत्तर दिया।

"केवल कर उगाहना मेरी चिंता नही है सलीम। मै एक उद्देश्य को लेकर सिंहासन पर बैठा हूँ।"

"मै समझता हूँ उसे। वह है समस्त भारत पर विजय।"

"तुमने सत्य कहा, पर तुम उसे उचित वाक्य मे प्रकट नही कर सके। महान् विजेता की कीर्ति के लिये नही, इस विशाल देश को एक करने के लिये। इन नाना वर्णों, भाँति-भाँति के धर्मों के पारस्परिक वैर-विरोध का मूलोच्छेदन करने के लिये। बिना समस्त भारत को विजित किए यह हो

नही सकता, इसीलिये उसकी कामना है । ये भारत की सीमा पर के शत्रु यद्यपि कुछ कर नही सकते, पर मेरी साधना के विघ्न अवश्य हैं । उत्तर-पश्चिम और पूर्व की सीमाओ को अधिकाश मे निरापद कर चुका हूँ । केवल दक्षिण दिशा ही शेष है । तुम वीर सैनिक के पुत्र हो, तुम वीर क्षत्राणी की संतान हो । समर-क्षेत्र के लिये तुम्हारे हृदय मे स्वाभाविक अनुराग होना चाहिए ।"

पर सलीम टस-से-मस नही हुआ । अकबर का उद्बोधन मंत्र निरर्थक ही रहा । वह आँखे नीची किए हुए बीच-बीच मे केवल खाँस रहा था ।

ऐसे कापुरुष को पुत्र-रूप मे पाकर बडी वेदना पहुँच रही थी अकबर को । "अच्छा जाओ । विचारकर अपना निश्चय करना ।" कहकर बिदा किया उन्होने पुत्र को ।

---

[२]

गृति और स्वप्न के जगतो को एकाकार कर दिया मेहेर की स्मृति ने, और सलीम सब कुछ भूलकर उसी की माला जपने लगा। वह विकल होकर एकात मे सोचता—"यदि वह सुदरी सहचरी नही तो मुझे इस विशाल साम्राज्य का कुछ भी लोभ नही है। बिना उसे प्राप्त किए मुझे इस जीवन से भी मोह नही।"

किसी प्रकार उससे भेट हो, यही सोचता रहता। एक साधारण सरदार की कन्या के द्वार पर जाकर उसके प्रेम का भिखारी होना, यह भी उसके आत्मगौरव को सहन नही होता था। फिर कैसे? दिन-दिन-भर वह परकोटे पर विक्षिप्त की भाँति घूमता और रह-रहकर द्वारपाल की कुटी पर दृष्टि डालता। फिर कभी वह युवती अपनी दासी के साथ वहाँ नही आई। वह सोचता—"कदाचित् महाराज के किसी अनुशासन ने उसके पैरो मे बेडियाँ डाल दी हैं, या उसके पिता ने इस प्रकार घर से बाहर कही जाने का निषेध कर दिया हो।"

इस नवीन अनुराग की कथा को सावधानी से छिपाकर रखने लगा सलीम! ऐसी परवशता के साथ किसी नारी ने नही आकृष्ट किया था उसे। गृहस्थ, सेवक और राज-काज से कटकर एकांतवासी हो गया। उस ने रुग्णता का बहाना बना लिया। उसका भोजन घट गया, केवल तृष्णा बढ चली। वह सचमुच मे दुर्बल और कृश हो गया।

उसने अपने अत पुर से भी सबध विच्छिन्न कर लिया। महाराज उस पर क्रुद्ध हो गए। उन्होने उसकी कुशल-समाचार की चिता छोड दी। वह सिंहद्वार के समीप केवल एक सेवक को लेकर रहने लगा। वह सेवक ही राजभवन से उसके लिये भोजन लाता और हकीम साहब के यहाँ से औषधि।

रानी और राजकुमार को भी सलीम ने दुतकार दिया। माता से भी अच्छा व्यवहार नही किया। सम्राट् ने सम्राज्ञी को उस कुपुत्र का मुख न देखने का आदेश दिया, पर माता के हृदय की उदारता, सदैव ही पुत्र के लिये चिंतित रहती। उसकी कुशल पूछने के लिये छिपाकर दासी को भेजती।

दक्षिण की चढाई पर जाने, न जाने को सलीम ने महाराज पर अपना कोई निश्चय प्रकट नही किया। वह उनके समीप भी नही गया कई महीनो से।

रात को उठ-उठकर युवराज चाँदनी और अन्धकार मे, दुर्ग की प्राचीरो पर अकेले घूमता। जो सैनिक और प्रहरी उसे देख लेते समझते कही युवराज पागल तो नही हो जावगे। कुछ लोग यह भी अनुमान करते कि सलीम किसी रूपवती के प्रेम मे उलझ गया है।

इस प्रेम-कथा को हृदय मे छिपाते-छिपाते अत मे अकुला उठा वह राजकुमार! उस दिन खुल पड़ी थी वह। हकीम साहब ने मद-पान का कठोर निषेध कर रक्खा था। सेवक पर यह सत्य प्रकट नही था। अतृप्त प्रेम और विरह की चिरतनता धीरे-धीरे सलीम के अग मे रोग-रूप से फूटने लगी।

हकीम साहब ने एक दिन सम्राट् से युवराज के रोग की गभीरता का वर्णन किया।

अकबर के मुख पर चिता की कोई भी रेखा नही खिची। वह बोले—"उसके मन मे कर्त्तव्य की कोई निष्ठा नही। राजोचित कोई

महत्त्वाकांक्षा नही उससे । वह इद्रिय-लोलुप है, कायर है । सुरा मे डूबा रहना और सुंदरियो मे घिरा रहना ही उसके जीवन का आदर्श है । मैं इसके दोनो भाइयो की आशा छोड चुका हूँ । मैने समझा था, एक दिन इसके कधो पर अपनी अपूर्ण आशा और साधना को छोड जाऊँगा ! मै इसके मोह का भी परित्याग कर दूँगा । खुसरू के प्राप्त-वयस्क होने तक यदि मैं जीवित रह सकता !"

"सम्राट् चिरजीवी हो, आपकी शत-शत वर्षो की आयु हो । आपका बल और साहस युवा पुरुष ही के समान है ।" हकीम साहब ने काहा ।

"नही, यह भीतर-ही-भीतर खोखला पड़ गया है । बाहर के देखने के लिये मैने राज्य का अपरिमित विस्तार किया है । पर वास्तव में मेरा निर्माण अपरिपक्व और अपूर्ण ही है । मेरे अनेक जीवन और कर्म के सहचर मित्र मृत्यु को प्राप्त हो चुके, सतान की यह दशा है, राज्य के कर्मचारी—सबको अपना ही स्वार्थ प्रिय है । एक असपूर्ण प्रयोगों की समाधि बनकर ही सभवत. मै विश्राम पाऊँगा ।"

हकीम साहब को विश्वास हो गया, उनका रोगी संपूर्णत उनकी आज्ञा का पालन नही कर रहा है । उन्होने एक दिन एकांत में सलीम के सेवक से पूछा—"युवराज कितना सुरा-पान करते हैं आजकल ?"

"पहले से अधिक ही है मात्रा, कम नही ।"

"पहले से अधिक ?" हकीम साहब ने दाँतों-तले उँगली दबाकर कहा ।

"हाँ, मै उन्हे बराबर वर्जन करता हूँ, सुनते नही कुछ ।"

"यदि तुम इनके हिताकाक्षी हो, तो न दो उन्हे, वह घातक सिद्ध होगी ।"

सेवक ने उसी रात को फिर साहस कर युवराज का सुरा-पात्र छिपा दिया ।

युवराज ने सेवक को पुकारा ।

वह हाथ जोडकर खड़ा हो गया उनके सामने।

"तुम मेरे बहुत पुराने सेवक हो, तुम्हे मेरे ऊपर दया करनी उचित है।"

"नही युवराज, किसी प्रकार नही। वह घातक सिद्ध होगी। मै आपका हितचितक हूँ।"

"हितचितक हो तुम मेरे! बडा आश्वासन मिला! समझता तो हूँ मै। तुम चाटुकार नही हो। तुम कहते हो कभी, अपना गौरव बढाने को नही, मुझ पर अधिकार स्थापित करने को कि तुमने मुझे गोद खिलाया है।"

बडी उदास हँसी के साथ वह बूढा सेवक बोला—"हॉ युवराज, इसी से तो कहता हूँ। हकीम साहब ने भी कहा है, वह महान् अनिष्टकर है।"

'तुम्हारे पास मेरा रहस्य सुरक्षित रहेगा, कहूँगा तुमसे।" युवराज ने एक दीर्घ श्वास ली।

"मै अपने हाथ से अब न ढालूँगा सुरा आपके लिये, जब तक आप भले प्रकार रोग-मुक्त नही हो जाते।"

"मुझे कोई रोग नही है।"

"रोग नही है? फिर ये औषध और हकीम साहब?"

"माता के आग्रह का आदर करने के लिये उतना नहीं, जितना इस कथा को छिपा देने के लिये।"

"कौन-सी कथा?"

"प्रेम-कथा, वृद्ध सेवक, मै नही जानता तुम रुचि के साथ उसे सुन भी सकोगे या नही। पर अब कहना ही पडेगा। एक समय तुम भी युवा रहे होगे। तुमने भी प्रेम किया होगा। फिर एक बार स्मृति के सहारे से उस काल पर अवस्थित करो, तभी मेरी पीडा और रोग को समझ सकोगे।"

युवराज ने मति दी। सेवक कहने लगा—"बात क्या है?"

"एक ईरानी कन्या मेरा मन, मेरा हृदय, मेरा सुख, मेरी शान्ति, मेरी निद्रा, मेरा भोजन, सब एक साथ ही छीनकर चली गई ! सुरा की इस अचेतनता मे मै उसके निकट पहुँच जाता हूँ, और तुम कहते हो अब उसकी एक बूँद न दूँगा।"

"किस ईरानी की कन्या है वह ?"

युवराज ने जो कुछ परिचय ज्ञात था, दिया। उसके अनंतर कहा—"मुझे विश्वास तो है, वह मेरे लिये रची गई है। वह मेरी होगी एक दिन।"

"यदि उसका विवाह हो चुका हो ?"

"नही, उसने जिस सरलता और विमुग्ध दृष्टि से मुझे देखा. उससे कह सकता हूँ मैं, वह पक्षी अभी स्वच्छद ही है।"

"नही युवराज, भगवान् ने आपको एक-से-एक सुंदर और सुगुण संपन्न रानियाँ दे रक्खी हैं। आपके संतान भी हो चुकी है। आपको राज-काज मे ध्यान देना चाहिए। इस चपल मन पर बधन रखना उचित है।"

"मैने इस प्रकार भी इस प्रश्न पर विचार किया है, पर देखता हूँ, मै बिलकुल ही विवश हो गया हूँ। मेरी यह प्रेम-कथा आप-से-आप तुम पर खुल पडी। देखो, सावधानी से लोगों से बातचीत करना, कही यह किसी पर प्रकट न हो जावे।"

सेवक बडी देर तक चुपचाप किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खडा रह गया वहाँ पर।

मेहेर उस दिन की उस घटना को भूली नही। एक गहरी छाप हृदय मे लेकर वह लौटी थी। जितना वह उसे मिटा देने का प्रयास करती, उतनी ही स्पष्ट वह अकित होती जाती।

भारत के भावी सम्राट् की उपेक्षा कर लौट आई, यह सोचकर कभी पछताती वह। दूसरा कबूतर जान-बूझकर क्यो उडा दिया उसने,

इसको भी उसने अपनी मूर्खता ही समझी ।

उसके पिता को जब उसके राजभवन तक जाने की बात का पता चला, तो उन्होने दासी को इस प्रकार बिना उनकी आज्ञा के मेहरे को कही बाहर न ले जाने के लिये सावधान किया ।

सलीम का सेवक उसकी वेदना से पीड़ित हो उठा, उसने निश्चय किया बिना व्यक्त किए कैसे इसकी औषधि होगी। वह एक दिन द्वारपाल के घर जा पहुँचा। इधर-उधर की अनेक बातो की भूमिका बाँध लेने के अनतर उसने द्वारपाल से पूछा—"क्यो भैया, यह मिर्ज़ा गयास कौन है ?"

बड़ा चतुर और अनुभवी था द्वारपाल। राजभवन के प्रवेश और प्रस्थानो पर दृष्टि रखते हुए ही उसकी आयु का अधिकाश बीत चुका था। उसने उत्तर दिया—"मै नही जानता, कौन मिर्ज़ा गयास ।"

"टकसाल मे नियुक्ति हुई है जिनकी। अभी वर्ष-भर पूरा नही हुआ है।"

"नित्य ही अनेको की नियुक्ति और वियुक्ति होती ही रहती है। इतना विशाल साम्राज्य है, कहाँ तक किसी को ज्ञात हो सकता है।"

सलीम के सेवक ने समझा था, बिना अपना भेद दिए ही वह ग़यास की कन्या के संबंध में कुछ ज्ञातव्य बातें जान लेगा, पर द्वारपाल सहज ही टूट जाने वाला व्यक्ति न था।

सेवक को पूछना ही पडा—"सुना हैं, उसके एक अत्यंत सुंदरी कन्या है।"

"हाँ, हाँ, मेरे घर पर भी आती है वह कभी-कभी, मेहेर उसका नाम है।"

"तुमने देखा है उसे ?"

द्वारपाल ने झूठ बोला—"हाँ, देखा है।"

"कैसी है ?"

"अद्वितीय ! अनुपम ! अद्भुत !" द्वारपाल ने उत्तर दिया ।

"विवाह हो चुका है उसका ?"

"नही ।" द्वारपाल ने उसका हाथ पकडकर इधर-उधर देखा, और चुपचाप उसके कान मे कहा—"सच कहो दादा, पर तुम्हे इतनी चिंता क्यो हो गई उसके विवाह की ?"

"केवल कौतूहल-मात्र । सुना था, वह असाधारण रूपवती है ।"

"किसने कहा ?"

"उपवन का सुवासित पुष्प जब खिलता है, तो अपनी महक से चारो ओर स्वय ही प्रकट हो जाता है ।"

"अच्छा, एक बात तो बताओ ।" द्वारपाल ने फिर कानाफूसी के स्वर मे कहा—"युवराज का स्वास्थ्य कैसा है अब ?"

"वैसा ही है ।"

"हमने सुना है, सम्राट् क्रुद्ध हैं उनसे, हमने तो यहाँ तक सुना है, सम्राट् उनके राजसिंहासन के अधिकार को छीनकर अपने पौत्र खुसरू को प्रदान करेंगे । इस सब मनोमालिन्य का कारण क्या है दादा ?"

"भगवान् जानें । ये सब बाते हम तक कहाँ खुलती हैं ।"

"युवराज का सुख पूछने कभी आते नही सम्राट् ?"

"इतना समय ही कहाँ उन्हे !"

"समय ही कहाँ ? सबसे ज्येष्ठ पुत्र, अस्वस्थ और सम्राट् को समय का अभाव !"

'कुछ चिड़चिडापन उत्पन्न हो गया है सलीम के स्वभाव में । माता और बडी रानी को फटकारते हुए तो मैंने सुना है । कदाचित् किसी दिन कोई कठोर शब्द महाराज से भी कह दिया होगा । भाई हमे सम्राट् और युवराज के इस विग्रह पर प्रसन्न न होना चाहिए । पिता-पुत्र ही ठहरे, यदि पुत्र के मन में पश्चात्ताप के उदय होते-होते अवधि भी लग जायगी, तो पिता का मानस क्षमा के जल से निखर उठेगा अनति काल ही मे ।"

"उनके विग्रह को दूर करने मे हम-जैसे तुच्छ चाकरो की सहायता लेने जा कौन रहा ? मूल कारण कुछ और सुना है हमने ।"

"क्या ?"

"यही कि सलीम मेहेर के लिये पागल हो उठा है, और सम्राट् को यह संबध स्वीकार नही ।"

"नही, यह बात नही ।"

"देखो दादा, यदि हमसे तुमने सत्य को छिपा दिया, तो हम क्या सहायता कर सकेंगे ।"

सेवक ने सोचा यह द्वारपाल कदाचित् सहायक हो सके । मेहेर इसके यहाँ आती है । उसकी दासी इसकी साली है । प्रकट मे कहा उसने—"करोगे तुम सहायता ?"

"सत्य ज्ञात होने पर ही दादा !" द्वारपाल ने अपनी छाती पर हाथ रखकर बडी पवित्रता के साथ कहा ।

"सुनो, प्रेम एक मानसिक विकार ही तो है । शपथ खाओ, तो तुम से कहूँ । कहोगे नही न किसी से, अपनी अर्द्धाङ्गिनी से भी नही ।"

द्वारपाल ने शपथ खाई ।

सेवक द्वारपाल को मकान के बाहर एक इमली के वृक्ष के चबूतरे पर ले आया था—'हाँ, युवराज को प्रेम की ही पीडा है ।"

"प्रेम ? किसका प्रेम ?" अधीरता से द्वारपाल ने पूछा ।

"उसी का, जिसका नाम तुमने मेहेर बताया ।"

द्वारपाल ने उसका हाथ अपने हाथ मे लेकर कहा—"क्यो, कहा न था दादा ! फिर कौन-सी भारी समस्या हो गई यह ?"

"यदि मेहेर सलीम से प्रेम न करती हो तो ?"

"प्रेम न करती हो ? एक असंभव कल्पना । सलीम के क्या नहीं है ? रूप, गुण, यौवन और एक विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकार, क्या ये उसके प्रेम को आकृष्ट करने के लिए अपर्याप्त हैं ?"

बूढ़े सेवक का कुछ धीरज बँधा—"हो जायगा इन दो का विवाह ?"

"क्यों नही !"

"किस प्रकार ?"

"परतु तुमने यह जो मुझे इस प्रेम को गुप्त ही रखने की शपथ खिलाई है, यह असम्भव है दादा ! इसे प्रकट ही करना पडेगा, और यह फैल ही जावेगी।"

"चुपो, चुप रहो। अधिक उच्च स्वर से न बोलो।" सेवक ने द्वारपाल के अधरो पर अपनी हथेली रख दी।

"जिसे तुम्हारा युवराज चाहता है, उससे तो कहना ही पडेगा न ?"

सेवक ने मूक रहकर विवशता और बाध्यता दिखाई।

द्वारपाल ने कहा—"तुम समझते हो इस प्रेम-सदेश को जाकर क्या मै कह सकता हूँ ?"

"फिर ?"

"मेरी स्त्री कहेगी।"

"तुम उस पर प्रकट करोगे ?"

"अवश्यमेव।"

"और वह जो भी मिलेगा, उस पर यह रहस्य खोल देगी। नही भाई, दिन डूबते-डूबते आगरे के प्रत्येक जन-निवास की चर्चा हो जायगी यह। ठहरो, मै युवराज से पूछकर तुम्हे उत्तर दूंगा।" कहकर सलीम का सेवक चला गया।

वह सलीम के पास तक पहुँच भी न पाया था कि द्वारपाल ने भीतर जाकर अपनी स्त्री से कहा—"सुनती हो, तुम्हारा अनुमान ठीक ही निकला। मेहेर के भाग जग उठे। युवराज उस पर निछावर हैं।"

"मैं उसी दिन जान गई थी। मेहेर फिर नहीं आई उस दिन से हमारे यहाँ। आई केवल एक बार। अब मै ही जाऊँगी एक दिन उन लोगों से मिलने।"

द्वारपाल की स्त्री पनघट पर जल भरने गई, और बड़ी देर मे घर लौटी। जो भी स्त्री उसे मिली, उससे उसने कहा—"युवराज एक नवीना के प्रेम मे पागल होकर समस्त कुटुंबियो से विग्रह किए बैठा है।"

सेवक ने सलीम के निकट जाकर कहा—"युवराज! मेहेर है उसका नाम!"

सलीम शय्या पर पडा हुआ था। उसकी आँखे लगी हुई थी। दिवा-स्वप्न से चौक बैठा वह—"किसका?"

"उस ईरानी कन्या का।"

बड़े उत्साह से सलीम ने बिना होठों को स्पदित किए मन मे दुहराया—"मेहेर!" फिर उसने सेवक से पूछा—

"क्या कहा तुमने मेहेर?"

"हाँ सरकार!"

"मेंहेर!" सलीम उच्च स्वर मे चिल्ला उठा। उस शब्द ने सुंदर और सुसज्जित उस राजनिवास को मधुर प्रतिध्वनि से भर दिया—"हाँ, यही उसका नाम है—मेहेर! मानो इस नाम के उच्चारण मे जैसे वह आ पहुँची हो मेरे शून्य और विरह-भरे इस एकात मे। किसने कहा तुमसे, यही उसकी सज्ञा है?"

"द्वारपाल ने।"

"तो क्या तुमने मेरा प्रेम प्रकट कर रख दिया उसके सामने?" कुछ क्षण के लिये सलीम क हर्ष पीड़ा मे परिणत हो गया।

"नही युवराज। और भी सुनिए, वह अविवाहिता ही है, और उसका आपसे विवाह हो सकता है।"

"कौन कहता है?"

"मैं कहता हूँ। पर इसके लिये आपकी इस प्रेम-कथा को खोलना ही पडेगा दो-चार नर-नारियों के समीप।"

"उसके प्राप्त हो जाने पर प्रकट ही तो हो जावेगी यह बात, समस्त

राज्य-भर मे। प्रकट कर दो, मैं निर्भय और नि शक हो जाऊँगा। उस प्रेम की प्रतिमा के लिये मे अपना सब कुछ निछावर कर दूँगा। केवल उसका प्रेम चाहिए मुझे, उसके मिल जाने पर क्या नही मिल जायगा मुझे ? ससार की समस्त अपेक्षित वस्तुएँ उसके दर्शन में प्रकट हो उठेगी। मेरे बूढे मित्र ! मुझे प्यास लगी है।"

सेवक एक रत्न-जटित सुराही में से पात्र भरने लगा।

सलीम चिल्ला उठा—"नही शीराजी ! शीराजी ! वह उसी के देश की है, इससे और भी प्रीतिकर होगी।"

"शीराजी बहुत थोडी है

"वह ऊटवाला नही आया अभी तक लौटकर ईरान से ?"

"नही।"

"उसे कई मास हो गए !"

"आता ही होगा।"

"फिर क्या चिंता है। हमे केवल वर्तमान को सँभालना चाहिए, हे अनुभव की शुभ्रता मे ढके हुए मेरे सहचर ! भविष्य स्वय ही सुरक्षित रहेगा। विलब न करो।"

सलीम ने सुरा-पात्र होठो तक बढाया ही था कि बाहर का रुद्ध द्वार खटखटा उठा।

भौंहो में बल देकर सलीम बोला—"कौन है ?"

राजमाता की दासी होगी वही। आपके कुशल-समाचारों के लिये भेज रक्खी होगी उन्होने।

"कह दो कि सलीम अभी जीवित ही है।" सलीम ने घूट निगलकर कहा—"अब ये क्षण व्यर्थ की बकवाद के लिये नहीं हैं। जाओ, तुम भी जाओ। द्वार बाहर से बद कर बैठे रहना वही पर। हकीम साहब आवे तो उनसे भी कह देना सलीम की आँखें लगी हैं इस समय, फिर आवे।"

सेवक सुराही को सँभालकर जाना चाहता था।

सलीम ने ताडना के साथ कहा—"यही रक्खो, बिलकुल मेरे समीप।"

सेवक आज्ञा का पालन कर बिदा हुआ।

सलीम मन मे कहने लगा—'मे…हे…! कितना मधुर नाम है। यह बूढा निश्चय ही मेरे प्रेम की गोपनीयता खोल आया है कही। इसी द्वारपाल के पास और कहाँ। मैने बता दिया था न उसे। पर मै उससे असंतुष्ट नही हूँ। इसके विनिमय मे वह कुछ लाया है।" उसने फिर एक बार पात्र रिक्त कर रख दिया—"वह यही एक शब्द है, 'मेहेर!' अब तक जो केवल एक फाँस होकर प्राणो मे गसी हुई थी, उसे व्यक्त करने के लिये एक उच्चारण ले आया है।"

बूढा लौटकर आया, उसने एक मजूषा युवराज के सामने रक्खी—"माताजी ने भेजा है यह।"

"क्या है ?"

"बहुत भारी है। अशर्फियाँ होगी।"

"लौटा दो, क्यो ले आए ?"

"दासी चली गई है।"

"सुनता हूँ, मनुष्य ज्यो-ज्यो बूढा होता जाता है, त्यो-त्यो लोभी होता जाता है। जीवन के संध्या-काल में एक दिन सो जाना ही पडेगा तुम्हे भूमि की गहराई में! इस सत्य को कदाचित् मुझसे अधिक स्पष्ट तुम देख रहे हो। स्त्री ने तुम्हारी दूसरा घर कर लिया, युवावस्था मे ही तुम्हें छोडकर चली गई। तुम्हारे भोजन-वस्त्र में मैंने कोई भेद नहीं उपजाया है, और तुम्हारा वेतन, उसे मैंने कभी अपने सिर नही चढाया।"

सलीम ने उस बूढे सेवक के जीवन की छिपी हुई अग्नि का मुख सहसा खोल दिया। वह विकल हो उठा। उसकी आँखे सजल हो गईं। स्थिर खडा न रह सका वह। भूमि पर बैठ गया अपने अँगरखे का बंद पकडकर।

युवराज उसकी दशा देख द्रवीभूत हो गया । उसका हाथ पकडकर उसने उसे उठा लिया—"मैंने कभी नहीं कहा, यह तुम्हारी दुर्बलता है, यह तुम्हारा अपराध है ।"

बूढे के नेत्रो से आँसू गिरने लगे । सलीम ने उसे छाती से लगा लिया—"इन सूखी और धँसी हुई आँखों का शेष जल सचित ही रक्खो । नही तो बीहड़ और स्वार्थ से भरे हुए जगत् मे कैसे अपना मार्ग ढूँढ निकालेगे ?" युवराज ने उसके आँसू अपने रेशमी वस्त्र में ले लिए ।

"युवराज !" रुद्ध कठ से बडी कठिनता-पूर्वक उसने कहा ।

"हाँ, कहो, तुम रुक गए ?"

बूढे ने पैर उँगलियों पर उचकर सलीम के सिर पर दोनो हाथ रक्खे—'भगवान् तुम्हे चिरजीवी करे युवराज, केवल यही कहना चाहता था ।"

"तुम बहुत अच्छे हो । मेरे अभिभावक भी हो, मित्र और सेवक भी । तुमने कभी मेरे सबध मे चूक नही की । इधर कुछ वर्षो से तुम ऊँघने लगे हो, इसमे कोई संदेह नही । पर तुम कहते हो, अफ़ीम का सेवन तुम्हे एक हकीम ने बताया है । यह मंजूषा सँभाल कर रख दो ।"

सेवक उसे संभालने लगा ।

"मृत्यु से निर्भय रहो । जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वही तुम्हारी समाधि बनवा दूँगा मै । सुंदर संगमरमर की । मैं बड़े-बडे अक्षरो में अकित करा दूँगा—'कर्तव्य मे तत्पर, जगत् से उदास, युवराज सलीम की बाल्यावस्था का रक्षक और यौवन का मित्र, पड़ा हुआ सो रहा है यहाँ पर

सेवक ने मजूषा सँभालकर आकाश की ओर बड़ी विनम्रता से दृष्टि की । दोनो हाथो का सपुट फैलाकर धीरे-धीरे कुछ पढा ।

"इसे सच समझो मित्र, मैं जब भी उधर से जाऊँगा । तुम्हारी समाधि के दर्शन अपना नियम बनाऊँगा । दो आँसुओ के साथ चार फूल

उसे समर्पित करूँगा ।" सहसा सलीम के विचार-क्रम मे परिवर्तन हुआ वह कहने लगा—"देखो, अब उस द्वारपाल से मेरे प्रेम की अधिक चर्चा न करना । तुम्हे उसके पास जाने की ही आवश्यकता क्या है ?"

"बिना उससे कहे युवराज.. ?"

"हाँ मै कहता हूँ तुमसे । उससे एक अक्षर अब इस बात का कहना न होगा तुमको ।"

बडी परवशता के साथ सेवक बोला—"यही सही युवराज ।" वह जाने लगा था ।

सलीम ने उसे रोक लिया । पूछा—"वह रहते कहाँ हैं ?"

"ईरानियो के चौक में ।"

"तुम्हे कैसे ज्ञात हुआ ?"

"द्वारपाल से ही पूछा था ।"

"अच्छा जाओ । द्वार बद कर देना ।"

सेवक चला गया । सलीम प्रेम और सुरा दोनो के मद से मेहेर की कल्पना की गहराई मे डूब गया । उसको नीद आ गई, तब भी वही उसके स्वप्न का विषय बन गया । वहाँ देश और काल के दुर्भेद्य लौह प्राचीर न थे । सलीम ने स्वप्न देखा—"मेहेर के हाथो से छूटे हुए उन दोनो कबूतरो को उसने पुकार कर बुलाया । वे दोनो आकर उसके चरणों पर विनत हो गए, बड़े भारी अपराधी के समान । सलीम ने डाँटकर कहा उनसे—"फिर दोनो मेहेर के हाथो से उड क्यो गए ?" अत्यत लज्जित होकर अपने-अपने मस्तक रख दिए सलीम के चरणो पर उन दोनो ने । युवराज फिर उसी स्वर मे कहने लगा—"बोलते नही तुम कुछ ? दोनो के गले मे फाँसी बाँधकर लटका दूँगा दुर्ग के द्वार पर !" दोनों पक्षी एक साथ बोले—"अपराध क्षमा हो, अब न उडेगे ।" सलीम बोला—"अच्छा, अभी जाओ, तुरत ही मेहेर के पास । उससे कहो कि हम तुम्हारे सेवक हैं, सदैव ही तुम्हारी इच्छा के आधीन रहेंगे

अब ।' दोनो कपोत उसी समय उडकर चले । मेहेर छत पर सो रही थी, दासी के साथ । कबूतरो के पखो की फट-फट और पवन की सर-सर से जाग पडी, बोली—'कौन हो तुम ?' 'तुम्हारे हाथो से उडे हुए पक्षी । हमे शरण दो, हम तुम्हारा सदेश युवराज तक ले जायेगे । नही तो वह हमे फासी पर लटका देगे । हमारे प्राण तुम्हारी ही करुणा पर रक्षित रहेगे ।' मेहेर हँसी । तत्क्षण ही एक अँगडाई लेकर उसने अपना समस्त आलस्य उतारकर रख दिया, ओढनी के समान । उसने उठकर दो पत्रो पर कुछ लिखा, और उन्हे उन दोनों के पैरो से बाँध दिया । कबूतर उडते-उडते सलीम के पास पहुँचे । उसने उनके पैरो मे पत्र बँधे देखे, तो उसका हर्ष नि.सीम हो गया । पहला पत्र खोलकर पढा—उसमे केवल एक ही शब्द लिखा था—'नही ।' सलीम भौचक्का रह गया । उसने कपित करो से फिर दूसरा पत्र खोला । उसमे लिखा था—'हाँ ।' इस 'नही और 'हाँ' के बीच मे बडी देर तक वह युवक डूबता और तिरता रहा । कही कोई कूल न दिखाई दिया उसे । सहसा दो सिह उसके सामने खडे हो गए । वे उन दोनो कबूतरो मे से उपज गए थे । एक बोला—"मेरा नाम 'हाँ' है, मै तुझे खा जाने आया हूँ ।' सलीम ने घबराकर दूसरे की ओर देखा । वह बोला—'मेरा नाम 'नही' है ।' सलीम ने उससे पूछा—'तुम न खाओगे मुझे ?' उसने उत्तर दिया—'क्यो न खाऊँगा ?' सलीम बोला—'तुम्हारा नाम तो 'नही' है ।' सिह ने उत्तर दिया—"इससे क्या होता है । खाना ही छोड दूँगा, तो फिर जीवित कैसे रहूँगा ?' दोनो सिह दहाडते हुए उस पर झपटे ।" सलीम की नीद टूट गई ।

"केवल एक स्वप्न ! कैसा अकुला उठा था मै ! इस स्वप्न के उत्पन्न किए हुए सशय को कुचल डालूँगा मै । मे उस पर सच्चा प्रेम करता हूँ । उससे तरु-तृण शशि-सूर्य, गिरि-घन, सागर-व्योम, पशु-पक्षी, नर-नारी सब अवगत हो, भय कैसा ! मै तस्कर नही हूँ, प्रेमी हूँ । मै छल-हीन हृदय से उसे चाहता हूँ । फिर किसी प्रकार का आवरण, वह मेरी दुर्बलता है ।" यह

निश्चय कर सलीम ने सेवक को पुकारा।

"हाँ युवराज!" वह आकर उपस्थित हुआ।

"मेरे पालतू कबूतरो मे से दो कबूतर पकड लाओ।"

सेवक मन-ही-मन कौतूहल से उद्विग्न होकर दो कबूतर पकड लाया।

सलीम उन्हे लेकर कक्ष के बाहर जाने लगा।

सेवक बोला—"मै भी युवराज के साथ चलूँ?"

'नही, और कोई दूसरा प्रश्न न पूछना। तुम जानते ही हो सलीम के मानस मे अधविश्वास भी प्रतिपालित है।" युवराज प्रासाद के बाहर चला गया।

सिह द्वार पर पहरे मे उस समय वही द्वारपाल था। उसने युवराज को नम्रतापूर्वक अभिवादन किया—"युवराज की जय हो! युवराज आज कई मास के अनतर बाहर निकले है। हम सेवक उन्हे स्वस्थ जानकर प्रसन्न हुए है। साथ के लिये यान-वाहन बुला दूँ।"

"नही।" सलीम वेग से चला गया कि कही द्वारपाल कोई अन्यथा प्रश्न न कर दे।

सीधा ईरानियो के चौक मे पहुँच गया। उसे मिर्जा गयास का घर ढूँढने मे विलब न लगा। साहस के साथ उसने द्वार पर जाकर पुकारा—"मेहेर! मेहेर!"

सुनकर सहम उठी मेहेर। मन मे सोचने लगी—"कौन होगा यह? इतनी प्रीति और परिचय के स्वर मे यह किसने पुकारा मुझे?" उसे फिर कुछ स्मरण हुआ। विचारा उसने—"अच्छा हुआ यह, इस समय जो मेरे पिता और भाई घर पर नही है। नही तो न-जाने क्या कहते वे!" उसने दासी से कहा—"जाओ, देखो तो सही। यह ऐसा दुःशील कौन है, जो इतने उच्च स्वर से पुकार रहा है मुझे?"

दासी आगतुक को देखने गई बाहर, और मेहेर उसे देखने लगी झरोखे की जाली से।

'अरे, यह तो कोई राजकुमार है ! इतना ढीठ ! यदि उस दिन यह ज्ञात होता मुझे, तो कदापि मै इससे बुरका दूर कर बात न करती। पर मै बोली ही कहाँ इससे ! यह मेरे मन की उपेक्षा न समझकर ही तो यहाँ आया है। परतु यह सु दर है। जैसे एक भिखारी आकर खडा हो गया हो हमारे द्वार पर। महान् अकबर के साम्राज्य का यह उत्तराधिकारी ! दासी से यह कहना भूल ही गई कि शृखल न खोलना, भीतर ही से बाते करना।" कुछ उद्देश्य रखकर निरख रही थी आज मेहेर सलीम को। उस दिन तो सब निरुद्देश्य और अचानक था।

"कौन है ?" दासी ने बद द्वार के निकट जाकर सैकत के समान नीरस रूखे स्वर मे पूछा।

"कौन दासी ?" सलीम ने तार-गभीर स्वर से कहा। मानो ऐसे भाव से कि उससे कही श्रेष्ठ दासियो का समूह युवराज के सबोधन पाना अपना सौभाग्य समझता है। "मै हूँ सलीम। मेहेर कहा है ? द्वार खोलो !"

दासी के पैरो-तले की भूमि न जाने कहाँ चली गई। सिर पर मानो किसी ने मत्र पढ दिया। उसने बिना दूसरी साँस लिए ही द्वार विमुक्त कर सलीम का जय-घोष किया।

"मेहेर कहाँ है ?" कहता हुआ युवराज सीढियो का प्रतिकरण करने लगा। उसे दासी के उत्तर की कोई अपेक्षा थी नही।

दासी ने आगे बढकर कहा—"पर युवराज मेहेर अकेली ही हैं वहाँ। पिता और भाई इनमे से कोई भी नही है।"

"इसी अनुमान से तो आया हूँ दासी। ऐसा ही एकात चाहता हूँ। यदि तुम अधिक चपल नही हो, तो यही पर खडी रहो, उस एकात को अपनी त्रयी से शून्य कर दो।"

दासी के चरण जम गए वही पर। सलीम कोठे पर जा पहुँचा।

"मेहेर ! मेहेर !" की ध्वनि से उसने सभी कक्षो मे ढूँढ डाला, पर

उसका पता नही। अचानक उसने स्नानागार मे कुछ खनक सुनी। उधर ही जा पहुचा वह। द्वार बद थे। पुकारा फिर—"मेहेर !"

"कौन है ?"

"मै हूँ मेहेर ! युवराज, सलीम, तुम्हारा उपासक !"

मेहेर सिर से पैर तक सिहर उठी। उसके अधरो पर ताले पड गए।

"द्वार खोलो मेहेर !"

"मैं एकाँकिनी नारी, अल्पवासना, स्नानागार मे हूँ।"

"क्या हुआ फिर ?"

"मद से उन्मत्त है क्या आप ? यह कैमी बाते कर रहे है ! नारी की लज्जा, उसका शील क्या इस प्रकार क्रीड़ा की वस्तु हैं।"

"मेहेर ! द्वार खोलो। मै तुम्हारे कबूतर पकड कर ले आया हूँ।"

मेहेर ने सोचा—"बड़े हठी जान पडते है यह युवराज। नही लौटेंगे, मै जानती हूँ। यदि कही पिता और भाई आ गए, तो क्या विचारेंगे।" बोली वह—"कुछ क्षण ठहरो युवराज। पर तुम्हे सयत होकर मुख खोलना है।"

"कोई नही है यहाँ पर। दासी मेरे अनुशासन मे बँधी हुई अन्यत्र है। केवल एक ही बात कहनी है, द्वार खोलो।"

मेहेर ने अपना जूडा खोलकर केश बिखरा दिए दोनो कंधो पर। फिर कपित करो से द्वार खाला।

उस रूप की ज्योति को देखकर एक क्षण के लिये मूर्तिवत् खड़ा रह गया युवराज।

"क्या कहना है आपको, शीघ्रता कीजिए।"

"मै तुम्हे प्यार करता हूँ। ये कबूतर तुम्हारा उत्तर मेरे पास लावेंगे। केवल एक ही शब्द मे 'हाँ' या 'नही।' लो मै चला। मै जानता हूँ तुम्हारी कठिनाई।" सलीम सचमुच जाने लगा। उसने दोनो कबूतर उसे दे दिए थे।

मेहैर खिच उठी। फुसफुसाकर बोली—"दासी कहाँ है ?"

सलीम भी उसी स्वर मे बोला—"नीचे दालान मे। मै कोठे पर का द्वार भी उसके प्रवेश पर अवरुद्ध कर आया हूँ।" सलीम फिर लौट गया। उसके पास।

"नही युवराज। आपका चला जाना ही श्रेयस्कर होगा। आपसे प्रार्थना करती हूँ, जाइए। दासी से कह देना, मेहेर स्नानागार के बाहर नही आई।" मेहेर ने शीघ्रता से कमरा बद कर वे दोनो कबूतर छोड़ दिए उसमे, और स्वय फिर स्नानागार की वदिनी होगई।

युवराज मन मे एक असीम, अभेद्य और अद्भूत प्रेम के दुर्ग की रचना करता हुआ निष्क्रांत हुआ। सावधानी से द्वार बद कर उसने दासी से कहा—"देखो, कबूतर कही उड न जायँ। अपनी स्वामिनी को दे देना, वह नही मिली मुझे।"

दासी मद-मद हसी। उसने युवराज को बिदा कर द्वार बंद कर लिए।

सयोग की बात है, जिस समय सलीम घर से बाहर निकल रहा था, उसी समय अबुलफज़ल घोडे पर सवार हो सम्राट् से भेट कर अपने घर जा रहा था। उसने भले प्रकार देखा, और ध्यान मे अंकित किया।

सलीम ने भी उसे देखा, और कुछ ठिठककर अपनी दृष्टि फिरा ली। युवराज का भाव साम्य नही है, सम्राट के उस अन्यतम मित्र के साथ। उसके भाई कवि फैज़ी को भी वह सुदृष्टि से नही देखता था। उसका विचार था सम्राट् और उसके बीच मे जो खाई खुदती चली जा रही है, उसके उन्नायक ये दोनो भाई है। फैजी की मृत्यु हो जाने से सलीम का कुछ भार अवश्य कम हुआ था। उसने मन मे सोचा—"अब यह जाकर नि सदेह सम्राट् से मेरी इस असाधारण गतिविधि को अति रजित कर कहेगा। क्या चिता है। इसके समान कीट-पतग अनगिनती हैं आगरे मे। ये कुछ नही कर सकते मेरा।"

सलीम अपने भवन मे लौट गया। सेवक ने कुछ पूछना चाहा।

सलीम ने पहले ही उत्तर दे दिया—"हाँ मित्र, मै अपने कार्य मे सफल हुआ हूँ।"

उसी दिन सध्या-समय तक सलीम का यह प्रेम आगरे के घर-घर मे प्रसिद्ध हो गया।

सम्राट के कानो तक भी यह समाचार पहुँचा, कई भिन्न भिन्न मार्गों से। अबुलफजल की बात को उन्होने सबसे अधिक प्रमाणित समझा।

"यह मुगल साम्राज्य के भावी सम्राट के गौरव को कलकित करने की बात है। एक साधारण स्त्री के साथ उसका प्रेम कदापि हमे मान्य नही हैं। हमारे सामने आने को वह रुग्ण है, और इतनी दूर धूप मे पैदल ही उसकी प्रेम-यात्रा उसके सामर्थ्य की बात है। यह सरासर धोका दिया जा रहा है मुझे।" अकबर ने कहा।

अनुमोदन कर अबुलफजल बोला—"युवराज के ऊपर प्रतिबध लगने उचित है महाराज। उन्ही के भविष्य के हित की बात है।"

"मिर्जा गयास को जानते हो तुम ?'

' एक दिन राजसभा मे बुलाया गया था उन्हे।"

मुझे स्पष्ट स्मरण नही है। किसी दूसरी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट होगा। तुम जाकर उससे कहो, वह अपनी युवती कन्या का शीघ्र-से-शीघ्र विवाह कर देवे। राज्य की ओर से उसे पूरी सहायता दी जावेगी। सलीम पर कोई प्रतिबध नही रक्खा जा सकता, मै जानता हू इस बात को। उस लडकी को ही यहाँ से कही अन्यत्र भेज देना अधिक सुगम और श्रयस्कर होगा।"

और सलीम क्षण-क्षण कबूतर के लौट आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

मेहेर के आज्ञानुभार दासी ने उन कबूतरो को बदी बनाकर रख दिया एक पिजरे मे। उसके पिता से दासी ने कहा कि मेहेर के आज्ञानुसार

उसने उन्हे पकडकर रख लिया है। वे उनके निवास के भीतर न-जाने कहाँसे आकर बंदी हो गए।

जब वे कपोत मुक्त आकाश मे उड जाने के लिए अपने पर फटफटाते तो मेहेर सलीम की स्मृति कर सोचती—"क्या लिखूँ ?"

लगभग दिन-रात की सहचरी होने के कारण खुल ही पड गया था मेहेर का हृदय उस दासी पर। दासी सोचती थी, यदि उसकी स्वामिनी सलीम के अत पुर मे चली गई, तो अवश्य ही उसके भाग्य का नक्षत्र भी जाग उठेगा।

दासी बडे कौशल से मेहेर के समीप सलीम के गुण गाती, और उसके प्रति उसके हृदय मे उगते हुए अनुराग पर नित्य नया रग चढाती।

अकबर के एक सेनापनि के साथ मेहेर के विवाह की बातचीत चल रही थी।

एक दिन दासी ने कहा—"स्वामिना इधर कुछ दिन से देखती हूँ, जब आप इन पिंजरबद्ध कपोतो के सामने खड़ी होती है, तो गहरे चिंता-सागर मे डूबी रहती है।"

' क्या तुमसे नही कह रक्खा है मैने, यही दो कबूतर दो शब्द बनकर मेरे हृदय मे बदी है। वे अत्यन विकल होकर उड जाने के लिए छटपटाते है, और मै पीडा से मरी जा रही हू।"

"बडा रूखा व्यवहार हो चला है तुम्हारा इन पर।"

"नही तो।"

"कदाचित् इसलिए कि ये तुम्हारा प्यार पाकर कही यही अपना घर न समझने लगे, फिर पिजरे से खुलकर भी कही न जायँ।"

मेहेर ने दासी की चोटी खीचकर कहा—"बडी दुष्टा हो तुम।"

"इन्हे मुक्त कर दो न, कठिनता ही क्या है। केवल एक ही अक्षर तो लिखना है।"

"पिताजी की इच्छा।"

"क्या वह तुम्हारा अहित चाहते है ? मै कह आती हूँ उनसे अभी, युवराज सलीम मेहेर को अपनी रानी बनाने के लिए प्रस्तुत हैं। लेखनी, मसि और पत्र ले आऊँ।"

मेहेर का मुख प्रेम से चमक उठा।

दासी आवश्क वस्तुएँ ले आई—"लो, लिखो।"

मेहेर लिखने लगी।

"क्या लिखा ?"

"एक ही अक्षर। शीघ्रता करो।"

"दूसरे पत्र मे भी लिखो।"

"नही एक ही कबूतर मुक्त करूँगी।

"दूसरा ?"

यदि भूल सुधारनी पड एई, तो ?

चरण मे मेहेर के प्रेम-सदेश को बदी कर वह कबूतर मुक्त होकर उड चला। पत्र-वाहक कबूतर की प्रतीक्षा करने के लिए ही एक विशेष सेवक की नियुक्ति कर दी थी सलीम ने।

सेवक ने वह कबूतर ले जाकर सलीम को दिवा। उसने पुलकित, शकित हृदय से पत्र खोलकर पढा। लिखा था केवल—"हाँ।" युवराज हर्ष से उछल पडा। उसने अपने हाथ की एक रत्न-जटित अँगूठी उतार कर उस सेवक को दे दी।

इसके दूसरे दिन अबुलफ़ज़ल ने जाकर मिर्जा गयास पर सम्राट् का अभिप्राय प्रकट किया।

वह बोले—"मै अपनी कन्या का विवाह निश्चय कर ही चुका हूँ। राज्य की सेना में नियुक्त हैं वह यही, शेर अफगन उनका नाम है।" मन मे मिर्जा गयास सोच रहे थे—"अकबर बडा कूटनीतिज्ञ है। मेहेर मेरी सुगुण-सपन्न कन्या यदि सलीम के अत पुर मे पहुँच जाती, तो समस्त राजप्रासाद उद्भासित हो उठता।

अबुलफजल बोले—"बडी प्रसन्नता की बात है। कल आप राज-भवन मे पधारे प्रभात-समय, मै मम्राट् से आपकी भेट करा दूँगा।"

दूसरे दिन सम्राट् ने मिर्जा गयास से कहा—"आपकी कन्या के विवाह का सारा व्यय राजकोष वहन करेगा। पर, एक बात है, आपको वर और वधू को विवाह के पश्चात् शीघ्र ही यहाँ से स्थानातरित कर देना पडेगा।"

मिर्जा गयास चितत होकर बोले—"वर की आपकी सैना मे नियुक्ति है यहाँ ?"

"उसे दूसरी जगह नौकरी मिल जायगी।

"दिल्ली ?

"नही। जब विवाह मे कन्या दे चुके, फिर क्या मोह उसका। अनेक राजनीतिक कारण है इसके, आप पर स्पष्ट प्रेकट कर देने से कोई लाभ नही। आपके जामाता को बगाल भेज दिया जायगा। उनके भरण-पोषण के लिए नौकरी दे दी जायगी या जागीर। मिर्जा महोदय, आपसे भेट कर मै सनुष्ट हुआ हूँ। आपकी विद्या, नम्रता और विचार से प्रभावित हुआ हूँ। मै शीघ्र ही आपको आपनी राजसभा मे किसी पद पर रख दूँगा।

मिर्जा गयास के मन मे एक आशा की किरण चमक उठी। वह विचारने लगे, शेर अफगन मेहेर के योग्य वर है। सलीम विलासी, आलसी और मद्यप है। यह भगवान् का ही विधान समझूँगा कि मेहेर का विवाह उसके साथ न हुआ। उन्होने कहा—"मेरी कन्या फारसी मे कविता भी करती है।"

बडी उदासीनता से अकबर बोला—"हाँ, सुना है मैने भी। शेर अफगन हमारे इस प्रस्ताव पर सहमत है।"

मिर्जा गयास नेघर जाकर अपने पुत्र-कन्या को यह समाचार सुनाया। मेहेर के स्वप्न बडी ऊँचाई पर से भूमि पर गिरकर चूर-चूर हो गए !

अवकाश पाते ही सबसे पहले मेहेर उस एकाकी और बदी कबूतर के पास आई। उसने एक पत्र मे बहुत स्पष्ट और बडा-बडा 'नही' लिखकर उसके पैर मे बाँध पिंजरे का द्वार खोल दिया। कबूतर तीर के वेग से उड चला राजभवन की दिशा मे।

सम्राट् की यह नीति कुछ खुल चुकी थी सलीम पर, और उसे अधिक विस्मय न हुआ, जब उसने कबूतर के लाए हुए पत्र मे पढा—'नही।"

'नही ?'क्यो नही ? मेहेर नही तो सलीम भी नही !" सहसा भावावेश मे चिल्ला उठा वह—"मै जानता हूँ, इस षड्यत्र की जड मे कौन है ? वही शेख ! वह जीने नही देना चाहता सलीम को ! उसने फिर उस पत्र को हाथ मे लेकर पढा—"नही। मेहेर ! मै इस 'नही' के रहस्य को जानता हूँ। यह सम्राट् के आतक और पिता के अनुशासन पर लिखा गया है। इस 'नही' के विरुद्ध ही मेरे जीवन का युद्ध चलेगा। मै इसे 'हाँ बनाकर ही चैन लूँगा।

शीघ्र-से-शीघ्र बहुत छिपाकर मेहेर और शेर अफगन का विवाह कर दिया गया। उसे बर्दवान जागीर मे मिला। रातो-रात पति-पत्नी वहाँ के लिये बिदा कर दिए गए।

सलीम मेहेर के पास जाने के लिए एक दिन तैयार हो रहा था, तभी उसका बूढा सेवक बोला—"मेहेर का विवाह हो गया।"

चौंककर सलीम बोला—"कब ?

"पिछले इतवार को आज पॉच दिन हो गये !"

"और सलीम इतने अधकार मे रख दिया गया। फिर भी क्या चिता है, मै जाऊँगा ही।

"कहाँ जायँगे आप ? वर और वधू अन्यत्र, दूर, बहुत दूर, बगाल भेज दिये गए है।

सलीम ने सरोष अतःरक्ष की ओर आँखे तरेरकर कहा—"अच्छी बात है, देखा जायगा।

[३]

सलीम को इस प्रेम का अधतम सिरा दिखाई ही नही दिया था। मिलन, केवल मिलन ही को उसने उसमे खिलने वाला पुष्प समझा था। अब कॉटा चुभने पर कराह उठा वह। मन मे विचारता—"मै तो सर्वथा अनभिज्ञ था इस षड्यत्र से। मेहेर तुम तो जानती थी सब कुछ। क्यो नही स्पष्ट कह दिया कि मै सलीम को विवाह के लिये 'हाँ' लिख चुकी हूँ। भाग आती रातो-रात मेरे पास। फिर मै देख लेता कौन तुम्हारे रूप और यौवन के सूत्र उस उजड्ड सैनिक के हाथो मे दे सकता। नही है वह तुम्हारे सौदर्य की उपासना के योग्य, कदापि नही। इनके ऑखे ही नही है, इन्होने लौह-खड मे मणि को जड दिया, इन्होने कॉटो के भरे बबूल पर मल्लिका की बेल चढाई है।

इस प्रेम के नैराश्य से वह बिलकुल हतोत्साह होकर सोचता—"जब मेहेर ही नही, तो सलीम! क्या करना है तुम्हे इस राज्य और सिंहासन से। जगत् झूठा है, और प्रेम, इसके भीतर और भी निस्सारता से निर्मित स्वप्न! चलो हाथ मे एक भिक्षा-पात्र ले चले, दूर, किसी अज्ञात और अपरिचित देश मे, जहाँ जीवितावस्था मे अपना कोई मित्र न हो, और मर जाने पर न हो कोई रोने वाला।"

कभी वह सम्राट् के इस निर्णय से ऊब उठता—"पुत्र की मानसिकता पर इतना भारी आघात पहुँच कर अच्छा नही किया महाराज ने। परतु उनको भी अधिक दोष न दूँगा मै। उन्हे मत्रणा देने वाले मत्री ही उन्हे उलटा मार्ग बताते हैं। इन सबमे मुख्य है अबुलफ़ज़ल। मै उस दिन उससे भेंट हो जाने पर ही समझ गया था, अब यह न-जाने कौनसा विष बो देगा मेरे लिये। मेरी प्रेम-प्रतिमा को बिछुड़ाकर क्या हाथ

आया तुम्हारे ? क्या प्रेम एक शक्ति नही है ? क्या एकप्रे मी युवराज-पद के अयोग्य है ? मै समझता था मेहेर को पाकर मै अपने दोषो को दूर कर दूँगा। अवश्य ही इधर मेरा सुरा-सेवन बढ गया है। मै यह सब कुछ छोड देता, और महाराज की सेवा मे जाकर उनके अनुशासन पर अपना मस्तक विनत कर देता। पर अब यह सब कुछ नही हो सकता। जिन्होने एक प्रेमी और प्रेमिका के बीच मे अतर उपजाया है, उन्होने ही पिता और पुत्र के बीच मे बैर बढा दिया। ये राज्य के हिताकाक्षी हैं ! ये चाटुकार, इनकी श्वासो मे लपटे और वाणी मे विष है।"

महीने-पर-महीने बीतते चले, पर सलीम की वेदना बढती ही गई। वही एकात निवास, वही प्रिय-परिचितो से सबध-विच्छेद। माता कई बार समझाने को आई, पर वह अपने निश्चय पर अटल रहा।

सम्राट् अपने राज्य-विस्तार और और उनके संचालन मे ही व्यस्त थे। सलीम फिर कभी उनके निकट नही गया। महाराज भी उसकी समस्त आशा छोड चुके थे।

मेहेर अपने पति के साथ एक दूर देश मे निवास कर सुखी थी। सलीम की स्मृति बहुत दिन तक उसके मन को अधिकृत करती रही, पर धीरे-धीरे वह मिटने लगी बालू पर खडे पदाक की भाँति। शेर अफगन उस परम रूप और गुण से भरी हुई अर्द्धाङ्गिनी को पाकर अपना जीवन धन्य समझने लगा।

"क्यो मेहेर ! तुम्हे छुडाकर ले आया मै भारत की राजेश्वरी के सिंहासन से। क्या कभी-कभी तुम्हारे मन मे यह विचार उदित होता है या नही ?" शेर अफ़गन ने कहा एक दिन।

निश्चय के साथ मेहेर ने कहा—"नही।"

एक छोटी-सी जागीर का स्वामी, जिसका मन आठो पहर बगाल के विद्रोह की चिंता मे ही व्यस्त रहता है। उसके उत्तरदायित्व का जो भार लेकर यहाँ आया हूँ, उससे घबराकर कभी यह मन सब कुछ

छोड-छाडकर......"

"सब कुछ छोड-छाड कर ?" व्याकुल होकर बीच ही मे मेहेर बोल उठी ।

"हाँ, केवल तुम्हे नही मेहेर । सब कुछ छोड-छाड कर स्वदेश को लौट जाने को जी करता है । तुम्हारा जो स्वर्गीय प्रेम मिला है, उसके समीप यह श्री-सपत्ति और अधिकार तुच्छ प्रतीत होते हैं, क्योकि इनके कारण तुम्हे मै उचित प्रेम का प्रतिदान दे नही सकता ।"

"वहाँ क्या करोगे ?"

"अपनी समस्त आशा और आकाक्षाओ का केवल तुम्हे ही केंद्र बनाऊँगा । कही पर भूमि के किसी टुकडे को जोत और बोकर अपने लिये रोटी प्राप्त कर ही लेगे ।"

"परतु.. "मेहेर रुक गई ।

'परतु क्या ?"

"कुछ नही । एक अनभ्यस्त मार्ग ।"

"देखता हूँ इस प्रदेश का जल-वायु भी तुम्हे हितकर नही है । तुम्हारा वह चद्र-काति-सा मुख फीका पडता जा रहा है ।"

"नही तो । कोई रोग नही है मुझे ।"

"फिर कोई चिंता ?"

मेहेर चुप रह गई ।

शेर अफगन ने उसका गौर-कोमल कर पकड़कर कहा—"क्या चिंता है तुम्हे ?"

"कुछ भी तो नही ।" धीरे-धीरे मेहेर ने एक ठडी साँस ली ।

शेर अफगन ने दूसरा हाथ उसके कधे पर रखकर कहा—"देखो मेहेर, तुम्हे बताना ही पडेगा । मेरी शक्ति पर तुम्हें विश्वास रखना चाहिए । मेरे जीवित रहते ससार मे कौन है ऐसा, जो तुम्हे क्षति पहुँचाने का विचार भी कर सके । हमारा सुख-दुख व्यक्तिगत नही है । उस

पर एक-दूसरे का अधिकार है। तुम्हे बतना ही पडेगा, तुम्हे क्या चिता है ?

"स्पष्ट रूप से कुछ भी नही।"

"अस्पष्ट रूप से क्या ?

'रात्रि के अधकार मे जब मेरी नीद खुल जाती है, तो उस समय बडी भयकर सभावनाएँ नाचने लगती है मेरी आँखो के सामने।"

"किस प्रकार की ?"

"मानो हमारे इस सुख पर सारा ससार द्वेष कर रहा है। समस्त प्रकृति और जीव इसके शत्रु हो उठे है। क्यो ? मै नही जानती, हमने किस का क्या बिगाड किया है।"

"क्या युवराज सलीम की ओर से तुम्हे कोई आशका है ?"

"नही।"

"क्या कभी तुमने उन्हे कोई वचन दिया था ?"

'नही, नही।"

"तुम्हे शाति करनी उचित है ।यदि सलीम को हमारा यह प्रेम असह्य है, तो मै उसे भी ललकार सकता हूँ युद्ध के लिए। मुझे अपनी विजय का गर्व नही है, पर वह मेरे जीवित रहते कदापि तुम पर.. "

मेहेर ने बाधा देकर कहा—"यह केवल मेरी एक मानसिक दुर्बलता है। मै अब उस चिता पर विजय पाऊँगी।"

"इसी से तो मैने तुमसे कहा कि चलो भारत को त्याग कर चले जायँ।"

"नही। ससार तुम्हारे पौरष की निदा करेगा, जन्म-भूमि पहुँचकर तुम कहोगे क्या ? जब वे लोग तुमसे लौट आने का प्रश्न करेंगे, दुर्गम और दुस्तर नदी-वन और पहाडो के मार्ग से जब हम लौटेंगे। हारे-थके भूखे-प्यासे श्री और बल से विहीन, तब क्या सोचेंगे तुम्हारे जाति-भाई।

विदेश मे जब कोई भी पुरुषार्थ प्राप्त न कर तुम स्वदेश कोलौटोगे तो कौन बातें करेगा तुमसे !"

"इसी से तो मैंने, खेती करने को कहा।"

"यह एक कोरा स्वप्न है, असभव और अव्यवहार्य।"

"मै तुम्हे सूर्य के ताप और भूमि की कठोरता पर श्रम के लिए खेतो पर न छोड दूँगा।"

मेहेर हँसने लगी—फिर मुझे ही कैसे यह सहन होगा कि तुम अकेले ही परिश्रम करो, और मै घर के भीतर सुख के स्वप्नो की रचना करूँ। तुम योद्धा के पुत्र हो, वीर हो। जीवन का सघर्ष ! वह तो योद्धा को सचेष्ट रखने के लिए है न कि उसे भीरु और कायर बना देने को। हम यही रहेगे। कौन जानता है, भाग्य किस समय चमक उठे।

"वीर नारी के समान तुम्हारी यह ओजस्विनी वाणी मुझे साहस से पूर्ण कर गई। हम यही रहेगे। मै सचाई और लगन से सम्राट् की सेवा करूगा। अकबर मे न्याय भी है, और दया भी। योग्यता सिद्ध करने पर वह एक दिन मुझे बगाल का शासन-भार सौप देगा, इसमे सदेह नही।"

मेहेर का सुमधुर प्रेम पाकर वर्ष वासर बनकर मानो आँखे मीचते ही व्यतीत हो गया। मेहेर गर्भवती हुई और उसने एक कन्या को प्रसव किया।

अकबर ने मिर्जा ग़यास की पद-वृद्धि कर दी। उसके लडके आसफखाँ का एक अच्छे कुल मे विवाह करा दिया।

बीजापुर की रानी के साथ मुराद ने सधि कर ली। इसके फलस्वरूप बरार-प्रात मुगल-साम्राज्य को मिला। जब यह समाचार सम्राट् के पास गया, तो उन्होने इसे सर्वथा अपमान-जनक बताया।

राजकुमार मुराद की बिलासप्रियता से बरार की प्रजा मे उसका अकुश घड न सका। वहाँ की प्रजा मे खुला विद्रोह मच गया। जब उसको

दबाना उसकी शक्ति से बाहर हो गया, तो उसने घबराकर सम्राट् के लिए रातो-रात दूत भेजे ।

सम्राट् ने अपने दूसरे पुत्र राजकुमार दानियाल को बहुत बडी सेना के साथ दक्षिण को भेजा । मुराद लौट आया सर्वथा असफल होकर, पर उसे अपनी इस दुर्बलता पर कुछ भी क्षोभ न हुआ । उसने निर्लज्ज होकर सुरापान और कुसगति को और भी अधिक बढा दिया । उसका स्वास्थ्य बराबर गिरता गया, पर उसे इसकी भी कोई चिता नही हुई ।

अकबर जानता था, राजकुमार दानियाल से भी कुछ न हो सकेगा । वह भी मुराद के समान व्यसनी था । पर वह क्या करता, विवश था । सलीम के व्यवहार और जीवन मे कोई परिवर्तन न हुआ । राज्य पर पडे हुए इस सकट पर वह प्रसन्न हुआ ।

दानियाल भी विद्रोह को दबाने मे सफल नही हुआ । शीघ्र ही उस की मृत्यु हो गई ।

भाई की मृत्यु से भी सलीम का हृदय द्रवित नही हुआ । वह सम्राट् के पास नही गया । एक भयानक प्रतिहिसा उसके हृदय मे घर कर गई थी ।

अचानक सलीम के जीवन मे धीरे-धीरे परिवर्तन जाग उठा । अनेक सरदार और मत्रियो के जिन पुत्रो के साथ उसकी मैत्रीथी, जिनका सहयोग छिन्न कर वह एकातवास कर रहा था । अचानक उनका सहयोग प्राप्त करलेने को उसकी इच्छा जाग उठी । उसके कुछ साथी तो सम्राट ने स्थानातरित कर दिए । जो शेष रह गये थे, उनको सलीम स्वय टालता रहा ।

युवराज जितना रूप और रस का उपासक था, उतना ही आखेट-प्रिय भी था । धीरे-धीरे चार वर्ष बीत गए । वे विनोद और विलास की समितियाँ, वे आखेट की यात्राएँ, वे रास और रग के उत्सव, आखेट की धर-पकड, दौड-धूप, मित्रो की चहल-पहल सब नि शेष कर दी गई । मेहेर के विरह और परिवार वालो के विच्छेद के वे विलबित वर्ष सलीम केवल

एक आशा के ही भरोसे पर बिता रहा था।

"मेहेर मेरे ही लिए रची गई है।" ऐसी एक दृढ भावना उसके मानस मे गहरी अंकित हो हुई थी। "इसी विश्वास पर मै जीवित हूँ, नही तो कभी का काल-कवलित हो गया होता।" बहुधा वह ऐमा मन मे विचारता था।

एक दिन उसने अपने सेवक को बाहर द्वार पर किसी से बोलते हुए सुना।

सेवक कह रहा था—"कुछ भी हो। युवराज का कठोर निषेध है। कोई भी उनके समीप उपस्थित नही किया जा सकता।"

"जाकर कहो उनका बचपन का मित्र शेख उसमान आया है लाहौर से।"

"आप कही से भी आये हो। मैं जाकर नही कह सकता।"

"अच्छा मुझे स्वय ही जाने दो। मैंने काश्मीर के जगल में एक श्वेत सिह का आखेट किया है। उसे लाया हू।"

"नही, मै नही जाने दूँगा।"

"बडे विचित्र हो तुम।"

"स्वामी की आज्ञा का पालन। क्या करूँ, चाहता तो मै भी हूँ कि युवराज फिर पूर्व की भाँति अपने मित्रो से हँसे-खेले।"

अचानक भीतर से सलीम ने पुकारा—"आने दो मेरे इस मित्र को।"

सेवक ने प्रसन्न होकर द्वार खोल दिया।

"आओ मित्र उसमान, तुम मेरे लिए श्वेत सिंह का आखेट कर लाए हो। ऐसी वस्तुएँ पहले मेरा ध्यान आकृष्ट करती थी। कुछ दिन पश्चात् फिर करेंगी। अभी मेरे मन मे दूसरा ही शेर दहाड़ रहा है। सलीम ने उसे बैठने को आसन दिया।"

उसमान सोचने लगा, सलीम मद मे हैं। बोला—"स्वास्थ्य कैसा है?"

"बिल्कुल ठीक।"

"आखेट को कब से नहीं गए हो ?"

"चार वर्षों से ।"

"कारण ?"

"स्वयं ही आखेट हो गया हूँ ।"

उसमान उसी दिन बाहर से आया था । कुछ सुना था नहीं । कौतूहल और मुस्कान मिले मुख से निहारा उसने ।

"हाँ उसमान, अब तो सभी पर यह बात खुल गई है । तुमसे क्यों छिपाऊँ । तुम मेरे अनेक दिनों के मित्र हो । सलीम के उजले और तमोमय दोनों पृष्ठ तुम पर खुले हुए हैं । सुनो, मैं एक सुन्दरी के नेत्र-बाणों से आहत हो गया हूँ । न जीवित ही हूँ न मृत ही हूँ । सलीम कहकर चुप हो गया ।"

उसमान उस सुंदरी का नाम जानने के लिये अधीर हो गया, पर पूछ न सका कुछ ।

सलीम बोला—"मैं क्या तुम्हें उसका नाम बताऊँ । जिससे भी पूछोगे, ज्ञात हो जायगा । तुम बहुत उपयुक्त समय में आ गए । मेरे समस्त मित्रों को एकत्र करो । कहो उनसे कि सलीम ने उन सबको निमन्त्रित किया है । उसके एकांत की अवधि बीत चुकी ।"

निकट ही कहीं पर बूढ़ा सेवक यह सब ध्यान-पूर्वक सुन रहा था; दौड़ता हुआ आ पहुँचा—"बड़ी प्रसन्नता की बात है युवराज । इस शून्यता का पहरा देते-देते घबरा उठा था मैं ।"

युवराज ठहाका मारकर हँस उठा—"तुमने स्वागत-सत्कार नहीं किया कुछ भी मेरे मित्र का !"

सेवक तत्परता के साथ चला गया ।

उसमान बोला—"क्या किसी आखेट का आयोजन किया है ?"

"हाँ ।"

"कहाँ ?"

"इलाहाबाद । परंतु बड़ा विकट आखेट है मित्र ।"

सेवक ने फल, मेवे और मिष्टान्न की थालियाँ लाकर रक्खी।

सलीम ने कहा—"और ?"

"शर्बत लाता हूँ अभी।" सेवक बोला।

"तुम भूल गए। उसमान को नही पहचानते ? यह मेरा नवीन मित्र नही है। सलीम के भीतर तुम जो यह नई स्फूर्ति और उमग देख रहे हो, यह सब इन्ही के आ जाने से खिल उठी है। कुछ उदारता से काम लो। सच्चा मित्र बहुत कम मिलता है।"

सेवक समझ गया, और सुरा की सुराही भी रखकर चला गया।

सलीम ने धीरे-धीरे कहा—"सलीम के पिता तेरह वर्ष की अवस्था मे ही सिहासन पर प्रतिष्ठित हो गए थे और सलीम तीस वर्ष का होने पर भी अभी तक दूसरो के अन्न-धन और इच्छा पर ही अपना जीवन बिता रहा है।"

"युवराज।" कहकर उसमान ने बडे आश्चर्य-भाव से उसकी ओर देखा।

हँस पडा सलीम—"यह एक सत्य ही है मित्र, मद की प्रेरणा कदापि नही। क्या समझ रक्खी है तुमने मनुष्य की आयु ! कोई भी तो निश्चय रूप से नही कह सकता, मै दस वर्ष अभी और जीऊँगा। दानियाल, मेरा प्रिय सहोदर, देखो, यौवन मे ही चल बसा। वह किसी चमकती हुई आशा के फेर मे न था। जो कुछ इच्छा अपने साथ लाया था, उसे पूर्ण कर ही गया। सलीम भी उसी की स्थिति मे होता, तो ठीक था, पर उसके हृदय मे एक झूठी आकाँक्षा आरोपित कर दी गई है।"

उसमान चुपचाप सुन रहा था।

"सम्राट् का जयघोष करनेवाले, उनके चिरजीवन की कामना के स्वर उदात्त करने वाले क्या सलीम के मार्ग के शत्रु नही हैं ? उसमान, उत्तर दो।"

"मै आपकी बाते नही समझ रहा हू।

"कुछ दिन मे समझ लोगे, मुझे अधीरता नहीं है ।

"जन्म और मृत्यु दोनो भगवान् की इच्छा पर निर्भर हैं, इस पर कोई क्या कह सकता है ।"

"तो मैं समझता हूँ, सलीम भी इसी प्रकार एक दिन इसी शून्य कक्ष मे अपनी शेष साँसे समाप्त कर देगा । इसी से तो सिंहासन के लिए सम्राट् को पौत्र प्रिय हो उठा है । मेरी बारी नही है उसमान ?" सलीम कहते कहते उठ खडा हो गया—"तुमने लिया नही कुछ ? इलाहाबाद उपर्युक्त स्थान है ?"

"किसलिये ?"

"इन सब अधूरी आकाक्षाओ को मूर्त देखने के लिये । प्रिय मित्र, मेरे मत्रियो मे से प्रतिष्ठित रहोगे । किसी ज्योतिषी को जानते हो तुम ?"

"किसलिये ?"

"समझता हूँ मैं, वह भाग्य को पलट सकता नही, पर कभी-कभी बता सकता है अवश्य ही । तुम पूछ ला दोगे उससे ?"

"क्या ?"

मेरे कुछ प्रश्न, नही केवल एक । उसी पर तो मेरे समस्त प्रश्नों का आधार है ।"

"प्रश्न क्या है ?"

"यदि ज्योतिषी प्रश्न का उत्तर बता सकता है, तो प्रश्न भी जान ही लेगा ।"

"कम-से-कम मेरा बिलकुल विश्वास नही है इस विद्या पर ।"

"सम्राट् अकबर का विश्वास है । और उनका पुत्र भी विश्वास रखता है ।"

कुछ देर और इधर-उधर की बाते करने के अनतर जब उसमान विदा हुआ, तो सलीम ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"देखो उसमान भूल न जाना हाँ । ज्योतिषी से मेरे प्रश्न का उत्तर पूछ लाना । मेरा नाम न बताना ।"

दानियाल की मृत्यु का समाचार सुनकर अकबर अत्यत शोक-सतप्त हो उठा ! एक ओर राज्य-हानि और दूसरी ओर सतान का वियोग, दोनो ने उसे अधीर कर दिया।

दु ख मे मनुष्य की सत्प्रेरणाएँ जाग उठती है। एक पुत्र की मृत्यु हो गई, दूसरे का स्वास्थ्य भी सतोषजनक न था। अकबर का तीसरे और सबसे ज्येष्ठ पुत्र सलीम पर जो कुछ रोष-भाव था, सब तिरोहित हो गया। पिता ने मन-ही-मन पुत्र के समस्त अपराध क्षमा कर दिये।

उन्होंने सलीम को बुलाने का निश्चय किया। मन में एक भ्राति उपजी, यदि वह बुलाने पर भी न आया, तो ? अकबर स्वयं ही उसके पास चल दिये।

सलीम के मद का दिवा-स्वप्न टूट पडा, जब उसने अपने द्वार के बाहर अपने सेवक का घोष सुना—"सम्राट् की जय हो !"

"सम्राट् की जय हो ?" उसने अपने भाल मे रेखाओ का संकोचन-कर कहा—"सम्राट् की जय !" कैसी जय ! मेरे द्वार के इतने निकट ! उसके समस्त अग मे बिजली की एक लहर-सी चमक गई—"मैं भी तो सम्राट् हूँ। पर पिता की अस्वस्थता के कोई समाचार नहीं सुने मैने। मेरा वृद्ध सेवक सब समाचार रखता है अपने पास।"

उसी समय सेवक ने द्वार खोले। अपनी विस्तारित भुजाओ में अजस्र और असीम स्नेह लिए हुए सम्राट् को प्रवेश करते हुए देखा सलीम ने।

स्थिर न रह सका वह। उसने दौडकर पिता का अभिनदन किया। अकबर ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। उसके नेत्र आसुओ से डब-डबाए हुए थे।

पिता का स्नेह उमड़ पडा पुत्र के मानस में कुछ क्षणों के लिये। बोला वह—"महाराज ने क्यों इतना कष्ट किया ? मै स्वय ही सेवा में उपस्थित हो जाता।"

"कहाँ आए तुम ?" वह महान् सम्राट् बालको के समान अधीर हो

उठा। उसके ओष्ठाधर काँपने लगे। उसकी दोनो आँखो मे से दो बडे-बडे आँसू प्रकाश मे झलककर नीचे कालीन के शुष्क फूल मे खो गए—"दानियाल असमय मृत्यु के जबडे मे समा गया। माता एक न सही तुम्हारी, क्या एक ही पिता के ममता-सूत्र मे ग्रथित और प्रतिपालित न हुए थे तुम ? तुम इतने विस्तृत साम्राज्य के भावी स्वामी हो। प्रजा तुम्हारे आदर्श पर दृष्टि रखती है, तुम्हारा उदाहरण देती है।"

सलीम ने पिता को ऊँची मसनद पर बिठाया, और स्वय उनके समीप विनत और करबद्ध खडा हो गया। उसके मस्तिष्क मे विचारो का प्रलय-सघर्ष मचा हुआ था। उसका मुख स्थिर नही कर सक रहा था कि वाणी मे किस भाव के लिए मार्ग बनावे।

सम्राट् के दाहने पार्श्व मे एक चौकी पर सुराही और प्याले रक्खे हुए थे। अकबर का वह सहसा प्रवेश सलीम को खटक रहा था। वह सेवक की मूढता पर भी मन-ही-मन कुढ रहा था। चौकी और सम्राट् के बीच मे खडा होकर किसी प्रकार सलीम सुराही को अपनी ओट से छिपा रहा था, पर कब तक ?

सम्राट् कह रहे थे—"इसलिए हे प्रिय सलीम, यौवन की चपलता का त्यागकर अब गभीर हो जाओ। अपने दायित्व को समझो, और उस भार को ग्रहण करने योग्य बनो। इस साम्राज्य के विस्तार को न देखो। देखो, कितनी कठिनाई से यह अर्जित किया गया है, और किस कठिनाई से यह सयुक्त रखा जा रहा है।"

सलीम अवश्य ही पिता के उपदेशो को सुन रहा था, पर वे शब्द उसके मस्तिष्क मे जाकर कोई अर्थ नही खोल रहे थे। उसके मन मे प्यालो के साथ वही सुराही परिक्रमा कर रही थी। वह इस विचार की धारा मे बहता जा रहा था—"यदि कही इनका व्याख्यान सुराही के विषय को लेकर चल पडा, तो .."

महाराज कहते जा रहे थे—"दक्षिण मे हमारी प्रतिष्ठा को बट्टा लग

रहा है. और उधर पुर्तगालवासी हमे तृणवत् समझ रहे हैं।"

बीच ही मे सलीम ने सेवक को पुकारा।

"तुम सुन नही रहे हो !"

"सुन रहा हूँ महाराज, ध्यान पूर्वक।" सलीम ने बडी सावधानी से सेवक की ओर देखा। आँखो से उस सुराही को हटा देने का सकेत दिया, और अधरो से उच्चारित किया—"पखा !"

"नही, पखे की कोई आवश्यकता नही है।"

सेवक सुराही हटाकर चला गया। सलीम के प्राणो में प्राण आए !

राज्य का विद्रोह सम्राट् की दुर्बलता है, और साम्राज्य के टुकडे-टुकडे हो जाने की भविष्य वाणी। उस आग को फैलते-फैलते यहाँ तक आ जाने मे क्या देर लगेगी ? इसलिये जाग उठो सलीम, समय रहते ही सचेत हो जाओ।"

"बगाल मे भी तो विद्रोह की आशंका बराबर बनी ही रहती है।

"मै दक्षिण की बात कह रहा हूँ युवराज। बगाल की चिंता छोडो।"

"बंगाल का जलवायु मुझे अधिक हितकर है। मै जब दक्षिण जाने का विचार करता हूँ, तो समझने लगता हूँ, मै वहाँ·· "वह रुक गया। दूसरे प्रकार उसने वाक्य को समाप्त किया—"मुझे रह-रहकर राजकुमार दानियाल की दु खद स्मृति हो उठती है।"

अकबर ने सलीम का तात्पर्य समझ लिया। उसने निश्चय किया, सलीम को उपदेश देना जगल के रोदन, ऊसर की खेती और बालू की भीत बनाने के समान है। उन्होने कहा—"सलीम, मै समझता था, आयु की वृद्धि के साथ तुम्हारी समझ मे परिपक्वता आवेगी, पर तुम आज भी वही पर हो, जहाँ चार वर्ष पहले थे। यौवन को अविनश्वर और कर्तव्य को उपेक्षा के योग्य समझा है तुमने। केवल इद्रियो के तुच्छ सुख को प्रमुख रखकर तुम काल की सर्वक्षयता को भुला रहे हो।"

"साम्राज्य की आकाँक्षा रखने पर भी तो उसके बल की कोई हानि नही होती ।"

सम्राट् ठक रह गए । मन मे सोचने लगे—"केवल पशु है यह । इससे अधिक बाते करना निरर्थक है ।" आसन पर से उठ गए वह । बलात् उनके मुख से निकल ही तो पडा—"स्मरण रक्खो सलीम, यदि समय रहते इन पुतलियो के खेल से निष्कात न हो सकोगे, तो राज्य का एक-एक मनुष्य तुम्हारा शत्रु होकर तुम्हारे विनाश का कारण हो जायगा ।" वह चल पडे ।

"महाराज !" सलीम ने उनका अनुसरण किया ।

सेवक ने द्वार खोल दिए ।

"नही, अब कुछ नही, मै अतिम बात कह चुका तुमसे ।"

"पिताजी !"

पर महाराज कोई भी उत्तर न देकर चले गए उस भवन का त्याग कर । बाहर उनके अनुचर खडे थे । सम्राट् अकबर उनके साथ लौट गए ।

"खेल तो सभी पुतलियो के ही हैं, क्यो मित्र !" सलीम ने सेवक से पूछा ।

सेवक अन्यमनस्क होकर चुप था ।

"उत्तर क्यो नही देते ?" सलीम ने उसकी बाँह पकड ली—"तुम्हारे श्वेत-केशो में सत्य की परिपक्वता देख रहा हूँ । खोलते क्यो नही मुख ?"

"पुतली क्या हुई ?"

"गुड़िया से अर्थ होगा महाराज का ।"

"महाराज अत्यत रोष मे भरकर गए है यहाँ से । आपके हित के लिये ही तो कह रहे थे ।"

"दिल्ली मे राजाओ की समाधियाँ हैं, राजधानियो की भी तो समाधियाँ हैं । वे अवश्य कुछ ऊँची है । रको की समाधियो का पता नही

लग सकता, वे धरती के साथ मिल गई हैं। लेकिन मित्र ये ऊँची समाधियाँ भी तो प्रत्येक क्षण नीची होती जा रही है। क्या शताब्दियो की बुहारी इन्हे भी एक दिन समतल न कर देगी।"

"तुम नशे मे हो युवराज।"

सलीम ने मानो कुछ सुना ही नही। अपनी धुन मे कहने लगा—"एक बात भूल गया महाराज से कहना। अवसर भी तो नही दिया कुछ बोलने का उन्होंने। जाओ, वह अभी दूर पहुँचे हैं! जाकर उनसे कहो, यदि वह अब भी मेहेर के साथ मेरे विवाह की अनुमति देते है, तो अभी जाकर दक्षिण के विद्रोह को कुचल सकता हूँ।" सलीम बडे वेग के साथ द्वार की ओर बढना चाहता था, पर उसके पैर डगमगाने लगे।

सेवक ने सहारा देकर उसे शय्या पर सुला दिया।

सम्राट् ने सोचा था, वह सलीम को इस बार अपना वशवर्ती बना लेंगे, किंतु वह सफल न हो सके। वह उसे दक्षिण को ही भेजना चाहते थे। सलीम की ओर से नितात निराश होकर उन्होने अबुलफजल को बहुत बडी सेना के साथ दक्षिण के विद्रोहियो को विजित करने के लिये भेजा।

उसमान एक मनसबदार का पुत्र था, वह पर्याप्त धनवान् और प्रभावशाली था। सलीम से उसकी मैत्री बहुत दिनो की और गाढ़ी थी। उसमान को कुछ ही दिनो मे युवराज के सबध की समस्त बाते ज्ञात हो गई।

कई दिन के पश्चात् उसमान उस दिन युवराज के पास पहुँचा।

जाते ही सलीम ने कहा—"कई दिन मे आए ?"

"हाँ, युवराज काम करने मे कुछ देर हो गई। इसके अतिरिक्त मैं अस्वस्थ भी हो गया था। ठीक हूँ अब।"

"तुमने मेरा काम किया ?"

"हाँ, मैने आपके सब मित्रो को आपका सदेश दे दिया है।"

"वे इलाहाबाद चलने को तैयार हैं ?"

"हाँ।"

"और ज्योतिषी ? उसने क्या कहा ? कुछ कह सका वह ?"

"हाँ। उसने कहा कि प्रश्नकर्ता के मन मे एक चिता है।"

"बहुत व्यापक उत्तर। किसकी चिता है ? यह नही बता सका ?"

"नही, प्रश्नकर्ता का नाम-राशि पूछता था।"

"तुमने नही बताया, ठीक किया।"

"जहाँ तक गिनती है, वहाँ तक ठीक है युवराज, गणित को जब वे 'हाँ' और 'नही' का जोड लगाकर सज्ञा और क्रिया मे बदलने लगते हैं, तब भ्रम बढने लगता है।"

हँसने लगा था कि सलीम, एकाएक गंभीर हो उठा—'तुम्हारे, 'हाँ' और 'नही' ने एक बीच-बीच मे सोती हुई स्मृति जगाकर चपल केर दी। चलो, इलाहाबाद चले फिर। अच्छा एकात और आनद रहेगा। यहाँ तो चौबीसो घटे कलह है। कभी उत्तर की छीना-झपटी, कभी पूर्व का रण-विद्रोह और कभी दक्षिण का धावा और चढाई! शस्त्रों की झन-कार, घोडो की टापे रात के सुख-स्वप्नो को भी तोड-तोड देते हैं। ये राजनगरी की कूट मत्रणाएँ, सरदारों की चाले, अमीर और मनसबदारो का दर्प और अत्याचार और इन चाटुकारो की तीखी और दुधारी जिह्वा, नही रहने देती यहाँ।"

"शेख अबुलफ़ज़ल कवच और मुकुट धारण कर दक्षिण को चले हैं। सम्राट् ने अपने हाथ से उन्हे राजमुकुट पहनाया, और पीठ पर थपकी दी।"

"हाँ, सुना मैने भी।" सलीम द्वेष से भर उठा—"अबुलफजल! क्या कहूँ तुमसे मित्र। एक और था इसके जोड का बीरबल, लड़ाई के मैदान में मारा गया बेचारा, चलो, छुट्टी हुई। पापो से छुटकारा मिल गया।

प्रायश्चित्त हो गया। मेरा ज्योतिष कहता है, यह अबुलफजल भी दक्षिण मे, विद्रोह मे, अराजकता मे, लडाई के मैदान मे, मृत्यु के घाट मे कही चिरविश्राम तो न पा जायगा ! ये शाति और विश्व-प्रेम के बने हुए दूत, एक उत्तर से नही लौटा, क्या दूसरा दक्षिण मे ही समा जायगा ! यदि समा जाता, तो उसमान फिर क्या था, फिर हमारी नौका, मृदु-मथर अनुकूल पवन पाकर चलने लगती हमारे पथ मे। चलो, फिर तब तक किसी सुदिन की अच्छे नक्षत्रो के उदय होने तक वही इलाहाबाद ही मे दिन मे मत्रणा करेगे, और रातो को उत्सव !"

"दिन निश्चय कर दीजिए फिर। जब आज्ञा हो, हम तैयार हैं।"

"खु-स-रू बा-ग ! उसमान ! इस नाम को बदल देना चाहता हूँ। साहित्य का अनुराग भी तो है तुम्हारे हृदय मे, सोच सकते हो उसके लिये कोई और भी मधुर नाम ?"

"क्यो यही, अच्छा तो है। अपने चिरजीव राजकुमार के नाम पर आप ही ने तो रक्खा था यह।"

"कुछ बेसुरा-सा सुन पडने लगा अब।"

"नही तो।"

"तुम्हारी अतरग मित्रता जोडने के लिये तुमसे कुछ भी नही छिपा रक्खा है। नही छिपाऊँगा। जब मेहेर वहाँ आ जायगी, तो यह सौत के पुत्र का नाम उसे खटकेगा तो नही ?"

"युवराज !" डरते-डरते उसमान बोला।

"मैंने तुम पर हृदय खोला है।"

"एफ दूसरे मनुष्य की स्त्री !"

"एक दूसरे मनुष्य की स्त्री ? तुम्हे सत्यज्ञान नही है, इसी से ऐसा कहते हो। विवाह होने से पहले मेहेर मुझे अपना प्रेम दे चुकी है, और यह मुझ पर स्पष्ट विदित है, यह इसी अबुलफजल की कानून है, इसी ने उसका अन्यत्र विवाह कराकर दूर भेज दिया। उसमान, शेर अफगन

को क्या दोष दूँ मै, वह चद्रमुखी किसे नही चाहिए । मेरे पास उसके हाथो की लिखी हुई स्वीकृति है । मेरा विश्वास है, शेर अफगन उसे मुझे-लौटा देने पर सम्मत हो जायगा ।"

शीघ्र ही सलीम ने इलाहाबाद को प्रस्थान करने का दिन नियत किया । मित्रो ने समझाया उसे कि सम्राट् से बिदा लेना शिष्टाचार, सभ्यता-लाभ और भलाई की बात होगी । अवश्य ही उनसे मिलकर जाना चाहिए ।

सलीम ने सोचा—"चलो, एक बात रह गई है, उसे भी प्रकट कर मन का खटका दूर कर लूँ ।"

सलीम राजभवन को चला, कई वर्ष के पश्चात् ! नौकर-चाकर इष्ट-मित्र सबकी आँखे उसी पर जाकर ठहर गई । वह सीधा सम्राट् के पास गया ।

"मैं इलाहाबाद जा रहा हूँ; आपसे बिदा लेने आया हूँ ।"

सम्राट् ने सिर से पैर तक उसे देखा, कहा कुछ भी नही ।

"एक बात रह गई है महाराज । उसका सतोष-जनक निर्णय होने पर कदाचित् मै आपकी इच्छानुसार आपकी सेवा का भार बहन कर सकूँ ।"

आशान्वित होकर नही पूछा अकबर ने—"वह-क्या ?"

"मेहेर मेरी स्त्री है, यदि वह मुझे मिल जाय, तो मै अभी जहाँ सम्राट् कहे, वहाँ जाने को प्रस्तुत हूं ।"

वाक्य के पहले ही शब्द ने सम्राट के समस्त अंग में आग-सी लगा दी—"निर्लज्ज और दु शील ! इतने पतित हो गए तुम ? शीरे के पीछे भागती हुई मक्खी के समान एक नारी की ओर दौडते हुए लज्जा नही आती तुम्हे ? अपने पूर्वजो के अर्जित मान-संभ्रम को लुटाकर एक तुच्छ पशु हो जाना रुचिकर हो गया तुम्हे ? जिसने अपने चरित्र को इस प्रकार गला रक्खा है, वह किसी कर्तव्य का भार सँभाल कर नहीं रख सकता ।

तुम स्वय भलाई विचार लोगे, यही समझकर मैंने तुम्हे प्रतिबध हीन छोड दिया था। पर देखता हू, तुम्हारी सगति और तुम्हारे विचार तुम्हे ऊपर न उठने देगे। तुम कीच-कीट होकर रह गए! जाओ, यदि मुझे अधिक क्रुद्ध नही करना चाहते हो, तो अपनी इस शारीरी मूढता को यहाँ से अभी ले जाओ। राज्य और अपने मगल की कामना रखते हो, तो इस पैतृक सिहासन पर अधिकार की दृष्टि न रखना।" कहते-कहते अकबर का मुख आरक्तिम हो गया। उसके स्वर में बडी तीव्रता थी, हाथ-पैर थर-थर काँप रहे थे।

बाहर भी अनेक सेवको ने अकबर का यह रोष सुना। कोई मन में प्रसन्न हुआ, और किसी ने क्षुब्ध होकर भगवान् से प्रार्थना की।

सलीम बडे तीव्र वेग से लौट गया।

एक दासी ने तुरत ही जाकर महारानी से कहा। दूसरी युवराज्ञी के पास चली गई। उसकी माता अकबर के पास को दौड़ गई, पर सलीम वहाँ से जा चुका था।

युवराज्ञी बोली दासी से अनखाते हुए—"होने दो विग्रह, मैं क्या करू। मैं थोडे जाऊँगी शाँति कराने के लिये। पिता हैं, साम्राज्य के स्रष्टा हैं। उचित ही तो कहा होगा उन्होने सर्वथा। मन पर रास रखनी चाहिए युवराज को। यह भी कोई बात हुई, जो स्त्री दिखाई दी मार्ग मे, उसी पर रीझ गए।"

सलीम अधा होकर लौट रहा था। अत पुर के उपवन में खुसरू खेल रहा था दासियो के साथ। बहुत दिनो मे पिता को देखकर दौड पडा उनकी ओर।

"पिता! पिता!" गोद मे जाने के लिये ललक-भरे हाथो को पिता की ओर बढाए हुए उल्लास से चिल्ला उठा बालक खुसरू—"पिता! पिता!"

दासियाँ भी उसके साथ चल पडी।

सलीम मानो पुत्र के ममता भरे सबोधन पर बहरा होकर जा रहा था। मुड़कर एक क्षरा देखा भी नही उसने। कहा तो यह नही जा सकता कि उसने सुना ही नही।

उसी दिन और उसी घडी सलीम अपने अनेक मित्रो के साथ इलाहाबाद के लिये प्रस्थित हो गया। जो उस समय न जा सके, उन्होने दो-तीन दिन पश्चात् जाना स्थिर किया।

हाथी-घोडे, रथ-शिविका, शिविर-समान, दास-दासी, खाने-पीने की सामग्री, साज-सज्जा के साथ युवराज चला। मित्रगण मार्ग की काली रातो मे रग भरने के लिये कुछ नर्तकियो और मधुबालाओ को भी रख ले गए। यद्यपि सलीम के मन मे दूसरी ही विचार-धारा प्रवाहित हो रही थी, तथापि उसने मित्रो के अनुरोध को अक्षुराए रखना ही उचित समझा।

युवराज बडे ठाट-बाट से चला। उसके मुख-मडल मे कोई सिलवट न थी, न थी उसकी सहचारिता मे कोई कमी। परंतु राजभवन की समस्त जनता पर सब कुछ खुल चुका था। वे मार्ग से हटकर छिपे-छिपे उसका प्रस्थान देख रहे थे। देख रहे थे, जैसे एक टूटा हुआ तारा नक्षत्र-मडल से विलग होकर जा रहा था।

प्रयाग पहुँचते ही सलीम ने एक दासी और कुछ सेवको के साथ उसमान को बर्दवान के लिये बिदा किया। उसमान पर यह कार्य-भार सौपा गया था कि वह जाकर शेर अफगन को समझावे कि वह शाति-पूर्वक मेहेर को सलीम को सौप देवे। और, दासी की नियुक्ति थी कि वह मेहेर के अत.पुर मे प्रवेश कर उससे कहे कि सलीम केवल उसी की आशा पर जीवित है।

कुछ दिन पश्चात् सम्राट् अकबर ने भी दक्षिरा के लिये प्रस्थान कर दिया। उन्होने अहमदनगर पर विजय प्राप्त कर असीरगढ़ के दुर्ग पर घेरा डाल दिया।

सलीम ने प्रयाग मे जब सुना कि सम्राट् राजधानी से दूर विग्रह मे उलझे हुए है, तो उसने बडी सरलता से इलाहाबाद के दुर्ग, सेना और सरदारो को अपने वश मे कर लिया। उसने उच्च स्वर मे अपने सम्राट् होने की घोषणा की। उसने आस-पास के छोटे-मोटे करद राजाओ को भाँति-भाँति से प्रभावित कर लिया। सेना और वस्त्र एकत्र कर सलीम बडे वेग से अपना बल और विस्तार बढाने लगा।

पुत्र के यह विद्रोह का समाचार अकबर के पास अविलब ही पहुँच गया। वह स्तभित रह गया इस घटना से। उसने कोई कल्पना ही नही की थी कि सलीम यहाँ तक बढ जायगा। उसके दक्षिण की विजय के समस्त हर्ष पर युवराज के विद्रोह ने घनी छाया डाल दी।

---

[४]

उसमान ने बर्दवान पहुँचकर स्पष्टतया युवराज सलीम के पास से दूत बनकर अपना पदार्पण विघोषित किया। उसके साथ की दासी मेहेर के अत पुर मे प्रवेश करने का अवसर ढूँढने लगी।

शेर अफगन आशकाओ से घबरा उठा! सलीम का नाम सुनते ही उसके होश उड गए। वह मुगल सम्राट् का एक तुच्छ सेवक, युवराज के प्रतिनिधि का स्वागत करना उसका प्रथम कर्त्तव्य था। फिर चाहे युवराज के सदेश मे उसके लिये पत्र-विहीन केवल काँटो के ही करीर की शय्या क्यो न रची गई हो।

उसमान और उसके साथियो को अतिथिशाला मे ठहराया गया। कोई भी त्रुटि उनके आतिथ्य-सत्कार में न रहने दी गई। मार्ग के श्रम से स्वच्छ और विश्रात हो, कुछ जल–पान कर उसमान शेर अफगन की सभा मे उससे मिलने गया।

बडे आदर और प्रसन्नता के भाव से उसमान ने सभा मै प्रवेश किया, और सेवकों के सिर पर से युवराज का भेजा हुआ प्रीति-उपहार उसे समर्पित किया।

सुंदर-सुंदर बहुमूल्य वस्त्राभूषरण, फल-मेवे, कुछ सुरा भी। शेर अफगन यह सब देखकर घबरा गया—"बडा कष्ट किया युवराज ने। यह तो हमारा कर्त्तव्य था कि इस प्रकार उनकी सेवा करते। इसमें सुरा है?"

"हाँ, अत्यत दुर्लभ और उत्कृष्ट! केवल देवता और राजाओं के पीने के योग्य। उन्होने अपने व्यक्तिगत सग्रह मे से भेजी है।"

"परन्तु मै सुरा-सेवन नही करता।" शेर अफ़गन युवराज का सदेश

जानने को भीतर-ही-भीतर बडा आकुल हो रहा था, पर पूछने का साहस ही न हो रहा था उसे ।

"सुरा-सेवन नही करते ! फिर भी कभी किसी के आतिथ्य के लिये, सत्कार के लिये, ओषधि के लिये काम आ ही जावेगी ।"

"युवराज की इच्छा भला मैं कैसे टाल ही सकता हूँ ।" अधरो के कंपन को चबाते हुए शेर अफगन बोला ।

उसमान हर्ष से उछल पडा ! उसने मन मे निश्चय किया वह मित्र का काम पूरा कर ले जायेगा एक ही यात्रा मे । उसने कहा—"यही चाहिए भी । युवराज भावी सम्राट् हैं । उनकी मित्रता सौभाग्य से किसी बिरले को ही मिलती है । युवराज की इच्छा यदि आप न टालेंगे, तो संपूर्ण बगाल का अधीश्वर बन जाने मे आपको क्या देर लगेगी ?"

"युवराज की इच्छा ?" मन-ही-मन सोचकर काँप उठा शेर अफगन युवराज की इच्छा बडी परिचित और भयकरता याद पडने लगी । वह चुपचाप विचार के अनल जल मे डूब गया ।

उसमान ने अपने साथ के सेवको को बिदा कर दिया । उपहार की एक थाली मे ऊपर ही से एक मुहरबद पत्र रक्खा था । उसमान ने कहा—"यह आपके लिये, युवराज के स्वाक्षरो से युक्त है ।"

शेर अफ़गन पत्र खोलकर पढने लगा—"केवल भूल से सलीम का एक परमोज्ज्वल रत्न तुम्हारे पास आ गया है । सलीम ने इसके लिये कभी तुम्हे दोषी नही समझा है । पत्रवाहक, मेरा अतरग मित्र, उसे मेरे पास रक्षा के साथ ले आवेगा । इसके बदले मे तुम्हे युवराज की प्रगाढ मैत्री प्राप्त होगी ।" पत्र पढकर उसका माथा चकराने लगा । वह पर काटे हुए पक्षी के समान अपने आसन पर गिर पड़ा !

एक दासी पखा झल रही थी । एक कार्याध्यक्ष विनीत भाव से खडा था । एक-दो सेवक और भी बद्ध कर उस कक्ष मे उपस्थित थे ।

उसमान ने अध्यक्ष और सेवकों से कहा—"यह उपहार की

सामग्री यथास्थान ले जाकर रक्खो।" दासी को सबोधित किया—"एक पात्र मे शीतल जल पिला दो।"

केवल उसमान और शेर अफगन रह गए वहाँ पर। शेर अफ़गन पर खुल पडी थी सारी बात।

उसमान ने अतिम आवरण दूर कर कहा—"मेहेर ही सलीम की मनोवाछित मणि है। उसे लौटा देने मे आपको कोई आपत्ति होनी न चाहिए।"

"मेहेर ? मेहेर ?" सर्वस्व लुटते हुए के समान उसने कहा।

"हाँ, मेहेर।"

"वह मेरी विवाहिता पत्नी है।"

"सलीम उस पर प्रेम कर चुका है, आपके विवाह से पूर्व। मुझे अपना मित्र समझो। सिंह के भोग पर दाँत न गडाओ।"

"नही।"

"बुद्धि से काम लो।"

"क्या महाराज की भी यही इच्छा है ?"

"हो सकती है। कदाचित् उनसे पूछा नही गया। उनके मन मे दक्षिणी राज्य का विस्तार ही अधिक समाया हुआ है आजकल। और वह शीघ्र ही दक्षिण को स्वय प्रस्थान करने वाले थे।"

"आप मेरे भी मित्र है। मैने सम्राट् की आज्ञा का पालन कर यह विवाह किया है। इतने वर्षों से मैने उस रमणी पर अपना प्रेम सचय किया है। हमने बहुत ही कम अपने बीच मे कलह को स्थान दिया है। उससे मुझे एक कन्या भी प्राप्त है। युवराज के लिये राज्य मे सुंदरी रमणी की क्या कमी है। और, मै केवल एक ही नारी का आदर्श हृदय मे रखता हूँ। हम तीन प्राणियो के बीच की एक पवित्र शृखला को तोडकर क्यो हमे छिन्न-भिन्न कर देना रुचिकर हो गया युवराज को। नही, नही, एक पराई स्त्री को छीन लेना, कदापि युवराज की शोभा

नही। मै पिता-पुत्र के बीच कलह का कारण न बनूँगा। नही मित्र मै इस जागीर को भी छोड जाऊँगा। कही और किसानो के श्रम एव दीनता मे छिप जाऊँगा। मेहेर के माथ मुझे वह स्वीकार है। उसके मोल मे मुझे समस्त बगाल का स्वामित्व नही चाहिए।"

और उस समय उसमान के साथ की दासी बडे कौशल मे मेहेर के अत पुर के द्वार खुलवाकर उसके सामने खडी हो गई थी। कलाबत्तू के फूल-बेलो से भरे हुए रेशमी वस्त्र से ढकी हुई थाली उसके दोनो हाथो मे थी। वह मेहेर की पुरानी दासी थी।

"गुलाब! तू कहाँ से आ गई अचानक? मेरे पिता और भाई तो आनदपूर्वक हैं न? भाई का विवाह हो गया, और मुझे उन लोगो ने इस प्रकार परित्यक्त कर दिया कि केवल एक भाई, उसके विवाह मे, मै केवल एक ही बहन, मुझे नही बुलाया। भाभी कैसी है, भाई के मन के अनुकूल होगी ही, तुम पर अनुग्रह रखती हैं या नही?"

गुलाब ने थाली पर से एक हाथ हटाकर अपने अधरो पर रखकर धीरे-धीरे कहा—"मै उनकी नौकरी छोड चुकी हूँ। इलाहावाद से आई हूँ। युवराज सलीम ने मुझे भेजा है।"

मेहेर जैसे किसी हिंसक पशु को देखकर कोने मे सिमटने लगी—"गुलाब!"

"क्यो? क्यो भय खाती हो? युवराज के लिये तुम्हारे हृदय मे जो कोमल भावना है, उसे मै जानती हूँ।"

"इन सब बातो को दुहराने से कोई लाभ नही गुलाब! मै अपने प्रेम मे सतुष्ट हूँ। मुझे मरीचिका न दिखाओ। मेरे गृह, मेरे जीवन और मेरे ससार के टुकडे-टुकडे न कर दो। तुम्हारे पैर पडती हूँ। वह देखो मेरी बच्ची जाग पडी रोते-रोते।" मेहेर शय्या की ओर दौड गई।

उसकी नन्ही बालिका चौककर रोने लगी थी। मेहेर उसे गोद मे लेकर पुचकारने लगी। न हुई वह चुप।

गुलाब ने अपने हाथ की थाली उन मा-बेटियो के सिर पर परछकर भूमि पर एक ओर रख दी, और धीरे से आवरण का एक कोना उठाया। थाली मे से अशर्फियो और आभूषणो की चमक फूट पडी।

दासी बोली—"यह तुम्हारे दुर्ग्रहो की शाति के लिये युवराज ने भेजा है। सब दीन-दु:खियो मे वितरित कर देना।"

बालिका अभी चुप न हुई थी। गुलाब ने उसे पुचकारना चाहा। एक अपरिचिता को देखकर और उसकी अनभ्यस्त वाणी को सुनकर वह और भी उच्च स्वर मे रोने लगी।

उसमान ने शाति-पूर्वक कहा—"विचार लीजिए फिर। सम्राट् की आज्ञा क्या है। अधिक-से-अधिक दो-तीन वर्ष और, फिर सलीम ही तो सम्राट् हो जावेगे' इसलिये वृद्ध और दुर्बल सम्राट् की मैत्री से अधिक आपको युवक युवराज की भौहो की ओर देखना चाहिए।"

भीतर से फिर एक बार शेर अफगन की कन्या रो उठी। 'बडी देर से रो रही है, न-जाने क्यो ?" कहकर शेर अफगन बिना अपने अतिथि की आज्ञा लिए ही भीतर चला गया।

आहट पाते ही मेहेर ने वह थाली शय्या के नीचे सरकाकर छिपा दी।

शेर अफगन का ध्यान उस नवागतुक स्त्री ने खीच लिया। उसने पूछा—"यह महिला कौन है ?"

"गुलाब, मेरी पुरानी दासी। आपने देखा तो था विवाह के अवसर पर।"

"किसके साथ आई ?"

दासी चुप रही और मेहेर धीरे-धीरे गुंजित स्वर से बालिका को सुलाने लगी।

अपने प्रश्न को मिटा हुआ देख शेर अफग़न ने फिर पूछा—"किसके साथ आई हो ?"

गुलाब ने अब तक उत्तर सोच लिया था। बडी स्थिरता और विश्वास के साथ बोली—"साम्राज्य की डाक के साथ। ऊँटनी-सवार किफायत, मेरी बुआ का लडका है। डाक सीधे गौड को चली गई।"

शेर अफगन सहमकर चुप हो गया। उसने दासी से पूछने के लिये दूसरा प्रश्न सोच लिया था, पर मुँह नही खोला।

पति को सशय मे बँधा देखकर मेहेर कहने लगी—"गुलाब ही मेरी पहली सखी और दासी थी भारतवर्ष के प्रवास के उन आरम्भिक दिनो मे। तब हमारे लिये यहाँ की जनता और प्रकृति सब अपरिचित और असह्य थे, सूर्य, चद्रमा और तारा-मडल भी तो।"

सभा-भवन मे बैठा हुआ उसमान उसके मन मे राहु बनकर धँसा हुआ था। और, अत पुर के भीतर वह नारी, जिसे उसकी स्त्री सखी की सज्ञा दे रही थी, वह भी तो उसे सर्पिणी-सी ही दिखाई दे रही थी, केवल अधरो पर ही एक क्षीण हँसी खिचकर भौहो के सकोच मे छिप गई—"अच्छा।" कहकर वह घूम गया एक दूसरे कक्ष के द्वार की ओर, उसने पुकारा—"मेहेर!"

दोनो ने एक दूसरे कक्ष मे प्रवेश किया। कन्या चुप हो गई थी। माता के गले के रत्नहार को हाथ मे लेकर खेलने लगी थी।

पति बोला धीरे-धीरे—"गुलाब के साथ अधिक ममत्व दिखाने की क्या आवश्यकता है। क्या वह तुम्हारे पास फिर नौकरी के लिये आई है?"

"अभी कुछ कहा नही उसने ऐसा।"

"तुम्हारे पिता के यहाँ नही है यह?"

"नही।"

"यह भी एक बात है। हमे यह ठीक न बताएगी, क्यो छोड दिया उसने वहाँ।" कहकर शेर अफगन जाने लगा। उसके मन मे उसमान युवराज सलीम का वह प्रततिनिधि, रोग से अधिक कष्टकर एवं अपमान से अधिक पीड़क होकर बसा हुआ था। "समझ से काम लेना मेहेर,

तुम समझदार हो।" पति चला गया। उसने मेहेर से सभा-भवन मे विराजमान उस नवीन अतिथि का कोई उल्लेख ही नही किया।

मेहेर गोद की बालिका के साथ हँसती-खेलती हुई गुलाब के पास चली गई।

शेर अफगन गया वहाँ, जहाँ उसका अध्यक्ष उसमान की लाई हुई भेट को सजाकर रख रहा था। बोला—"नही, यह सब उठा लो। एक तिनका भी रखना नही है इसमे का। शीघ्र ही जिस प्रकार रक्खा था, वैसे ही रखकर ले आओ मेरे पास।"

अध्यक्ष ने स्वामी से कारण पूछना उचित न समझा।

शेर अफगन ने सभा-भवन मे प्रवेश कर उस मृत्यु के दूत को उसी आसन मे स्थिर और उसी इच्छा मे दृढ पाया।

"मेरे स्थान मे अपनी स्थिति की कल्पना कर सकते हो मित्र! क्या मृत्यु का दड-पत्र इससे कही अधिक स्निग्ध और सुशीतल नही है?" शेर अफगन बोला।

"मेहेर सलीम को चाहती है। पिता के अनुशासन एव सम्राट् के आतक ने उस कुल-बाला के अधर सी दिए, और उसने अपने हृदय के भावों को बलि दे दिया। तुम्हारे विवाह की बेडी पहन ली।"

"मै नही विश्वास करता इस बात को। मैने मेहेर के प्रेम को निरतर शुद्ध और स्वच्छ पाया है। उस प्रेम मे एकता और तल्लीनता समय की वृद्धि के साथ बराबर बढती ही गई है। मेहेर के कौमार्य अवस्था की इस तुच्छ बात को कहने से कुछ भी लाभ नही है। मैने सम्राट् की आज्ञा से उससे परिणय किया है। सम्राट् के जीवित रहते मुझे कोई भय नही।"

अध्यक्ष सेवको के सिर पर रक्खी हुई उसमान की भेट वापस ले आया। उसमान ने कुछ विचलित होकर देखा उधर।

"हाँ, मित्र, सादर यह युवराज की भेंट लौटा देना, कह देना उनसे कि

मेहेर उनसे प्रेम नही करती, और शेर अफगन सम्राट् की आज्ञा का अनुवर्ती है। यदि उन्होंने किसी प्रकार एक शातिप्रिय प्रजा को, एक कर्तव्यनिष्ठ सेवक को, एक अनुरागबद्ध दपति को छिन्न-भिन्न किया, तो उनको मेहेर नही, उसका केवल पिजर प्राप्त होगा। इस बात को भूल जायँ वह कि मेहेर उन पर अनुराग रखती है। यह भी समझा देना उन्हें कि पिता की इच्छा और आज्ञाओ का भी उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए।"

शेर अफगन के भाव तथा वाणी मे एक गहरी पीडा और प्रेम की अक्षरता फूट पडी उसमान पर। कुछ क्षण के लिये सब कुछ भूलकर चुप रह गया वह। अत मे बोली—"कुछ और इस पर विचार कर लेना मित्र। मै दो-चार दिन ठहर जाऊँगा। युवराज की वह भेट, इसका तिरस्कार करना भी उचित नही है।" उसमान उठकर जाने लगा।

शेर अफगन ने उसका हाथ पकड लिया—"इस प्रश्न पर और कोई दूसरा मत हो ही नही सकता। बहुत स्पष्ट और उच्चतम स्वर मे 'नही' इसे निश्चित और अटल उत्तर समझो। वैसे आप हमारे अतिथि हैं। आप जितने भी दिन यहाँ रहेगे, हम आपकी सेवा करना अपना धर्म और परम कर्तव्य समझेगे। यह भेट उठा ले जाइए। मेरे सेवक पहुँचा देगे।"

उसमान के मुख मे मानो सलीम का ही मन उदास हो उठा! उसे गुलाब का स्मरण हुआ। कदाचित् उसका प्रयत्न सफल हो रहा हो। अधिक कुछ उस विषय पर उस समय बाते करना उसमान को न जँचा। उसने मदस्मित के साथ बिदा ली, और वह अपने निवास पर चला आया।

मार्ग मे ही उस पर विदित हो गया था कि शेर अफगन के भृत्य उसके दिए हुए उपहार को लिए उसका अनुसरण कर रहे हैं। कोई बात नही की उसने उन सेवको से। अन्यमनस्क होकर वह भेट सँभालकर रखवा ली

उसमान ने उन चारो भृत्यो की मुट्ठियों मे जब एक-एक अशर्फी भर दी, तो वे समझने लगे, यह मुगल साम्राज्य का कोई बहुत बडा पदवी-धर है। उन्होने बारी-बारी से भूमि का दाहने हाथ से स्पर्श कर उन्हे प्रणाम किया, और चले गए।

उसमान अपने शयन-कक्ष मे जाकर विश्राम करने लगा, और गुलाब किस प्रकार लौटेगी, इसके अनुमान और स्वप्न मे विचारते हुए सत्य की प्रतीक्षा करने लगा।

शेर अफगन के जाने के उपरात जब मेहेर गुलाब के पास आई, तो बडे दयनीय भाव से हाथ जोडकर बोली—उसे प्रेम नही कहना चाहिए तुम्हे। वह प्रेम की अवस्था ही कहाँ थी। मुगल अत पुर का वह अपरिमित ऐश्वर्य देखकर कौतूहल और विस्मय से भर उठी थी मै। उसी कौतूहल और विस्मय की दृष्टि से मैने सलीम को देखा था, उसे प्रेम नही कहना चाहिए तुम्हे।"

गुलाब रह-रहकर उस दिन की स्मृति मे पड गई, जब मेहेर ने सलीम से अपना प्रेम-सभाषण स्नानागार मे बद होकर गुलाब से छिपा लिया था।

मेहेर कहती जा रही थी—"प्रेम का अर्थ ही जब ज्ञात नही था, तब किससे प्रेम किया जा सकता है। एक लालसा कह सकती हो, नही कुछ भी न कहो गुलाब।"

गुलाब ने मलिन मुख कहा—"फिर ?"

"नहीं, इस विषय को ही छोड़ दो।" मेहेर बहुत धीरे से बोली—"कही वह कुछ सुन लेंगे, तो तुम सकट मे पड जाओगी। गुलाब, तुम मुझे प्रिय हो। तुमने जितना अपने को उनसे छिपाया है, उससे अधिक मैने तुम्हे आवरित कर रक्खा है। गुलाब, बहुत स्पष्ट कह देती हूँ मै तुमसे। यदि तुमने अपना पुराना सबध तोड़ दिया मुझसे, तो अपनी रक्षा के लिये मुझे तुम्हारा परदा उलट देना ही पडेगा।"

गुलाब झटपट हाथ जोडकर बोली—"नही, स्वामिनी, तुम्हारी इच्छा की अनुगामिनी हूँ मैं।"

"इस विषय पर यदि सदैव ही मौन रहने की प्रतिज्ञा करो, तो फिर मेरे ही पास रह जाओ। मैं तुम्हे नौकरी दूँगी। वे सहर्ष सम्मत हो जावेंगे।" मेहेर ने कहा।

"बडी साध तो है फिर तुम्हारी सेवा करने की, इसीलिए इतनी बडी यात्रा का श्रम उठाकर आई हूँ।"

"रहो फिर।"

"उनका उत्तर?" गुलाब ने उस कन्या को खिलाते हुए कहा।

"मिला दो ऐसे ही भूमि के रजकणो मे। फूँक दो पवन मैं।"

हँस पडी गुलाब—"फिर मेरा मस्तक मेरे कधो पर रहेगा, तुम समझती हो?

'रहो फिर कुछ दिन तो।

गुलाब मूक रही।

"पहले के ही समान मेरी अतरग दासी होकर रहोगी। यहाँ की ये दासियाँ, इन पर मेरा विश्वास ही नही जमता।

गुलाब ने मेहेर की कन्या को अपनी पुचकार और चुटकियों के वश मे कर लिया। उसने दोनो हाथ बढाकर उससे कहा—"आओ।

बालिका ने माता की गोद छोड दी, और गुलाब के पास चली गई। मेहेर ने चकित होकर उस दासी की ओर देखा।

गुलाब मन मे सोचने लगी—"उतने बडे साम्राज्य के अत पुर की लालसाओ को कुचलकर मेहेर रह सकेगी क्या इस साधारण सरदार के कुटीर में।" वह बालिका को लेकर बाहर उपवन में चली गई।

मेहेर की एक दासी ने आकर कहा—"स्वामिनी, सम्राट् के यहाँ से कोई प्रतिनिधि आया है यहाँ, अतिथि गृह मे ठहरा है। उससे भेंट कर सुनती हूँ आपके पति चिंतित हो उठे हैं, क्या बात है? यह स्त्री कौन

है बाहर वाटिका मे ? क्या उन्ही के साथ आई है ?"

"मुझसे कुछ भी नही कहा उन्होने।" मेहेर सोचने लगी कुछ।

दासी ने फिर पूछा—"यहाँ की रहने वाली है क्या यह ?"

"नही, आगरे से आई है। मेरी पुरानी दासी है।"

दासी कुछ द्वेष से भर उठी थी। समझने लगी थी, कुछ मूल्य गिर जावेगा उसका। बोली—"बडी चपल और अभिमानिनी जान पडती है। मै ले आती हूँ बालिका को, कही गिरा तो न देगी।" वह बाहर चली गई।

अन्यमनस्कता से शेर अफगन ने कक्ष मे प्रवेश किया—"कहाँ गई तुम्हारी पुरानी दासी ?"

"बाहर वाटिका मे। आगरे से कौन आया है आज। मुझे नही बताया तुमने। कुशल तो है ?"

"भगवान् जाने मेहेर।" पति ने चिंता की साँस ली।

"क्यो-क्यो ?"

"सलीम ने महाराज के विरुद्ध विद्रोह किया है।"

"पुत्र ने विद्रोह किया है !"

"हाँ, असंभव कुछ भी नही है ! उसी का प्रतिनिधि आया है।"

"विद्रोह मे सम्मिलित करना चाहता है तुमको ?"

'हाँ।"

"फिर ?"

"सम्राट् हमारे अभिभावक और सरक्षक हैं। उनका नमक खाया है। उनके विरुद्ध विद्रोह ! भगवान् को क्या उत्तर दूँगा सृष्टि के अत के दिन ?"

मेहेर मन मे सोचने लगी—"क्या सलीम एक नारी के लिए विद्रोह कर सकता है ? क्या मै इतनी सुंदरी हूँ ? नही कोई और कारण होगा।"

उस दासी की गोद मे नही गई बालिका। गुलाब विजय का उल्लास लिए आ पहुँची कक्ष मे। दासी ने भी वहाँ आकर फिर प्रयास किया, फिर हँसकर मुख फिरा लिया कन्या ने।

"क्या नाम है तुम्हारा ?" शेर अफगन ने प्रश्न किया।

"गुलाब ही एक क्षुद्र सबोधन है इस सेविका का ?"

"हमारे यहाँ नौकरी करोगी ?"

"आप ही लोगो का तो अन्न खा रही हूँ।"

शेर अफगन चला गया अन्यत्र गुलाब से विना कोई स्पष्ट उत्तर लिए ही। उसके मन मे स्थिरता नही थी। गौड से बगाल के शासक का एक विशेष दूत आकर अभी-अभी उसको दे गया था, सलीम के विद्रोह का समाचार। वह उसे बडी सावधानी से रहने और सम्राट के प्रति अविचल भक्ति रखने के लिये कह गया था।

"उसमान ने फिर क्यो नही इस विद्रोह की कोई चर्चा की मुझसे ? कूटता होगी कोई ! या वह पहले चला होगा, मार्ग मे कही रुक गया हो ?" शेर अफगन मसनद के सहारे लेट कर सोच रहा था।

चौकियो पर चार मन्त्री उसके एक आज्ञा-पत्र की प्रतिलिपियाँ कर रहे थे। आज्ञा-पत्र उसके असामियो के लिए था। जिसमे उन्हे प्रत्येक समय किसी भी सघर्ष के लिए जागरूक रहने की आज्ञा दी गई थी। उन्हे शीघ्र ही अपनी तलवारो और भालो को चमका लेने का भी अनुरोध किया गया था।

"तो क्या उसमान सेना लेकर आया है ? कही छिपा आया हो, और आवश्कता पड़ने पर उससे काम लेना चाहता हो !" शेर अफगन मसनद पर से उठ गया। उसने अध्यक्ष को बुलाकर कहा—"चार प्रहरियो को अतिथिशाला के चारो द्वारो पर नियुक्त कर दो, कोई अन्य बहाना बना कर बैठ जायँ, प्रहरी की भाँति नही। चार प्रहरी रात के लिए भी रखने होगे। पहरा बदलने पर चारो प्रहरी मेरे पास आकर मुझे सूचित

करेंगे अतिथि-गृह के निवासियो की गतिविधियाँ। कोई सशयात्मक प्रवेश या प्रस्थान पर तुरत ही मुझे सूचित करना होगा, नीद से जगाकर भी।"

अध्यक्ष ने सचित होकर अपने प्रभु को निहारा।

"हाँ अध्यक्ष, तुम्हे ज्ञात ही है वह मनुष्य सुवर्ण और मणियो का लोभ दिखाकर मुझे मेरे कर्तव्य से विमुख करना चाहता है। यह नही होगा, शेर अफगन धर्म को सब से बडी वस्तु समझता है। मै उस उच्छृखल राजकुमार को प्रजा, पिता और परमेश्वर इन सबके निकट महान् अपराधी समझता हूँ। क्यो ?"

"नि सदेह !"

"सब से निर्भय हो जाने के लिए कह दो। बगाल के सूबेदार ने मुझे लिखा है, वह शीघ्र ही पश्चिम के समस्त नाको पर सशस्त्र सैनिको की संख्या नियुक्त कर रहे हैं।"

अध्यक्ष स्वामी की आज्ञा को कार्य मे पलटने के लिए चला गया।

आँगन में बदी पक्षी बोल रहे थे। मेहेर की दासी उनको दाना-पानी देने चली गई।

मेहेर ने कन्या को अपनी गोद मे ले लिया—"गुलाब युवराज सलीम विद्रोही हो उठे हैं, तुमने नही कहा।"

"मै तुम्हारे ही मुख से सुन रही हूँ।"

"क्या कारण हो सकता है।"

"क्या बताऊँ ?"

"राजसिहासन, कदाचित युवराज राजतिलक की प्रतीक्षा करते-करते थक गया है ?"

"नही।"

"फिर ?"

"तुमने ही यह प्रसंग छेडा है, इसलिये वह चर्चा न करने को प्रतिज्ञा करने पर भी मुझे कहना पडेगा।" बहुत धीरे गुलाब ने कहा।

"क्या-क्या ? सक्षेप मे कहो न ।" उससे भी धीरे मेहेर बोली ।

"युवराज के विद्रोह का मूल कारण तुम हो ।"

सिहर उठी मेहेर । दीवार पर टँगे हुए दर्पण मे उसका पूरा रूप प्रतिफलित हो रहा था । मेहेर ने निहारा उसे—"नही, गुलाब ऐसा मत कहो । मैं एक साधारण सरदार के गृह मे उत्पन्न कन्या, भाग्य-हीन, माता की वरद छाया से भी हीन हो गई शैशवावस्था मे ही । इतनी दूर जन्मभूमि का त्यागकर आए, तब कही जीवन के उपकरण जुट सके । सच कहो, क्या मै रूपवती हूँ ?"

"मैंने कई बार तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दिया है । यह दर्पण भी ठीक-ठीक तुम्हारी छवि को प्रतिबिंबित नही कर सकता । केवल वही कर सकता है ।"

"कौन ?"

गुलाब ने उसके कान मे कहा—"युवराज सलीम ।"

"चुपो । चुपो ।"

"नही, इतना तो कहकर ही रहूँगी । प्रकट सत्य है, उसे तुम्हारे सामने खोलने मे फिर मैं प्राणो का मोह भी छोड दूँगी ।"

मेहेर ने पति के पथ मे सावधानी से कान बिछाए । वह सुनना चाहती थी ।

"मेहेर ! मेहेर ! की रट से उसने भूमि-आकाश और दिन-रात के सिरे मिला रक्खे हैं । माता-पिता, महल की रानियाँ, सुत-सतान, राज्य-वैभव सबसे विरक्त होकर बैठा है, क्या कहूँ तुमसे । तुमने आज्ञा ही नही दे रक्खी है, नही तो "

"अच्छा, चुप रहो, आज्ञा का पालन करो ।" हठात् मेहेर को कुछ स्मरण हुआ—"तुम यह एक भयावनी अग्नि लेकर आई हो । मैं अधिक न सुलगने दूँगी इसे । एक विष-दश ! तुमने पहले भी गड़ाया था वह और बडी पीडा ! बडी कठिनता से इतनी दूर आकर वह पीडा शात

हुई थी। तुम उसी क्षत पर फिर व्रण उपजा देना चाहती हो। नही गुलाब, तुम आज ही चली जाओ।" बहुत गभीर होकर मेहेर बोली—"मै कह दूँगी उनसे, चली गई, जी नही लगा।"

बहुत विरक्त होकर दासी बोली—"चली जाऊँगी, आज तो अब असभव है, कल को।"

"किसके साथ ?"

"साथ की इस चिंता से भी क्या करना है तुम्हे। सराय मे जाती हूँ। मिल ही जायगा कोई-न-कोई। रात-दिन साम्राज्य की डाक चलती ही रहती है। कही-न-कही मिल ही जायगी।" आत्माभिमान-भरी दासी गुलाब उठकर चली गई।

मेहेर चाहती थी उसे पुकारे, पर उसकी पुकार हृदय मे ही केवल एक लहर होकर विलीन हो गई! उसको गुलाब की उतारी हुई उस आभूषणो और द्रव्य की थाली की स्मृति हुई। उसने सोचा—"यह ले जा, कहना था मुझे। स्वय ही वितरण कर देती वह। दासी को भेजकर उसे बुला लूँ। अभी निकट ही होगी।" कुछ सोचकर कहने लगी—"नही। इस आग को बुझने ही दूँ।"

गुलाब सीधी अतिथिशाला की ओर चली। शेर अफ़ग़न के एक गुप्त प्रहरी की तीव्र दृष्टि उस पर पडी। गुलाब उसके निकट जाकर बोली—"मुगल-साम्राज्य के कोई प्रतिनिधि यहाँ ठहरे है क्या ?"

"हाँ। कौन हो तुम ?"

"आगरा जाना चाहती हूँ, साथ ढूँढ रही हूँ। दासी तुम्हारा स्वामिनी की।"

प्रहरी की आँखो मे धूल पड गई। सोचा उसने—"नही, इससे कोई अर्थ नही।" प्रहरी उससे कुछ और बात करने को लालायित हो उठा।

पर गुलाब उससे पहले ही अतिथिशाला के भीतर चली थी।

"क्या है ?" अपने एकात कक्ष मे उसका हठात् प्रवेश पाकर उस-

मान ने पूछा—"अत्यत शीघ्र आ पहुँची ? हुई विजय ?"

"नही ।" मुरझाकर गुलाब बोली ।

"फिर क्या होगा ? हमारा दर्प मिट्टी मे मिल गया ! क्या कहेंगे युवराज से ?"

"आप अपनी तो कहिए ।"

'शेर अफगन ने युवराज की बहुमूल्य भेट और प्रस्ताव को घृणा से ठुकरा दिया ।"

"फिर ?"

"अधिक दिन यहाँ रहना सकट को बुलाना है। तुमसे क्या कहा मेहेर ने ?"

"अगाध जल के समुद्र-सा अतुल उसका हृदय, कभी थाह ही नही पा सकी मै उसकी ।"

कुछ आशान्वित होकर उसमान ने कहा—"है कोई चिनगारी प्रेम की उसके मानस मे सलीम के लिये । हम उसमे शिखा उगा लेंगे ।"

"मै नही जानती, पर उसने बडी तीव्र भाषा और घृणा के भाव से 'नहीं' कहा है । एक दिन चाहती थी वह सलीम को, मैं भूलती नही हूँ ।"

"तब जाओ, फिर प्रयास करो । मेहेर के बिना हमारा लौट जाना, हमारे लिये बडी लज्जा की बात है ।"

"नही, मैं न जाऊँगी ।"

"क्यो ?"

"यद्यपि उसने प्रकट अपमान कुछ किया नही है मेरा, तथापि उसने जिस प्रकार से मुझे अपने हृदय की व्यथा दिखाई है, मेरा हृदय करुणा से भर उठा है । उससे अच्छा है, मै रिक्त हाथ युवराज के पास लौट जाऊँ ।"

"जाती हूँ, तो कह आओ ।"

"कह आई हूँ ।"

उसमान ने विचार किया। अंत मे उसी दिन लौट जाना स्थिर किया। उसने अपने सहचर और चालको को यात्रा के लिये तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी।

सलीम के विद्रोह के समाचार अकबर के पास पहुँचते देर न लगी। कभी वह क्रोध से तमतमा उठते, और कभी उनका हृदय क्षमा से भर जाता। कभी वह सलीम को पकडकर उसे कठोर दड देने का निश्चय करते, और कभी मृत दानियाल, मरणासन्न मुराद का चित्र उनकी आँखो के आगे नाचने लगता। अनेक प्रार्थनाओ और साधनाओ का पुत्र सलीम, उसके लिये किस दड का विचार किया जाता ?

असीरगढ के दुर्ग के पतन के पश्चात् सम्राट् ने अबुलफजल से परामर्श किया—"सलीम ने भारी अपराध किया है। पिता की जीवितावस्था मे, उसकी अनुमति के विना, उसने जो अपने को भारत का सम्राट विघोषित किया है, इसके लिये वह दडनीय है। आप उसके लिये किस दंड का विधान करते है ?"

अबुलफज़ल दाढी पकडकर चुप रह गए।

"सम्राट् का पुत्र है, तो क्या हुआ। आपने सदैव निर्भीक और नि.स्वार्थ विचारो से मेरा साथ दिया है। इस कठिन परीक्षा मे भी आप न्याय का विसर्जन न करेगे।"

"राज्य के अतत उत्तराधिकारी तो हैं ही वह···"

सम्राट् ने बीच ही मे उन्हे रोक दिया—"अधिक तर्क से क्या होगा। केवल सक्षेप में कहिए, वह दडनीय है ?"

"हाँ, वह दडनीय हैं।" अबुलफ़ज़ल ने तेजस्विता के साथ कहा।

"स्पष्ट और सत्य! उसे क्या दड दिया जाय ?"

"यदि वह उत्तराधिकारी न होते, तो कठिनतम दड भी कम था। उनका उत्तराधिकार छीनकर उनके पुत्र राजकुमार खुसरू को दे दिया जाय।"

"आपका अर्थ है फिर उसे आजन्म कारागार मे डाल दिया जाय।"

"यदि उन्होंने पश्चात्ताप कर लिया·· "

"बिना कारागार मे बदी हुए वह पश्चात्ताप नही कर सकता। उसे बदी करना होगा। उसके पिता को यह कामन सौपिए। सतान का प्रेम कदाचित् उसे कर्तव्य-विरत कर दे। आप एक बडी सेना लेकर इलाहाबाद की ओर कूच कीजिए, और उसे मेरी आज्ञा से बदी कीजिए। चलिए, प्रधान लेखक को बुलाइए, नही, उससे भी छिपाइए, आप स्वय लिखिए। मै आज्ञा-पत्र पर सही करता हू, अभी। वह जहाँ भी, जिस दशा मे भी हो, उसे बदी कीजिए, और मेरे पास लाइए। मै अभी कुछ दिन यही रहूँगा। मै दक्षिण और समुद्री किनारो को साम्राज्य से स्पष्ट और सुरक्षित रूप से सबद्ध कर ही लौटूँगा। मेरे पूर्वजो का अर्जित यह राज्य, इसे मैने अपनी भुजा और मस्तिष्क की शक्तियो से फैलाया है। उसका उत्तराधिकार इस प्रकार यह चोरी से छीन लेना चाहता है। नही मित्र, मै उसे दड दूँगा। हाथों मे हथकडियाँ डालकर उसे मुझे दिखाइए। उसे पकडने की यह मत्रणा गुप्त रखिए। इसे दक्षिण विजय के हर्ष और उल्लास मे छिपाकर आगे बढिए।"

भारतवर्ष के समस्त वर्ण और सप्रदाय के लोगो को प्रसन्न करने की अनवरत चेष्टा से भी सम्राट अकबर सबको सतुष्ट नही कर सका था। साम्राज्य की परपरा मे से ही जब एक दूसरा झडा फूट निकला, तो वे भिन्न मत के लोग राज्य-द्रोही सलीम का साथ देने लगे।

प्रयाग के आस-पास की भूमि और उसके अधिकारियो को अपने वश मे करता हुआ सलीम बुदेलखड तक जा पहुँचा। वहाँ के अधिपति के साथ उसकी बहुत दिनो की मैत्री थी।

अबुलफजल सेना के साथ राजधानी की ओर बहाना कर बढ रहा था, अपने वक्ष मे सम्राट् के आज्ञा-पत्र को सावधानी से छिपा रक्खा था उसने। मार्ग मे उसका एक सरदार टूट पडा। उसे वह भेद ज्ञात था। सलीम के निकट वह भेद सबसे अधिक मूल्य मे बिक सकेगा, इस लोभ

से सरदार ने रोग का बहाना कर लिया, और एक सक्षिप्त मार्ग से सेना की चाल से अधिक घोडा दौडता हुआ चला। बुंदेलखड की सीमा मे पहुँचकर युवराज की अवस्थिति उसे ज्ञात हो गई। युवराज का सान्निध्य प्राप्त करते उसे देर न लगी।

"अबुलफ़जल आपको बदी बनाने के लिये आ रहा है। उसकी जेब मे सम्राट् का आज्ञा-पत्र है।" सरदार ने सलीम के कान मे बहुत धीरे-धीरे कहा।

बुंदेलखंड के अधिपति भी वही उपस्थित थे।

सलीम स्पष्ट न सुन सका था। बोला—"इनसे छिपाने की कोई आयश्कता नही। यह मेरे अतरग मित्र है।"

"गुप्त बात है। कह दूँ?"

"हॉ-हॉ, बिना किसी झिझक के।"

'अबुलफजल आपको बदी बनाने आ रहा है, सम्राट् की आज्ञा से।"

सलीम चौक उठा—"फिर वही अबुलफजल! क्या सलीम के समस्त दु.खो के सूत्रपात के निमित्त भगवान् ने इसी को बनाया है?" सलीम ने कातर होकर बुदेलखड के अधिपति की ओर देखा।

उन्होने सलीम के कधे पर हाथ रखकर कहा—"कितनी सेना है उसके साथ?"

सेना तो बहुत है उसके साथ, पर सम्राट् ने उसका उपयोग न करने की आज्ञा दी है। किसी प्रकार कूट बुद्धि से वह आपको बदी करेगा।"

"घबराओ नही युवराज! आप अतिथि-रूप से हमारे राज्य मे है। जब तक आप यहाँ रहेगे, हम आपका बाल भी बाँका न होने देंगे। कहिए, आप क्या चाहते है?" अधिपति बोले।

"चाहता तो बहुत हूँ।"

"कहिए भी तो।"

"बार-बार यह काँटा मेरे गड रहा है।"

"यह काँटा दूर कर दिया जाय, आपके मार्ग से।"

"हाँ।"

"प्रतिज्ञाबद्ध होता हूँ।" बुंदेलखंड के अधिपति के हाथ में अपना हाथ दिया—"आप अभी प्रयाग को प्रस्थान कीजिए छद्मवेश में। भगवान् सहायक होंगे, तो आप फिर न पाएँगे उसे।"

सरदार बोला—"युवराज, मुझे भी साथ ले चलिए। सम्राट् का भेद खोल देने पर यदि आप मेरी रक्षा न करेंगे, तो फिर मेरा अंत ही समझिए।"

"तुम मेरे साथ चलोगे? तुमने मेरा संकट दूर किया है, मैं तुम्हारे जीवन का उत्तरदाता हूँ।"

तुरत ही छद्मवेश धारण कर युवराज प्रयाग को बिदा हुए।

युवराज सलीम का प्रयाग-प्रस्थान किसी पर भी प्रकट नहीं किया गया। राज-भवन के एक कक्ष की शय्या पर एक मनुष्य मुँह ढककर सुला दिया गया, और यह अभिनय किया जाने लगा कि युवराज बीमार है। जब कोई दास-दासी उस कक्ष में आते, तो वह कृत्रिम रोगी मुख ढककर कराहने लगता, और जब इस अभिनय के सूत्रधार वहाँ आते, तो सावधानी से द्वार बंद कर, बाहर पहरा बिठाकर वह रोगी षटरस भोजन उड़ाता, और किस प्रकार उस नाटक पर अंतिम यवनिका डाल दी जायगी, इस पर वाद-विवाद होता।

शेख अबुलफ़ज़ल ने जब सुना कि सलीम बुंदेलखंड में रोग-शय्या पर पड़ा है, वह दुविधा में पड़ गया, और निश्चय न कर सका, बीमार को बंदी करना उचित है या नहीं। सोच-विचार में उतराता, लहराता वह सेना को कुछ दूर पड़ाव में ठहराकर सलीम के पास चला।

"युवराज को कष्टप्रद होगा, आप अकेले ही जाइए, तो ठीक होगा।" बुंदेलखंडाधिपति ने सम्राट् अकबर के मंत्री का स्वागत करते हुए कहा।

अबुलफजल ने शात-धीर पगो से रोगी के स्तब्ध कक्ष मे प्रवेश किया। अकेले ही रोगी की क्षीण कराह से कमरा उदासी से भरा हुआ था। अकबर का प्रतिनिधि धीरे-धीरे शय्या की ओर बढ़ा। एक सैनिक ने भीतर प्रवेश कर द्वार ढक दिए। दूसरे ने बाहर से शृंखला चढा दी।

"युवराज!" रोगी के सिरहाने जाकर अबुलफजल बोला।

सर्वांग ढका हुआ रोगी एकाएक आवरण फेककर अबुलफजल पर कूदा। दूसरा भी दौडकर उस पर टूट पडा। दोनो ने बडी दिर्दयता से उस बूढे और अरक्षित अबुलफजल का वध कर डाला! सलीम के जीवन की प्रतिहिसा पूर्ण हुई! एक कटार ने सम्राट् का आज्ञा-पत्र छेद-कर वाहक के रक्त से रँग दिया था।

सम्राट् अकबर इस समाचार को सुनकर अत्यत अधीर हो उठा—"मेरी राजसभा का रत्न, मेरी धर्म-सभा का दार्शनिक, मेरे युद्धो का सचालक, मेरी शाति का देव-दूत, मेरे एकात का सखा-सहचर, मेरी सहिष्णुता की आधार-शिला, मेरे साम्राज्य का स्तभ! नष्ट कर डाला तुमने?" वह विक्षिप्त की भाँति आप-ही-आप बोल उठा—"और, यह कितनी लज्जा की बात है, वह मेरे पुत्र के षड्यत्र का शिकार हुआ! मेरे मित्र क्या इस प्रकार एक-एक कर मुझे छोडकर चले जायँगे। और, मै अपने अधूरे चित्र को स्वार्थी, अधे नर-पिशाचो के विद्रोह-ताडव से दलित होता हुआ देखूँगा, अकेले ही?"

———

[५]

अकबर उदास हृदय लेकर राजधानी को लौट गया। उसका तीसरा पुत्र मुराद मरणासन्न अवस्था मे था। राज्य के अनेक मत्रियो ने, सलीम की माता ने, अनेक इष्ट-मित्र, हितचितको ने उसे पुत्र के विद्रोह की ओर से उदासीन रह जाने की सम्मति दी। सम्राट का स्वास्थ्य भी दिन-दिन क्षीण होता जा रहा था। राज्य के कुचक्रो, सतान की ओर से निराशा, मित्रो के वियोग से जरा और भी गतिवती होकर उस पर आक्रमण कर रही थी।

दो वर्ष पश्चात् सुरा और विलास के कुफलो की यत्रणा सहन कर मुराद भी चल बसा। अपने सामने दो पुत्रो की मृत्यु देखकर वह अधीर हो उठा। एकमात्र सलीम पर ही उसकी दृष्टि लौट-लौटकर ठहरने लगी। उसने उसके समस्त अपराध क्षमा कर दिए।

सम्राट् की ओर से कोई विरोध न पाकर सलीम के विद्रोह की प्रगति ढीली पड गई। अब तक वह प्रयाग के आस-पास के प्रदेशो को ही अपने अधिकार मे ला रहा था। राजधानी पर चढाई करने का उसे कभी साहस न हुआ। बगाल की ओर बढने का विचार भी उसने स्थगित कर दिया।

मुराद की मृत्यु को एक वर्ष भी न हुआ था, कि सम्राट् अकबर की बीमारी ने उग्र रूप धारण किया। वह मृत्यु-शय्या पर पडा था, और अनेक सरदार और अनेक सरदार और मत्रियो ने उसके पौत्र खुसरू को सिहासन पर बिठाने का एक आदोलन खडा कर दिया था।

मृत्यु के समय सिंहासन के लिये राजपरिवार के भीतर की यह मतैक्यता उसे असह्य हो उठी। उसने विचारकर सलीम को ही अपना उत्ताराधिकार सौंपना उचित समझा।

सलीम ने मृत्यु के समय पिता से अपने अपराधो की क्षमा-याचना की। सम्राट् ने उसे क्षमा किया, अपने खड्ग के प्रतीक के साथ उसे अपने राज्य का भार सौपा, और अंतिम साँस ली।

सलीम जग-जित—जहाँगीर की पदवी धारण कर पिता के सिहासन पर बैठा। बड़े समारोह के साथ उसके राजतिलक का उत्सव मनाया गया। दीन-दुखियो मे दान-वितरण के लिये राजकोष के द्वार खोल दिये गए, और मुक्त प्रकृति मे विचरण करने को बदियो के लिये कारागार के पट अनावृत हुए।

जहाँगीर ने सम्राट् होते ही अपनी धार्मिक और राजनीतिक नीतियाँ स्पष्ट की। धार्मिक नीति मे कुछ अतर होने पर भी वह पिता की राजनीति का ही संपूर्णत अनुगामी हुआ, उसने अधिकाश प्रजा की प्रियता प्राप्त की।

उसके स्थान मे उसके पुत्र खुशरू को सम्राट् बनाने के लिये जिन लोगो ने षड्यत्र रचा था, जहागीर ने उनको भी क्षमा प्रदान की। परतु अपने विद्रोह की कल्पना कर वह अपने पुत्र को सर्वथा क्षमा न कर सका। जीवन के समस्त सुखो के लिये मुक्त रखकर खुसरू को उसने नजरबद रखने मे ही कल्याण समझा। उसका यह संशय ही पुत्र के हृदय मे निरतर विद्रोह की रचना करने लगा।

सलीम को सब कुछ प्राप्त हो गया—राज्य, मुकुट, सिंहासन, कोष, मन के अनुकूल मत्री, सभासद् सरदार। उसके शत्रु निःशेष हो गए, उसके मित्रो की संख्या बढ गई। इच्छा के जगत मे उसे सभी कुछ मिला, केवल एक अभाव! उस अभाव की छाया इतनी विस्तृत और सघन थी कि उसमे उसका सारा विलास-विभव ढक गया था।

राजसभा मे वह अभाव मूर्त होकर उसका ध्यान खीच लेता था। राजभवन को उस अभाव ने शून्य कर रक्खा था। नृत्य-गीतो से मुखरित अत पुर मानो उसके हृदय को क्षत-विक्षत कर रहा था। नीद उचट-उचटकर वह जाग उठता, बाते करते-करते वह मौन धारण कर लेता। मित्रो के साथ उत्सव मे वह एकाएक उदासीन हो जाता। साथियो को छोड़कर अपने परम प्रीतिकर आखेट से लौट आता। उसके अतरग मित्र इसके मूल-

कारण को जानते थे, कुछ लोग भूल गए थे । अधिकाश उसके मद या राजमद को उसके इस स्वभाव का कारण समझते ।

उसकी इस अशाति का मूल-कारण थी मेहेर । न भूल सका सलीम उस सुदरी को, जहाँगीर होकर भी नही । जब वह युवराज था, समझता था, सम्राट होने पर मेहेर उसे अपने आप प्राप्त हो जायगी । उसे सिंहासन पर अभिषिक्त हुए एक वर्ष बीत गया, पर मेहेर की प्राप्ति का कोई मार्ग ही नही दिखाई दिया उसे ।

विद्रोह के दिनो मे सलीम सोचता था, बंगाल के सूबेदार को केवल एक आज्ञा-पत्र लिख देने से ही मेहेर उसके अत पुर मे पहुँचा दी जायगी । सम्राट् हो जाने पर उसने अपने को अनेक प्रकार के उत्तरदायित्वो में मे बँधा हुआ पाया । नैतिक और धार्मिक प्रतिबधों ने उसे सकोच से भर दिया । वह अनुराग की आग फिर उसके भीतर सुलगने लगी ।

जिन्हे उसकी पीडा ज्ञात थी, वे ही औषधि भी जानते थे । उसमान उनमे से एक था । एक दिन उसमान ने कहा—"तो फिर मै जाकर मिर्जा गयास से कहता हूँ ।"

"तुम ?" कुछ आश्वासित और फिर पीडित होकर जहाँगीर ने पूछा—"क्या कहोगे तुम ?"

"सरल सत्य, वास्तविकता रख दूँगा उनके सामने । पडे-लिखे तथा उदार विचार के हैं वह । मै सिद्ध कर दूँगा, मेहेर के हृदय मे प्रथम प्रेम के साथ महाराज की प्रतिमा गडी हुई है ।"

"इससे क्या होता है ? यह प्राय दस वर्ष पुरानी एक भूली हुई कथा है ।"

"मै कहूँगा, सम्राट् अकबर ने न-जाने क्या सोचकर वह विवाह नही होने दिया ।"

"नही मित्र! सम्राट् अकबर के ही निश्चय और प्रतिज्ञा के अनुसार मैने हाल ही में जो उन पिता-पुत्रो की पद-वृद्धि की थी, उस पर कुछ

लोग टीका करते हैं ।"

"सम्राट् को ऐसा भय ?"

"करना ही पडेगा ।"

"फर उसे भूल जाग्रो । वह राज-काज की विघ्न है । हमारे उत्सव प्रमोद, रस ग्रौर गीतो की शत्रु है ।"

"भूल जाऊँगा !" उदास ग्रौर निराश होकर जग-जित की पदवी धारण करने वाला वह प्रेमी सम्राट् बोला ।

उसमान मन मे पछताया - "कदाचित् कोई कठोर वाक्य निकल पडा मुख से !"

"तुम कुछ पछताते हुये से प्रतीत होने लगे हो । कहा तुमने ठीक ही उसे भूल जाना उचित है, पर कैसे ? नही मित्र, भूलना नही चाहिए। वही तो जीवन की चेतना ग्रौर प्रेरणा है । उसी के लिये तो जगत् को जीतने की ग्राकाक्षा लेकर जहाँगीर की पदवी धारण की है ।"

मित्र के विचारो मे परिवर्तन हो उठा, बोला—"एक बार फिर प्रयत्न करता हूँ मै ।"

"कैसा प्रयत्न ?"

"बर्दवान जाकर मै फिर उस नारी के हृदय मे ग्रापका प्रेम ढूँढता हूँ । दासी गुलाब को भी साथ ले जाना पडेगा ।"

"क्या करोगे ?"

"हम दोनो भिखारियो का वेश बनाकर शेर ग्रफगन के ग्रत पुर के बाहर सम्राट् जहाँगीर की प्रेम-कथा के गीत गावेगे । गुलाब का सुमधुर स्वर है । मेहेर उसके कठ को पहचान निश्चय कर हमारे गीत की ग्रोर ग्राकृष्ट होगी । हम बडी चतुराई से ग्रापका प्रेम-सदेश उसके कानो तक पहुँचा देगे ।"

"गीत उसके बधनो को तोड न सकेगा ।"

ग्रकबर की मृत्यु के ग्रनतर शेर ग्रफगन भयभीत हो गया । वह

रह-रहकर इसी कल्पना मे डूबा रहता कि न-जाने किस समय जहाँगीर के अश्वारोही आकर मेहेर को न छीन ले जायें। सोते-जागते, खाते-पीते, बोलते-विचारते एकमात्र यही उसकी चिंता थी। वह क्षीण और दुर्बल होने लगा। उसने यह चिता कभी खोली नही मेहेर के आगे।

एक दिन मेहेर ने कहा—"शरीर अस्वस्थ है क्या ?"

"नही तो।"

"छिपा रहे हैं आप। भूख कम हो गई है बहुत दिनों से तुम्हारी। मुख पर की प्रसन्नता का स्थान चिता की रेखाओ ने घेर लिया है। कभी सस्मित किसी से बोलते हुए भी नही सुनती हूँ। बालिका के साग्रह सबोधनो को अनवकाश के बहानो से उपेक्षित रख जाते हो। मेरे सामने जितना कम आते हो, उससे अधिक कम मुख खोलते हो।"

शेर अफगन ने हँसने की चेष्टा की, भौहो के बल खुल न सके। उसने कहा—"नही तो मेहेर, सब ठीक ही तो है।"

परतु सब ठीक कहाँ था। शेर अफगन के मन मे कुछ दिनो से एक नवीन भ्रम फैलने लगा था। सूत्रपात हुआ था उसका उस दिन, जब शेर अफगन ने नए सम्राट् के राजतिलक पर अपनी भेट भेजी थी। मेहेर ने उसमे पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की थी। और एक दिन जब एक सवाद-वाहक जहाँगीर की सभा मे मिर्जा गयास की पद-वृद्धि का समाचार लाया था, उस दिन भी, मानो उस पर अर्धांग गिर गया हो। वह द्वेप से जल उठा। चाहिए तो था उसे हर्ष मनाना, वह पद-वृद्धि उसके श्वसुर की थी।

शेर अफगन यह समझने लग गया था कि मेहेर के हृदय के किसी कोने मे जहाँगीर का प्रेम ज्वलित है। सम्राट् के सैनिको के आक्रमण से यह बात उसे अधिक घुन की भाँति कुरेदने लगी।

निराशा और संशय मे पडा शेर अफगन सोचने लगा—"जहाँगीर मुझसे अधिक सुगठित और सुरूप है। उसके श्री-सपत्ति, अधिकार और

शक्ति, ऐश्वर्य तथा विभव की तो तुलना ही क्या हो सकती है। वह मेहेर से प्रेम करता है, यदि मेहेर ने प्रतिध्वनि दी उसके अनुराग को, तो ?" स्पष्ट ही एक काला मेघ-सा उसके मुख-मडल पर घिर गया।

मेहेर बोली—"प्रसन्न बनने का प्रयत्न कर भी तुम विकसित न हो सके। नए सम्राट् ने तुम्हे राजधानी मे पद-वृद्धि के लिये बुलाया है, उनको क्या उत्तर दिया ?"

"तुम क्या सोचती हो ?" शेर अफ़गन ने उसके हृदय की थाह लेने को पूछा

"पद-वृद्धि होगी।"

"व्यय भी तो बढ़ जायगा, और उत्तरदायित्व, उसमे क्या कमी होगी ?',

"पिता और भाई की समीपता और सहारा मिल जाता, यही एक लालच मुझे भी है।"

शेर अफगन मेहेर की इच्छा जानकर घबराने लगा—"नही मेहेर, यही रहेगे हम। अब तो हम यहाँ की जलवायु और लोगों से अभ्यस्त और परिचित हो गये हैं।"

"सम्राट् ने इसे अवज्ञा समझा, तो ?"

"देखा जायगा मेहेर। जब तक तुम्हारी भावनाएँ मेरे साथ हैं, मै निर्भय हूँ।"

मेहेर निरुत्तर रह गई।

शेर अफ़गन के हृदय में संशय और भी बढ गया। वह सोचने लगा—"राजधानी मे रहने के लिये क्यो यह इतनी उत्कठित हो गई। इसका क्या कारण हो सकता है। मेरी इस छोटी-सी गृहस्थी मे कदाचिद् इसकी आकाक्षाओ के लिये ठौर नही है।" निराश होकर उसने फिर पूछा—"मेहेर, है तुम्हारी भावनाएँ मेरे साथ ?"

"यह क्या पूछने और उत्तर देने की बात है।"

मेहेर का यह निश्छल उत्तर शेर अफगन को सतोप न दे सका। वह बोला—"भूल हो गई!"

"कैसी भूल ?"

"तुम्हारा यह रूप, तुम्हारे ये गुण मैंने इस छोटे-से कुटीर मे लेकर बदी कर दिए मेहेर। तुम्हारी यह बहुमुखी रचनात्मक कल्पना विस्तार न पाकर दब गई है, मै जानता हूँ।"

"यदि केवल यही कारण आपकी उदासीनता का है, तो विश्वास रखिए, मुझे कोई दुख नही है। मै यही रहूँगी। राजनगरी के निवास के आकर्षण पर से मन को हटा दूँगी।"

"यह हृदय की ध्वनि है ?"

"हाँ, हाँ।"

"तब मैं सम्राट् के लिये लिख देता हूँ, शेर अफगन अपनी इस छोटी-सी जागीर मे परम सतुष्ट है।"

"हाँ, लिख दीजिए।"

जहाँगीर के राज्य के दूसरे वर्ष का आरंभ हुआ। शेर अफगन के हृदय मे उनका पाशविक भय तिरोहित हो गया। वह सोचने लगा—"धन-संपदा और पदवी का लालच देकर यह मुझे वशीभूत करना चाहता है। परन्तु यह और भी भयकर है!"

शेर अफगन ने जहाँगीर का वरदान सादर अस्वीकृत कर दिया। जहाँगीर ने इस पर कोई रोष प्रकट नही किया, पर मिर्जा गयास ने उसे जामाता की मूर्खता समझी। उन्होंने एक पत्र लिखकर एक विशेष सवाद-वाहक उसके पास भेजा। उसमे उन्होने यह भी लिख दिया था—"तुम्हे सम्राट् का कोई भय न होना चाहिए। सम्राट् हो जाने पर उनकी उच्छृ-खलता नही रही अब। वह अब एक स्थिरबुद्धि, न्यायनिष्ठ और प्रजा-प्रिय सम्राट् है।"

पिता के पत्र का आधार पाकर फिर मचल उठी मेहेर आगरा जाने

के लिये। और शेर अफगन के हृदय मे फिर उस छाया मे प्राण पड गए।

"सम्राट् तुम्हे कृपा की दृष्टि से देखने लगे हैं, फिर पिता और भाई उच्च पदस्थ है वहाँ। उनकी सहायता से आपकी उन्नति होने मे क्या सदेह है। यहाँ इतनी दूर परदेश मे, यहा कौन है हमारा। जीवन के ये नीरस नौ-दस वर्ष चुपचाप काट दिये मैने यहाँ। तब कभी कुछ नही कहा। मार्ग न था कोई। अब अवसर आया है। उसे चूकना उचित नही।"

"न-जाने क्यो तुम्हे राजधानी का कनक-प्रकाश खीच रहा है मेहेर।"

"उन्नति की कामना स्वाभाविक और बलवती है पुरुपार्थी के लिये। पौरुष ही तो मनुष्य का आभूषण है।"

"क्या पौरुष ! तुम्हे उस राजनगरी के चक्रो का परिचय नही है क्या। वहाँ मनुष्य मनुष्य को खा जाने के लिये घात लगाए रहता है। वह विलास-भरा जीवन, एक अत हीन तृष्णा से भरा हुआ, एक निरतर प्रदीपित ज्वाला से विदग्ध। तुम्हे यह प्रकृति, यह एकात मोहित नही करता ? यहाँ मन की चपलता के कारण कम हैं, और स्रष्टा भगवान् की स्मृति स्वय ही हृदय मे जागती रहती है।"

पति के उपदेश का कोई प्रभाव न पडा मेहेर पर। उसके मन में विश्वासघात था नही पति के लिये। वह शुद्ध मन से चाहती थी, उस का पति राज्य के सचालको मे प्रमुख स्थान प्राप्त करे, और वह अत पुर चारिणियो मे अपने कला-कौशल, रूप-गुण का प्रदर्शन कर सके।

मेहेर की कन्या आयु मे पर्याप्त बडी हो गई थी। बडे ध्यान से माता-पिता की बाते सुन रही थी, एकाएक बोल उठी—"मा, आगरा मे सम्राट् का राजभवन कितना विशाल है ?"

शेर अफगन के हृदय मे एक उफान-सा उठा। उसके मन मे बहुत दिनो का सचित और छिपाकर रक्खा हुआ रहस्य मेहेर के सम्मुख फूट पडने को हुआ। उसने अपने मन मे कहा—"यह मेरी कन्या, यह भी

सम्राट् के राजभवन की ओर तुलना के लिये देखती है। मेहेर ने इसके कोमल मानस मे एक अशुद्ध आदर्श गडा दिया है। आवेग को रोककर वह बोला—"बेटी, राजभवनो की ओर दृष्टि कर लाभ ही क्या है? केवल एक असतोष, जो हमारी अशाति का कारण है। उसकी विशालता से हमे करना क्या है। आकार-प्रकार मे हमारे गृह से छोटे और सरल, ये जो कुटीर हमारे चारो ओर निर्मित है, इनमे अधिक चैन है, और इन पर दृष्टि रखकर हमारी शाति भी बढ सकती है -"

बालिका पिता का अनुमोदन न पाकर लज्जित हो गई। उसने अपनी दृष्टि विनत कर ली।

मेहेर को वह अपनी पराजय-सी लगी। बालिका को आश्वासन देने के लिए उसने अपनी ओर खीचा। उसके कधे पर की ओढनी का छोर अपने हाथ मे लिया—"जरदोज ने ये फूल बहुत बडे बना दिये है। उसने दूना श्रम किया है, पर ओढनी का सौदर्य आधा कर दिया। अनेक भ्रमित कारीगर रूप को श्रम पर निर्भर समझते है। पूर्ण होने पर यह कैसा दिखाई देगा, उसको देख ही नही सकते वे।"

मेहेर ने बात के विषय मे अतर डाल देने के लिए एक दूसरी चर्चा आरभ की थी, पर शेर अफगन ने फिर वही सूत्र खीचकर सामने रख दिया—"अकाक्षाएँ क्षितिज की भाँति नि सीम हैं, एक के पश्चात दूसरा, फिर तीसरा, कही अत ही नही, कोई छोर ही नही। प्रकृत सुख ऊँचाई पर नेत्र रखकर नही, अपनी स्थिति पर दृष्टि स्थिर रखने से प्राप्त हो सकता है।" उन्होने पुत्री की ओर देख कर ये वाक्य कहे, पर उनका लक्ष्य थी मेहेर।

मेहेर मुँह फुलाकर देखने लगी अन्यत्र।

शेर अफगन उपदेश को विषम भूमि मे पडा देख तीव्र हो उठा फिर। वह व्यक्त होने को वाक्य ढूँढ रहा था।

मेहेर के सुदर मुख पर एक हलकी मुसकान चमक उठी! वह यत्न-पूर्वक अधरो को सकुचित रखती प्रतीत हुई।

शेर अफगन को चुभ गया मेहेर का वह भाव। वह बोल उठा—"नही, मेहेर, हम आगरा नही जावेगे। इस कल्पना पर अधिक ध्यान देना उचित नही है तुम्हे।"

"योद्धा का पुत्र राजनगरी के सघर्ष से विरत हो, मै इसे यदि उसकी कायरता न कहूँ, तो आलस्य अवश्य कहूँगी।"

"मेहेर!" ताड़ना के स्वर मे शेर अफ़गन ने कहा। उसकी स्मृति मे कदाचित् यह पहला ही अवसर था। "तुम्हारी विनम्रता पहले बहुत प्रकाशवती सज्जा थी। समय के अधिक बीत जाने पर हमे एक-दूसरे के हृदय के अधिक निकट होना चाहिए था या दूर ?"

"पति के हित और मगल की कामना को आपको अन्यथा न विचारना चाहिए।"

"मै भली प्रकार समझता हूँ।" शेर अफगन चुप हो गया

त्रस्त हो उठी मेहेर एकाएक—"क्या समझते हैं आप ?"

'कुछ नही।" भौहो का बल स्थिर रखकर पति ने उत्तर दिया।

"इस प्रकार आधी ढकी हुई बात आपने कभी नही कही। रुक क्यो गए ? कहते क्यो नही ?"

"समझता हूँ मैं, तुम्हारा आगरा जाने का आग्रह क्यों है ?"

"क्यो है ? राष्ट्र-नायको के बीच मे अपने पति को देखने के लिये। आप योद्धा के पुत्र हैं, राजकुल के है, उचित स्थान मे आपको नियुक्त देखना चाहती हूँ। स्त्री के लिये यह सर्वथा स्वाभाविक और उचित ही है।"

"और तुम्हे राजभवनो के निमत्रण प्राप्त होते रहेगे दिन-रात ?"

अधिक न आया मेहेर की समझ म, उसने कहा—"ऐसी निराधार और निराश्रित हूँ मै जो राजभवन के निमत्रणो पर टक लगाए बैठी रहूँगी। बात नही खोली तुमने ?"

'तुम्हारी दृष्टि राजमहल पर है।"

"वसुधरा वीर के लिये है, और फिर इस श्री-संपत्ति के भरे भारत

वर्ष मे अनेक राजाओ के लिये स्थान है। आकाँक्षा ऊँची करो, असभव क्या है ?"

"सच कहोगी ?"

"तुमसे क्या छिपाया ?" मेहेर के कानो मे दो कबूतरो के पर फट-फटाने लगे।

"तुम चाहती हो ?"

"किसे ?"

"सलीम को, युवराज को, सम्राट् को, जहाँगीर को।" कह ही दिया शेर अफगन ने।

"यह एक कोरा भ्रम है तुम्हारा, कितने दिनो से प्रतिपालित कर रक्खा है ? तुमने इसे प्रकट कर जीवन दिया है, ठीक नही किया। प्रेम-प्रेम से ही परिपोषित होता है। इस प्रकार शका बढ़ानी, यह प्रणय की कोमल लता के सिरे पर का तुषार और जड़ पर का कीट है। जीवन का सहचर और आश्रय बनाकर दिन-रात तुम्हारे सुख-दुख पर ध्यान रखती हूँ। एक कठोर वाक्य से तुमने कितना बडा क्षत पहुँचा दिया मेरे हृदय मे, नही जान सकते तुम !" बडी तेजस्विता के साथ मेहेर ने माथा ऊँचाकर पति का प्रतिवाद किया।

शेर अफगन भौचक्का होकर खडा था।

"राजधानी से इतनी दूर दश वर्षो की इतनी बडी अवधि बीच मे पडी है, और तुमने ऐसा असत्य और कठोर वाक्य मुख से निकालते हुए कोई असुविधा अनुभव नही की। मै आवृत्ति न करूँगी उसकी।"

"उसी दूरी को दूर करने के लिये तो तुम आगरा जाने को असाधारण उत्कठा लिए बैठी हो।"

मेहेर चौक पडी, मानो बिच्छू ने दशित कर दिया हो—"अच्छा, मै शपथ-पूर्वक कहती हूँ, आगरा जाने का कभी नाम ही न लूँगी। हुए हो तुम आश्वासित ?"

हँसकर शेर अफगन बोला—"हाँ, हुआ हूँ।"

ग्रथि देकर फिर दोनो की प्रीति जुड गई। मेहेर राजनगरी के आकर्षण पर घना आवरण डालकर शेर अफगन के सुख और सेवा मे निरत हो गई। शेर अफ़गन जरा-विजित वृद्ध मनुष्य के समान समस्त आकाक्षाओ से मस्तिष्क को रिक्त कर उस छोटी-सी जागीर मे सतोष को ढूँढने लगा।

इधर जहाँगीर के मन मे एक नवीन आशका ने घर कर लिया। उसका सबसे बड़ा पुत्र खुसरू नजरबदी की दशा मे पडे-पडे अत्यत दुखी हो गया था। वह अपने पितामह सम्राट अकबर का प्रीतिभाजन रह चुका था। दरबार के अनेक मत्री और सरदार उसके अनुमोदक थे। राजधानी की अधिकाश प्रजा उसे चाहती थी। राज्यारोहण का प्रत्यक्ष जगाकर खुसरू जिस बदी जीवन के क्षण गिनता था, वह असह्य और युग-विस्मृत थे।

खुसरू जब एक भाव मे होता, तो मृत्यु की कामना करता, और जब दूसरा भाव उसके समीप आता, तो वह फिर विद्रोह के कण-कण जमा करता। अचानक एक दिन वह कुछ अश्वारोही साथियो के साथ निकल भागा। विद्रोह की घोषणा ऊँची करता हुआ उसने पजाब पर आक्रमण कर दिया।

सम्राट् जहाँगीर शेर अफ़गन का स्पष्ट और निर्भीक उत्तर पाकर स्तभित हो गया। उसमान से कहा उसने—"जान पडता है, अब यह प्रेम की कथा यही पर समाप्त हो जायगी।"

"विरह प्रेम की परीक्षा है। वह उसे और भी अधिक स्निग्ध, स्थायी और परिपक्व कर देता है।"

"राजदड ग्रहण किये दूसरा वर्ष बीतने लगा, तथा जहाँगीर अपने प्रेम की प्राप्ति मे आज और भी अधिक पश्चात्पद है। अब केवल उसकी स्मृति ही एकमात्र सहारा और उसके चितन को अश्रुधारा मे पिरोना अथवा कविता की धारा मे अकित करना ही केवल आश्वासन है।"

"सत्य प्रेम मे निराशा नही है। प्रेम-पात्र अवश्य मिलता है। कण-कण मे समाया हुआ है।"

"तुम सत्य विशेषण दोगे मेरे प्रेम को ? पर तुम्हारा सूफी दर्शन मुझे पसद नही मित्र।"

"फिर तुम सम्राट् हो, विनय से काम नही चलता, तो बल का प्रयोग कर क्यो नही लेते ?" उसमान ने कुछ उत्तेजना से कहा।

जहाँगीर ने उसका हाथ पकड लिया—"मैने प्रजा से प्रतिज्ञा की है, मै विशुद्ध धर्म का अनुसरण करूँगा, पिता के मनमाने धर्म मे स्वभाव से ही अनुरक्ति नही है मेरी। एक दूसरे की स्त्री को बल-पूर्वक हरण, कर लेने से मेरी प्रतिज्ञा कुंठित होगी। प्रजा में जो मेरा बल बढ़ा है, वह क्षीण हो जायगा।"

एक सेवक ने आकर सूचना दी—"महाराज, विद्रोहियो ने लाहौर पर अधिकार कर लिया।"

"कौन है उनका नायक ?" जहाँगीर ने कदाचित् मद की विमुग्धता मे कहा।

"युवराज खुसरू।"

"उसके दमन के लिये सेना भेज तो दी गई है।" जहाँगीर ने सेवक को विदा कर दिया—"जाओ, कोई भय नही है। उसका बल यही है और मै उसे क्रीत कर चुका हूँ।"

सेवक चला गया।

"पिता का द्रोह पुत्र का दुर्भाग्य है। यह अशुभ आदर्श एक दिन मेरे मन मे उपजा था। पर तुम जानते हो मित्र, जो कुछ मुझे मिला, वह द्रोह से नही, मैत्री से। सम्राट् अकबर ने भूल की, मुझे कोई दड नहीं दिया। मै न चूकूँगा। मैने उसे पकड मँगवाया है। मैं उसकी दोनों आँखें निकलावा दूँगा कि उस अंधे को फिर कोई विद्रोही अपना नायक न बना सके।

"सम्राट् !" अत्यंत चकित होकर उसमान ने जहाँगीर के उस क्रूर निश्चय को देखा ।

"हाँ, हाँ । जहाँगीर ने प्रजा मे अपने न्याय की दुहाई फैलाई है। वह अपने व्यक्तित्व को भी सम्राट से भिन्न कर उसके सामने न्याय के लिये खडा कर देगा । इसीलिये अभी मेहेर उसे प्राप्त नही हो सकी है। मै पुत्र का अपराध यदि भुला दूँगा, तो अन्याय होगा, और प्रजा पर मेरी बात का प्रभाव न रह जायगा ।"

दासी गुलाब सम्राट् के सम्मुख आकर करबद्ध खडी हो गई—"सम्राट् ने स्मरण किया दासी को !"

"हाँ गुलाब, बार-बार तुम्हारे मुख से सुनना चाहता हूँ । सुनकर विश्वास बढाता हूँ । जहाँगीर की पदवी धारण कर भी साम्राज्य की सीमाएँ अपने स्थान पर ही स्थिर हैं । कोई उद्योग नही, कोई प्रयास नही । सेना मे आलस्य और शस्त्रो पर काई जम गई है । भीतरी कलहो मे ही सारा समय चला जाता है, और चला जाता है वह विश्वास ।" जहाँगीर मूक हो गया ।

"कैसा विश्वास ?" उसमान ने पूछा ।

"मेहेर का विश्वास । जब तुम उसका वर्णन करती हो, तो ऐसा जान पडता है, जैसे वह मेरे सम्मुख खडी हो गई । है उसके हृदय मे मेरा प्रेम ?"

'हाँ सम्राट् ! ठीक ऐसे ही, जैसे मरु के विस्तार मे स्वच्छ जल का सरोवर ।"

"परंतु वह आगरा भी नहीं आना चाहती ।"

"दासी को आज्ञा मिले, एक बार फिर प्रयत्न करूँगी ।

"क्या ?"

दासी उसमान की ओर देखकर हँसी ।

"कोई गहरी मंत्रणा है क्या । अच्छा, न कहो । अनेक बार कह देने

से प्रयत्न सफल नही होता। तुम जाओगी उसमान के साथ ?

"हॉं।"

"कब ?"

"जब आज्ञा हो।"

"अभी जा सकती हो, कल को।"

"इस प्रयत्न मे यदि यह सेविका खो गई तो, ?"

"जहॉंगीर के न्याय मे बट्टा लगेगा।"

"नही, स्वामी की सेवा का यश मिलेगा।"

"नही-नही, तुम खो न सकोगी। उसमान तुम्हारे साथ है।" जहॉं-गीर ने उसमान से कहा—"अच्छी बडी सख्या शरीर-रक्षको की साथ ले जाना।"

पति की स्पष्ट वाणी से मेहेर के हृदय मे चोट पहुँच गई उस दिन से। बहुधा एकात मे बैठकर वह फिर-फिर अपने मन मे दुहराती उन शब्दो को—"तुम चाहती हो सलीम को।" उसके नेत्रो मे आँसू आ जाते, और वह सोचने लगती—"एक छाया की भॉंति स्मृति मे दबा हुआ है उस युवराज का चित्र अवश्य, उसमे मेरा क्या दोष ? वह सुंदर और ऐश्वर्यशाली राजकुमार अपने ही गुणो से अकित हो गया वहॉं। देखी सुनी हुई अनेक छवि और ध्वनियॉं हैं वहॉं। प्रयत्न कर देने से क्या कोई कुछ भुला सकता है। पर मैंने स्मरण ही कहॉं रक्खा उसे। मैंने तुम्हारी होकर ऐसे प्रवास मे आना स्वीकार किया। सलीम की कोई गिनती ही नही की, उसकी स्मृति पर अपने जीवन के समस्त सुख दुःख का ढेर रखकर ढक दिया उसे। तुमने अपनी शका से उभार दिया है उसे। मेरे प्रेम, मेरी सेवा को कलकित कर दिया तुमने। एक भूला हुआ स्वप्न जगाकर रख दिया मेरे सामने। एक उतरा हुआ विष फैला दिया फिर मेरी कल्पना मे।"

मेहेर को बहुधा शेर अफगन का वह वाक्य याद आ जाता और छा

जाती उसके सम्मुख सलीम की प्रतिच्छवि। मेहेर ने फिर कभी किसी सपर्क से आगरे का नाम अपने मुख से उच्चारित नही किया, पर इससे शेर अफगन के मन की मलिनता न गई। समय-असमय वह सलीम की भयावनी मूर्ति अपने रात और दिन के स्वप्नो मे देखता, जो उसके प्रेम को खा जाने के लिए बडी तीव्र गति से उसकी ओर बढा आता था।

पति और पत्नी उस दिन से फिर पहले के-से विशुद्ध प्रेम से आबद्ध न मिले। वे जब दोनो साथ होते, उनके बीच मे होता उत्तु ग एक कज्जल-गिरि। वे साम्राज्य, प्रात और गृहस्थ की बाते करते, पर मन के संकुचित कमलो पर पडा रहता शका का निविड अधकार।

एक दिन उनके गृह के बाहर एक भिखारी और एक भिखारिन बडे करुरण-मोहक स्वर से गाते हुए आ रहे थे। उनके द्वार के बाहर वे गाने लगे। मेहेर को उनके गीत ने खींच लिया, वह सुनने लगी —

"रहस्य लेकर हृदय का जाने,
कहाँ कपोती उडी गगन मे ?
रहे निरंतर ही ढूँढते हम,
सदन मे, वन मे पवन मे घन में।
कहाँ कपोती उडी गगन में ?"

"कि देखा तुमने हमारा पक्षी,
किया हो बदी तो खोल दो पर।
हे ऊँचे प्रासाद की विहारिणि !
नहीं मिलेगा क्या कुछ भी उत्तर ?
कहो न, क्या है तुम्हारे मन मे,
कहाँ कपोती उडी गगन मे ?"

गीत की शब्दावली ने उसकी स्मृति पर चोट की, और स्वर में

किसी का परिचय खोजने लगी वह। याद पडा उसे। झरोखे से सावधानी-पूर्वक देखा उसने, देखती रही उस भिखारिन को कुछ देर तक, फिर हँस पडी मन-ही-मन—"बडी दुष्टा है यह। लबी लटो मे भस्म सानकर इसने कैसा मुख को ढक रक्खा है। यह गोरा-गोरा मुख चंदन और राख लगाकर परिचय की रेखाएँ छिपा ली है। परतु स्वर की स्वाभाविकता पर कोई परदा डाल नही सकी यह। कदाचित् सब लोगो से छिपाकर यह केवल मुझ पर ही अपना भेद खोलना चाहती है। गीत पूरा सुन लेती हूँ पहले।"

दोनो गा रहे थे—

"गई थी सधान मे तुम्हारे,
स्वय ही खोई प्रवास मे वह।
निराश, आकाश को निरखते
हमारा दुख हो उठा है दुसह।
हमे दिखाता है सुख मरण मे,
कहाँ कपोती उडी गगन में ?"

"सतत प्रवर्तित हैं राशि ग्रहगण
अचल हैं केवल अधर तुम्हारे।
हमार प्राणो के शूल-से हैं,
ये राज के सुख-विलास सारे।
न शाति है राजसी भवन मे,
कहाँ कपोती उडी गगन में ?

भिखारिनी ने गीत बंद कर पुकारा—"जय हो गृह-स्वामिनी की! स्वामी की पद-वृद्धि हो, सुख और आरोग्य का-विकास हो।"

मेहेर ने दासी को भेजकर भिखारिन को ऊपर, अपने पास, बुला

लिया। पति घर पर नहीं थे, लडकी को लेकर निकट ही कही निमन्त्रण मे गये थे। उसने दासी को अन्यत्र भेज दिया।

भिखारिनी उसके आँगन की सीढी पर बैठ गई थी। कधे पर की झोली और हाथ की खँजरी, दोनो को भूमि पर रखकर बडी करुणा-भरी मुद्रा से देखने लगी मेहेर की ओर।

"कौन हो तुम ?" मेहेर ने पूछा।

"एक भिखारिनी।"

"क्या माँगती हो !"

"प्रेम की भीख।"

मेहेर अब हँसी न रोक सकी।

"दोगी ? प्रेम की भीख दोगी ?" भिखारिन ने अचल फैलाया

"हाँ, दूँगी।" कहकर मेहेर ने कृत्रिम जटाओ से युक्त सिर पर एक हलकी चपत लगाई।

"जय हो आपकी ! अपने लिये नही चाहिए मुझे। जिसको आवश्यकता है, वही आवेगा तुम्हारे द्वार पर।" भिखारिनी ने अचल गिरा दिया।

"कब से हो गई तू भिखारिनी ?"

"प्रेमिक की चिरतन निराशा देखी तब से, पर अब फिर ससार में प्रविष्ट हो जाऊँगी।"

"राजभवन से तृप्ति न हुई होगी अभी। बडा सुदर गीत है यह। किसने बनाया।"

"तुम भी तो कविता रचती थी न ? इसी से पूछती हो ? यह सम्राट् की रचना है।"

मेहेर कुछ सोचने लगी।"

गुलाब ने कहा—"उत्तर दे सकती हो इसका, कविता मे ही ?"

"कविता किसी वृक्ष पर के पुष्प तोड़ लेने के समान हैं क्या ?"

"फिर ?"

"उसके लिये अभ्यास चाहिए और चाहिए आवेश ।"

"अभ्यास समझती हूँ । आवेश क्या हुआ ।"

"आवेश क्या हुआ कैसे समझाऊँ तुम्हे । यह एक दैवी शक्ति है ।"

"प्रेम होगा । प्रेम देने से ही तो मिलता है । तुमने प्रेम दिया है, तुम उसे पाओगी । उसके पास अनत प्रेम है ।" भिखारिनी ने बिजली की गति से अपनी झोली और खँजरी उठा ली । वह अपने वाक्य का अतिम अश पूरा होते-न होते निष्क्रात हो गई ।

"ठहरो गुलाब, सुनो । आज रहो यही कोई भय नही ।"

उसने जाते-जाते कहा—"नही-नही, यदि तुम अपन वचनों से फिर गई, तो ठीक न होगा, इससे चली जाती हूँ ।"

"अच्छा बाहर द्वार पर ही एक बार फिर उस गीत को तो गा दे ।"

"गाऊँगी ।" गुलाब ने बाहर आकर उसमान से कहा—"मै अपने काम मे सफल हुई हूँ ।"

"मेहेर कहाँ हैं ?"

"चुपो अभी । यह एकतारा झकृत करो ।"

दोनों ने फिर वह गीत गाया ।

दासी लौटकर आ गई थी । झरोखे पर से बोली—"अपना अंचल फैला भिखारिनी ! स्वामिनी तुझ पर प्रसन्न हुई है । ले अपनी भीख ।"

गुलाब ने अचल पसार दिया । मेहेर ने झरोखे की जाली पर से अपने हाथ की रत्न-जटित अँगूठी गिरा दी बाहर । "जय हो, जय हो ।" गुलाब ने कहा ।

"तुम प्रसन्न हो, क्या मेहेर ने सम्मति दी ?" उसमान ने पूछा ।

"मैने उसका एक ऐसा भाव प्राप्त किया है, जिसमे 'हाँ' और 'नही' दोनो रल-मिल गए हैं । परिश्रम से एक छाँट लिया जावेगा ।"

"वह आगरा चलने को तैयार है ?"

"अधिक बाते एकात मे । चलो, शीघ्र लौट चले ।"

वे दो घोडे कुछ ही घटो की यात्रा पर एक सराय मे छिपाकर आये थे कि आवश्यकता पर उनका उपयोग हो सके । वे उसी दिन चल दिए। मार्ग मे एक नदी के किनारे गुफा मे वे अपने वस्त्र छिपा गये थे, उसे ढूँढ नदी मे स्नान कर उन्होने वस्त्र बदले । जिन वस्तुओ और वस्त्रो का प्रयोजन न रहा, सरिता मे प्रवाहित कर दिए ।

वे उसी दिन घोडो के पास पहुँच गए । रात वही रहे ।

निशा के एकात को अक्षुण्ण रखते हुए उसमान ने धीरे-धीरे कहा—"उसकी इस अँगूठी से केवल क्या होगा । तुम उससे कह ही न सकी कि तुम मेरे वस्त्र पहनकर बाहर चली जाओ। मै तुम्हारे स्थान मे रहूँगी। कितना अच्छा अवसर था । तुम्हारा भेद खुलने तक हम अपना पडाव मार देते, और शेर अफगन के अच्छे प्रकार खोज करने तक हम आगरे पहुँच जाते ।"

"ऐसी भाग दौड मे अनेक विघ्न थे ।"

"तुम प्राणो के मोह मे पड गई । तुम्हारी रक्षा का मै करता पूरा प्रबध ।"

"किसी सीमा तक सत्य है । पर इस प्रकार वह कभी न आती । मै टटोल आई हूँ उसका हृदय । वह सम्राट् का वरण करने को प्रस्तुत है ।"

"तुम झूठ बोल रही हो ।"

"नही ।"

"फिर ले क्यो नही आई अपने साथ ?"

"तुम तो सहसा अग्नि मे ही हाथ दे देने को कहते हो । धीरज रक्खो, सबसे मीठा फल धैर्य के ही वृक्ष पर फलता है । यह अँगूठी, प्रेम-पात्र की, उसी की दी हुई जहाँगीर के सजत्व के एक-दो वर्ष काट देते

के लिए कम है क्या ? धीर गति से समय को देखिये। देखिये, क्या होता है।"

भटियारिन ने उन्हे भोजन कराया। गुलाब भटियारिन के साथ सोने के लिए चली गई। रात को उसमान ने स्वप्न देखा—वह सुरग लगाकर मेहेर का निवास-गृह उडा रहा है। उसने सुरग मे आग लगा दी, और उसकी नीद टूट गई धडाके से।

बडी कठिनता से उसमान को देश-काल की सुधि हुई। करवट बदलते हुए मन मे बोला—"क्या सचमुच मेहेर जहाँगीर से प्रेम करने को प्रस्तुत हो गई। उसने अपना भेद गुलाब को दे दिया। यह दासी की पुत्री झूठ तो नही बोलती। मेरी साक्षी नही रहेगी इसमें। मुझे क्या भय। मैं इसे स्वय ही सम्राट् से कहने को आगे कर दूँगा।"

दूसरे दिन दोनो घोडो पर सवार हो चल दिए, और दिन मे शरीर रक्षक तथा अन्य साथियो से जा मिले।

आगरा पहुँचने पर उसी समय राज-काज को विश्राम देकर सम्राट उनसे भेट करने को तैयार हो गये।

गुलाब रँग-रँगकर कहने लगी—"महाराज। जिस प्रकार आप उनके लिये विकल हैं, उसी प्रकार उनका भी क्षण-क्षण आपकी स्मृति को लेकर कटता है। उनका शरीर वहाँ, प्राण यही है। जैसे जल के बिना मछली तडफती है, ऐसे ही आपसे हीन होकर उनकी दशा है। माँझी से विहीन नौका के तुल्य उनकी अवस्था काल के प्रवाह मे व्यर्थ ही कट रही है।"

अंधा प्रेमी चाटुकार दासी के काव्य को सुनकर गद्गद हो रहा था, कभी उसके अधरो पर से निश्वास छूट पडती और कभी कोई आँसू बह जाता। सारे विश्व-ससार को गुलाब के ही कथानक मे डुबाकर सम्राट् जहाँगीर तन्मयता से सुन रहा था मेहेर का समाचार!

मेहेर पर अनत प्रेम था उसका। उसके लबे विरह ने उनको

अधीर किया, वेदना उपजाई, पर उनके विश्वास ने उसे घनीभूत भी कर दिया। पीडा दी, पीडा सहन करने की शक्ति भी उपजा दी, अधीर किया धीरता भी बढा दी।

उसमान वही था। मन मे तो वह सोच रहा था—"कितनी अति-शयोक्ति मे काम ले रही है यह दासी। सम्राट् को एक झूठी आशा के बधन पहना रही है। यदि किसी दिन पोल खुल गई, तो बेचारी हाथी के पैरो नीचे होगी।" अचानक सोचता—"सभव है, मेहेर ने प्रकट की हो बात। दासी सहचरी है उसकी। फिर इतने वैभव से भरे हुए सम्राट् के अंत पुर मे क्या कम आकर्षण है!"

गुलाब कह रही थी—"वह परम रूपवती युवती मानो किसी शुष्क हृदय की वाटिका मे खिलने वाली कली है। किसी बर्बर असभ्य, पशुओ की खाल पहने हुए जगली मनुष्य के वक्ष मे पडी हुई एक रत्नो की माला। उसके असाधारण गुणो का कौन ग्राहक है। जिस आश्वासन, जिस वैभव, जिस प्रेम के लिये वह रची गई है, वह कुछ भी नही है वहाँ।")

"तुम्हे पहचान लिया था उन्होने?" जहाँगीर ने पूछा।

"हाँ, क्यों नही?"

"फिर क्या कहा?"

"और कह ही क्या सकती? एक पिंजरबद्ध पक्षिणी, विवश और दुर्बल केवल उद्धारक की ही दया पर टक लगाये हुए।"

"उन्होने मेरा प्रेम प्रकट किया?"

'हाँ, महाराज!"

"फिर कैसे गुलाब! किस प्रकार? तुम्हारे साथ आने को तैयार न हो सकी! न ला सकीं तुम उन्हे?"

उसमान ने सहारा दिया—"यह एक प्राण-सकट की बात थी महाराज! हमे अपनी चिंता नहीं, भगवान् न करें उनको यदि मार्ग

मे कुछ हो जाता, तो हम फिर कैसे राजधानी मे अपना मुख दिखाते ?"

"यह प्रयत्न भी जैसे मैंने निशा के अ धकार मे फिर दूसरा स्वप्न देखा, चमकते हुए सूर्य मे फिर दूसरी मरीचिका सिद्ध हुई। कदाचित् यह पीड़ा ही जीवन की सहचरी है।"

"नही महाराज !" गुलाब ने अपने रेशमी अ चल मे यत्न-पूर्वक ग्रथित अ गूठी निकालकर सम्राट् को दी—"लिजिये।"

"क्या है ?"

"स्मृति चिन्ह, उनका प्र`म-उपहार ! यह आपके लिये उन्होने दी है।"

सम्राट ने उसमे अङ्कित-अक्षर पढे—'मेहेर।" मानो मेहेर उसे मिल गई—"गुलाब !" यह उसने मेरे लिए दी है ?"

"हाँ, महाराज !"

सम्राट् ने उस अ गूठी को माथे से लगाया। उस पर फिर दृष्टि की। उसे हृदय से लगाया। उसने उसे उँगली मे पहन लिया, और ऐसा जान पडा, जैसे मेहेर अपने सिंजित चरणो से उसके चारो ओर नाच-नाचकर उसे घेर रही है।

जहाँगीर ने उत्साह मे भरकर पुकारा—"उसमान !"

"दीनदयाल !"

"मैं तुम्हे बगाल का सूबेदार नियुक्त करता हूँ, कर सकोगे मेरा काम ?"

उसमान सोच मे पड गया—"इससे क्या होगा महाराज ! आपकी मित्रता का मेरे हृदय मे उस सूबेदारी से अधिक मूल्य है।"

"नहीं समझे। शेर अफगन एक साधारण जागीरदार, वहाँ तुम्हारा एक तुच्छ सेवक होकर रहेगा।"

"आपके प्रतिनिधि का बल-प्रयोग अ ततः आपके ही ऊपर उत्तर-दायित्व लाकर रख देगा।"

जहाँगीर ने निराश होकर आकाश की ओर दृष्टि की। उसने अपने मस्तक को स्पर्श करने को हाथ उठाया, हाथ पर एक नई पहनी हुई अँगूठी की मणि पर स्वच्छ प्रकाश झलक पडा। सम्राट् ने फिर उसे सतृष्ण होकर देखा, और फिर उसमे अकित अक्षर पढे—'मेहेर।'

खुसरू पकड लिया गया। सम्राट् ने उसके साथियो को महान् दंड दिया। अनेको के प्राण-विहीन शरीरो का जनता मे प्रदर्शन भी किया गया कि वे लोग भविष्य के लिये सावधान हो जायँ। खुसरू की आँखें सी दी गई, और वह अधा युवराज अपने दुर्दिन उस दुर्ग मे बिताने लगा।

उस अँगूठी के प्रकाश मे ही मेहेर के मुख की कल्पना करते-करते जहाँगीर के तीन वर्ष और भी बीत गए। मेहेर उसकी होगी ही, ऐसा एक विश्वास जमा लिया उसने, पर काल की परिधि मे दिन का अक न ज्ञात हो सका उसे।

इसी अवधि मे हाकिंस-नामक एक अँगरेज़ आगरा आया। वह इँगलैंड के राजा जेम्स प्रथम का पत्र भारतवर्ष के सम्राट् के लिए लेकर आया था। वह समुद्री कप्तान था। साहसी, दक्ष और कुछ पूर्वी भाषाओ का ज्ञाता। अँगरेजो के लिये कुछ व्यापारिक सुविधाओ का प्राप्त करना उसका उद्देश्य था। सूरत के बदरगाह मे वह पहलेपहल उतरा था। सम्राट् तक पहुँचने में उसे अगणित कठिनाइयो का सामना करना पडा। पुर्तगाल-वासी उससे द्वेष करने लगे। उन्होने उसे हतोत्साह करने मे कुछ उठा नही रक्खा।

दृढ इच्छा और अनवरत परिश्रम ने हाकिंस को राजधानी के दर्शन करा ही दिए। उसे जहाँगीर की सभा मे प्रवेश करने की आज्ञा मिल गई। सम्राट् ने अपने कर-कमलो से ही हाकिंस के हाथो से इगलैंड के राजा का पत्र लिया। ढाई-सौ वर्ष पश्चात् जिस अँगरेजी शासन की शृंखलाएँ समस्त भारतवर्ष मे दृढ हुई, उसका सूत्रपात हुआ।

जहाँगीर हाकिस से मिलकर अत्यत प्रसन्न हुआ। उसने उसे वाणिज्य की सुविधाएँ प्रदान करने का वचन दिया।

हाकिस सम्राट् के लिये कुछ भेट लाया था, जिनका अधिकाश मार्ग मे ही कुछ चुरा तथा कुछ खसोट लिया गया था। दो-चार वस्तुए, जो बची थी, उनमे से एक घटा भी था। घटे मे एक चक्र लगा हुआ था, जो रस्सी की सहायता से बहुत दूर से खीचकर बजाया जा सकता था। उस घटे ने जहाँगीर का ध्यान आकृष्ट किया।

"इसका कुछ नवीन उपयोग हो सकता है।" जहाँगीर ने पूछा—यह किस अर्थ के लिये है ?"

"कदाचित् गिरजे का है। धार्मिक युद्धो मे जो तोड दिया गया, और फिर जिसका जीर्णोद्धार न हो सका। बिकते बिकते यह किसी कबाडी के यहाँ चला गया, वहाँ से मै लाया हूँ इसे।"

उस घटे मे चार घटियाँ थी, जो अलग-अलग चार स्वरो मे स्वरित की गई थी। पहियो का सबध कुछ दाँतो से था, जो घटियो पर के दाँतो मे फँसे हुए थे जब रस्सी खीची जाती थी, तो चारो घटियाँ अलग-अलग चार स्वरो मे क्रम-क्रम से बज उठती थी।

जहाँगीर ने तत्काल ही सभा-भवन मे लटकाकर उस घटे का बजना सुना, और वह बडा प्रसन्न हुआ। उसने दरबारियो से पूछा—"यह बड़ी उपयोगी वस्तु है, आप लोग बताइये, यह कहाँ पर लटकाई जाय।"

एक दरबारी बोला—"इसे यही, सभा-भवन मे हा, रहने दिया जाय। जहाँ लटक गई, लटक गई।"

"क्या अर्थ सिद्ध होगा, इससे यहाँ पर ?" दूसरे ने पूछा।

"इसे और रस्सी बाँधकर लबा कर लिया जाय। जब सम्राट् सभा-भवन मे पधारे, तो दूर से इसे खीचकर उनके आगमन की घोषणा कर दी जाय।"

सम्राट् ने उसे स्वीकार न किया।

एक अन्य सभासद् ने कहा—"इसे किसी मसजिद की मीनार मे लगा दिया जाय कि वह श्रद्धालु को भगवान् की उपासना के समय के लिये सचेत करे।"

सम्राट् को वह भी रुचिकर न हुआ—"एक परपरा की रीति और विधान मे यह सहसा परिवर्तन नही किया जा सकता। वह सह्य न होगा लोगो को। मैने अपनी सहधर्मी प्रजा को वचन दिया है कि मैं रूढियो पर सशोधनो के प्रहार न करूँगा।"

एक तीसरा बोला –"महाराज, इसे अपने शयन-कक्ष मे सुशोभित कीजिए कि आवश्यकता पर यह अपनी मधुर स्वरावलि से आपको नीद से जगावे।"

"हाँ ? कुछ सोचते हुए सम्राट् ने कहा–"नही, अभी यह रख दिया जाय, फिर इस पर विचार किया जायगा।"

"हाकिंस के व्यक्तित्व ने जहाँगीर पर पूरा प्रभाव डाल दिया। वह उसका अतरग मित्र बना। उसे नित्य सम्राट से भेट करने की आज्ञा मिली। वह इगलिशखाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हाकिंस ने बहुत समुद्र-यात्रा कर रक्खी थी। योरप के स्थल पर भी अच्छा भ्रमण कर रक्खा था। यह सम्राट् से देश-विदेश की नाना घटनाओ का वर्णन करता। योरप की भिन्न-भिन्न जातियो की समाजिक और राजनीतिक चर्चा छेडता।

हॉकिस को जहाँगीर के दरबार मे रहते-रहते दो वर्ष बीत गए। उसे सम्राट् की सभा मे प्रतिष्ठा पाते देखकर उसके पुर्तगाली प्रतिद्वद्वी द्वेष से जल उठे।

---

[६]

बगाल के सूबेदार का नाम था कुतुबउद्दीन । वह बडा तीक्ष्ण और कठोर मनुष्य था । अल्प महत्त्वाकाक्षा के योद्धा के मस्तिष्क मे विद्रोह का बीज पनपा देनेवाला वह राजधानी से असबद्ध प्रात, कदाचित् ऐसा ही शासक चाहता था ।

कुतुबउद्दीन को किसी प्रकार यह ज्ञात हो गया था कि बर्दवान के एक साधारण जागीरदार की स्त्री पर सम्राट् जहाँगीर लुब्ध है । उसका लोभ जितना बढा, कौतूहल उतना नही । वह सोचता—"वह कैसी असाधारण रूपवती महिला होगी, जिस पर समस्त भारतवर्ष का स्वामी मोहित है , कोई-न-कोई बात होगी अवश्य ही ।" वह मेहेर को देखने के लिये उत्कठित हो गया । एकाध बार उसने प्रयत्न किया । दौरे के बहाने वह बर्दवान जा पहुँचा । शेर अफगन ने उसके अतिथि-सत्कार में कोई कसर नही रक्खी । पर भला उस अँत.पुर-चारिणी, असूर्यंपश्या नारी के दर्शन उसे कसे हो जाते । फिर भी शेर अफगन के गृह-उपवन, बैठक-शयनकक्ष, वस्त्राभूषण, स्वच्छता, साजा-सज्जा और प्रबध मे जो सुरुचि और चातुरी प्रतिफलित थी, उसे मेहेर की जानकर वह सूबेदार दाँतो-तले उँगली दबाकर रह गया । मेहेर को नही देख सका, फिर भी मानो दर्पण मे उसकी प्रतिच्छाया देखकर लौट गया। वह अपनी राजधानी गौड को ।

मेहेर के अदर्शन की निराशा पर उसने एक दूसरा रग चढा दिया । उसने विचारा—"अपने लिये, नही, यह एक असभव कल्पना है । सम्राट् के लिये उसे प्राप्त किया जा सकता है । उसके नौकर-चाकरो से मैंने जो उसकी प्रशसा सुनी, तथा जो कुछ उसके गुण मेरे देखने मे आए, उससे कहा जा सकता है कि वह नारी-रत्न अवश्य ही सम्राट् के गले के हार मे जड दिये जाने योग्य है । सुनता हूँ, वह फारसी मे कविता भी करती है, पर मेरे बार-बार के अनुरोध को बराबर टालता गया वह सैनिक ।

न-जाने स्त्री की कविता सुनाने मे क्यो इतने सकोच से दब गया शेर अफगन। प्रेम और शृगार की भरी होगी, अवश्य इसीलिये। हमारे महाराज भी तो कवि है, बडी सु दर जोडी मिल जाती। सुनता हूँ, मेहेर सम्राट् के लिये अपने हृदय मे पूर्व-प्रेम रखती है। फिर भी न-जाने महाराज क्यो इतने वर्षो से चुप रह गए। यदि मै भूलता नही हूँ, तो सम्राट् का निधन हुए छ वर्ष बीत गए। अपने हाथो से ऐसे वर्ष-वर्षव्यापी विरह की अग्नि को हृदय मे धारण करने वाले इस प्रेमी का दुख मुझे अधीर करता है। मै उसकी पीडा शात करूँगा, मै उसे उसको प्रेमिका के दर्शन करूँगा।"

शीघ्र ही अवसर आकर उपस्थित हुआ। बर्दवान के निकट कुछ सरदारो ने आपस मे मिलकर सम्राट् को राजस्व देना अस्वीकार कर दिया। कुतुबउद्दीन ने उनको भले प्रकार समझाने के लिये अपने आज्ञा-पत्र के साथ सशस्त्र कुछ अश्वारोही सैनिक भेजे।

एक आज्ञा-पत्र शेर अफगन के पास भी भेजा गया था। उसमे तुरत ही शेर अफ़ग़न को गौड आकर उपस्थित हो जाने का आदेश था।

शेर अफगन उस आज्ञा-पत्र को पढकर चक्कर मे पड गया। बगाल के सूबेदार का ऐसा आधीनस्थ होकर वह कभी नही रहा था। अकबर के समय से ही उसका सबध सीधा सम्राट् से था। जहाँगीर के राजत्व-काल मे भी वह परपरा अभी तक अक्षुण्ण ही चली आ रही थी।

"एकाएक कुतुबउद्दीन का ऐसा साहस क्यो हो गया!" उसने मेहेर के सामने जाकर कहा।

"कदाचित् राजधानी से ऐसी ही आज्ञा निकली हो।"

"मुझे भी तो ज्ञात होना चाहिए न?"

"हो क्यो नही आते फिर? तुमसे दरजे मे कम थोडे हैं वह। हैं तो प्रात के स्वामी ही न?"

"हो आऊँ? कैसे हो आऊँ? पास-पडोस मे न-जाने किस समय

विद्रोह का दावानल धधक उठे । अकेली ही तुम्हे यहाँ छोडकर जाऊँ ?"

"विद्रोह यदि भडक उठा, तो फिर तुम्हारे रहने से ही क्या हो जायगा । जो सैनिक और प्रजा सहायक होगी, उसे नियुक्त कर जाओ । शीघ्र ही जाकर लौट आओ । यदि सूबेदारो को असतुष्ट कर दोगे, तो वह सम्राट् के कान भर देगा तुम्हारे विरुद्ध ।"

अद्भुत सशय-भरे स्वभाव का हो चला था शेर अफगान, बोला—"तुम्हे और छोटी लडकी को अकेला ही छोडकर कहाँ चला जाऊँ ?"

मेहेर चुप रह गई इस विषय पर । तर्क था उसके पास, पर उसने मुख खोलना उचित समझा नही । बातचीत मे दूसरी शाखा बढाई उसने "फिर क्या उत्तर दोगे उसे ?"

"लिख दूँगा, मै उसके अधीन कभी नही रहा । सीधे राजधानी का अनुशासन मानता हूँ ।"

"नही ।" तीव्र प्रतिवाद किया पत्नी ने—"नही, यह लिखो कि बाल-बच्चे असुखी हैं । जो आज्ञा हो, यही लिखकर भेज दे ।"

बात को तोलकर शेर अफगन बोल उठा—"ठीक है, यही करूँगा ।"

"अपना सहायक कौन है इस परदेश मे ? यहाँ तो सबसे मिलकर ही रहना ठीक है ।" मेहेर ने कहा ।

"यदि निकट ही विद्रोह उठ खडा हो गया, तो क्या होगा ?"

"जो भगवान् को स्वीकृत होगा, होकर रहेगा वह ।" कहकर सोचने लगी मेहेर—"पर यह निर्वास ही तो रुचिकर है न इन्हे । कौन कहे इनसे आगरा चलने की बात ।"

शेर अफ़गन ने सूबेदार के दूत को पत्र लिखकर बिदा किया ।

दो-तीन दिन के अनतर एक सरदार उसके पास आया । आतिथ्य-सत्कार ग्रहण कर दो-चार इधर-उधर की बातो से भूमिका बांध लेने पर उसने कहा एकात मे—"यदि हम सब मिलकर प्रयत्न करे, तो हो सकता है ।"

शेर अफगन घबराकर बोला—"क्या हो सकता है ?"

"सम्राट् के विरुद्ध हमारा युद्ध इतना नही है, जितना सूबेदार के। आए दिन इसकी मनमानी से हम क्षुब्ध हो उठे हैं, रात-दिन इसके विलास के लिये साधन जुटाते हुए। हम जानते है, सम्राट के अज्ञानुसार यह सब कुछ नही होता।"

"राजधानी को आप लोगो ने प्रतिनिधि भेजा तो था। सम्राट् ने आपके कष्टों की कथा सुनकर क्या उत्तर दिया।"

"कौन सुनता है वहाँ। सूबेदार के कई मित्र और संबधी है वहाँ, वे बात को बाहर-बाहर उडा गए।"

"हूँ ?" शेर अफगन ने ठोडी पकडकर चिंता व्यक्त की।

"बहुत विचारकर ही तो हम इस निश्चय पर पहुँचे है। यही केवल एक मार्ग है।"

मेहेर के रूप ने शेर अफगन के साहस और वीरता पर हरताल फेर दी थी। पास-पडोसियो के निश्चय को सुनकर उसके होश उड गए—"अततः सूबेदार का विद्रोह सम्राट् का ही तो विद्रोह होगा। साम्राज्य के अश्वारोहियो से जब आपके नगर, घर और खेती सब कुचल दी जायगी, तब क्या होगा ?"

"हमारे हाथो मे क्या चूडियाँ पडी हैं ? साहस से सामना करेगे, और अतिम साँस तक अत्याचार की जड खोदने मे प्रयत्नशील रहेगे। हमे भगवान का भरोसा है। भूमि-जय की आकाक्षा नहीं है हमे। ईश्वर-प्रदत्त जीवन की नितात आवश्यकताओ के लिये ही हमारा युद्ध है। हम और हमारी प्रजा अपनी क्षुधा के ग्रासो को, इस अंधे सबेदार की वासनाग्नि के लिये नही दे सकती।"

"फिर ?"

"फिर क्या, तुम्हे भी तैयारियाँ करनी उचित हैं।"

"मुझे ?" शेर अफगन के पैर काँप रहे थे—"किसलिये ?"

"युद्ध के लिये।"

"मेरा कैसा युद्ध ? सूबेदार से मेरा कोई सीधा सपर्क ही नही है।"

"वह अत्याचारी है, यह जानते हो ?"

शेर अफगन ने स्मृति पर भार देकर कहा—"हॉ।"

"प्रतिवासियो का सकट आपका सकट है। अत्याचार के विरुद्ध कर्मशील होना मनुष्यता है।"

"अकारण ही विद्रोह मे मुझे सान देना चाहते है आप ?"

"इतने निकट यदि युद्ध छिड गया, तो आप कितने दिनो तक उदासीन होकर रह सकेगे। हमारा साथ यदि आप न देगे, तो फिर सूबेदार का पक्ष लेकर लडना पडेगा आपको।"

शेर अफगन ने बात को यथार्थ पाया।

"सूबेदार का पक्ष लेकर भी आपकी विपत्ति टल नही सकती।"

"क्यो ?"

सरदार ने बहुत धीरे-धीरे कहना आरभ किया—"सुनो, कुतुबउद्दीन ने तुम्हारी पत्नी के रूप की प्रशसा सुनी है।" सरदार चुप हो गया इतना ही कहकर।

शेर अफगन सोचने लगा—"सम्राट् के निमत्रण पर मुझे आगरा चला जाना चाहिए था।" केवल सकेत पाकर ही आगे की कल्पना कर ली उसने।

बोला—"बडा नीच है यह सूबेदार।"

"हॉ, वह कई बार आ चुका है यहाँ तक छद्मवेश मे। इसलिए सावधान हो समय से पहले युद्ध के लिए तयार हो जाओ।"

शेर अफगन को कुतबउद्दीन का आगमन याद आया, पर उसने कहा नही कुछ।

"क्या निश्चय किया फिर ?" सरदार बोला।

"आत्मसम्मान रोटी से बढकर है।"

"वीर की उक्ति यही है। धन्य हो तुम !"

"कुतुब ने यदि अपनी दृष्टि मे विकार दिखाया, तो फिर वह जीवित न रहेगा धरती पर।" खड्ग की मूँठ पर हाथ रखकर शेरअफगन गरजा।

"इसमे भी क्या कोई सदेह है। उसकी काली कथाएँ नही सुन रहे हैं आप इतने दिनो से। इसलिए दुविधा मे मत पडो। समय से पहले स्पष्ट मार्ग चुन लो। हमारे साथ रहो, इससे हम सबका बल बढेगा।"

"दूँगा, आपका ही साथ दूँगा, पर अभी निश्चय कर बताऊँगा आपको।"

सरदार को बिदाकर शेर अफगन मेहेर के कक्ष मे गया।

सो रही थी वह। कवरी खुलकर बिखर गई थी एक कधे पर। झरोखे पर कटी हुई ज्यामिति की आकृतियाँ प्रकाश और छाया के पुष्प बनकर उसके मुख पर ठहरी हुई थी। अधरो के कोने खिचकर कुछ हँसी प्रकट कर रहे थे। कदाचित् किसी स्वप्न के फल-स्वरूप।

देखता ही रह गया वह योद्धा, उस अलौकिक रूप को प्रतिमावत् पाकर। कहने लगा अपने मन मे—"छवि की इस निरुपम दीप्ति को इस छोटे-से विस्तार मे लाकर बदी कर दिया मैने। क्यो किया इससे विवाह? हृदय की समस्त महत्त्वाकाक्षाएँ इसी की परिक्रमा मे विश्रात हो गई! यह जागीर लेकर और भी असुविधा जोड दी मैने। किसान की झोपड़ी मे श्रम और धूलि के कण हमारे सहचर होते। उसमें यह सौदर्य अच्छे प्रकार लुक-छिप सकता। सतोष और सरलता के एक अज्ञात पथ मे शून्य हमारी यात्रा होती, और हम इन राजमार्ग पर की पैनी दृष्टियो से सुरक्षित रहते।"

मेहेर ने आँखे खोलकर करवट बदलनी चाही। सामने पति पर उसकी दृष्टि पडी। वह तुरत ही उठ गई। शय्या त्याग दी। केश और वस्त्र ठीक कर बोली—"क्या देख रहे हो?"

"कुछ नही मेहेर। दीपक के भँवर मे पडा हुआ पतग न जाने क्या देखता है ।

मेहेर सिहर उठी, बोली—"नही समझी।"

"तुम दिन मे कभी विश्राम नहीं करतीं, फिर यह ऋतु भी तो सोने की नही है।"

"माथा भारी हो रहा था, नीद से कछ चैन मिला।"

"लडकी कहाँ है ? अब वह बडी हो चली, तुम्हारे साथ ही उसे रहना उचित है।"

"यही दासी के साथ पाईं बाग मे तो है। क्यो आज तुम उदास हो, बहुत अधिक ।"

"हाँ मेहेर !"

"और मै तुम्हारी बात समझ भी नही सकी।"

"हमारी जागीर पर की सीमाओ पर जो राजविद्रोह फैल रहा है, उसमे वे लोग मेरी छोटी-सी शक्ति को भी लपेट लेना चाहते हैं।"

"नही, कभी नही, यह कदापि ठीक न होगा। इतने बडे साम्राज्य के सामने इनका बल अधिक दिन नही ठहर सकेगा। साम्राज्य-विद्रोह करने का कोई करण नही देखती मै।"

"सूबेदार कुतुबद्दीन ?"

"उसने ही क्या बिगाड़ा है हमारा ?"

"तुम नही जानती।"

"कहो भी तो ।"

पर शेर अफगन चुप रह गया।

"नहीं, नही, मै कदापि सम्मति न दूँगी।" मेहेर ने फिर कहा।

"पर मै उन्हे वचन दे चुका हूँ ।"

"बडी भूल की, वचन लौटा लो।"

"यह अशोभनीय है। वे सबसे पहले आकर हमें ही लूट लेगे।"

"उनका भय है तुम्हे, साम्राज्य का नही ?"

"तुम्हे जाकर तुम्हारे पिता के घर पहुँचा दूँ ?"

"तुम्हारी इच्छा। इस विषय पर मै कुछ बोलने की शपथ खा चुकी हूँ। नही, मै न जाऊँगी कही। साहस क्यो खोते हो ? तुमने सिह की उपाधि पाई है।

"अवसर पर स्त्री को लेकर भाग जाने को लोग क्या कहेगे। आग्रह परगए नही, बिना बुलाए ही वहाँ पहुँचने पर पिता और भाई क्या कहेगे मुझसे ?"

शेर अफगन ने मन मे सोचा—"बडा स्वच्छ और आत्माभिमान-भरा हृदय है इसका। मै अपनी सकीर्णता से उसमे कलंक देखता हूँ। अपनी भूल सुधारनी षडेगी मुझे।"

मेहेर बोली—"क्या वचन दे चुके हो तुम ?"

"स्पष्ट कुछ नही कहा अभी।"

"तो पत्र लिखकर भेज दो उनके पास, कि मेरे पास सूबेदार से विद्रोह करने का कोई कारण नही है।"

"कारण नहीं है कोई ?" शेर अफगन ने आकाश-मडल मे पूछा।

"क्या कारण है फिर ? विग्रह उपस्थित हुआ है राजस्व पर ?"

"हाँ।"

"और तुम सूबेदार को कोई राजस्व नही देते ?"

"नही।"

"बस, हो गया। लिख दो उन्हे, मेरा राजस्व पर कोई झगडा नही है। आप लोग राजस्व पर ही विरोध कर रहे हैं। मेरी आपके साथ मैत्री सर्वथा अस्वाभाविक और नीति के विरुद्ध है। साहस रक्खो।"

कुतुबउद्दीन ने तुरत ही सशस्त्र सैनिक भेजे राजस्व वसूल करने के के लिये। आना-कानी या अस्वीकार करने पर उसने अधिकारियो को

आज्ञा दे दी थी कि सेना का बल प्रयोग कर विरोधियो की सपत्ति छीन ले।

प्रजा ने ऐक्य कर राजस्व किसी प्रकार न देने का स्थिर निश्चय किया। चिनगारी पड गई। अधिकारियो ने राजस्व के नाम पर लूट-पाट मचानी आरभ की नही थी, कि शस्त्र निकल पडे, मार-काट होने लगी।

सूबेदार का एक दूत शेर अफगन के पास पहुँचा, यह आज्ञा लेकर कि यदि विद्रोह छिड गया, तो तुरत ही एक सौ अश्वारोहियो को एकत्र कर शेर अफगन को राजकीय सेना की सहायता के लिये आना पडेगा।

"मै अपनी रक्षा को ही एक-सौ अश्वारोहियो का प्रबंध नही कर सकता, सूबेदार के लिये कहाँ से लाऊँ।"

"व्यय राज्य से मिलेगा, कहा है उन्होने।"

"इसके अतिरिक्त यह एक अनुचित माँग है।"

"लिखकर दे दो फिर।"

"लिख दूँगा।" शेर अफगन बोला।

दूत समझाने लगा—"यद्यपि यह एक असबद्ध-सी बात है, तथापि मै आपसे कहूँगा, सूबेदार से झगडा मोल ले लेना ठीक नही है। विद्रोह भडक उठा है। आप भी तो साम्राज्य के आश्रित हैं। सम्राट् की सेवा आपका भी पहला कर्तव्य है। एक-सौ अश्वारोही न सही, जितनो का प्रबध आप कर सकते हो, लिख दीजिए।"

"नही, मै सिर से पैरो तक राजभक्त हूँ। सूबेदार की एक अन्याय-व्यवस्था है, मै नही मान सकता इसे किसी प्रकार। उनके पास इस आशय का कोई आज्ञा-पत्र आया है क्या सम्राट् का ?"

"मै नही जानता।"

"नही आया है। प्रतिलिपि मेरे पास भी तो आती। सूबेदार को ज्ञात होना चाहिए, मेरे श्वशुर राजधानी मे प्रतिष्ठित पद पर हैं। मै

साधारण सरदार नही हूँ, उनकी कोई धाँधली न चल सकेगी मुझ पर।" शेर अफगन ने वीर-दर्प से कहा।

दूत अनमना होकर रह गया!

वीरोचित साहस के ही साथ शेर अफगन ने स्पष्टत अपने मनोभाव लिख दिए, चिकनी-चुपडी छोड बिलकुल रूखी भाषा मे।

पत्र लेकर दूत बोला—"इसका अर्थ यह है, सूबेदार को स्वय ही सेना लेकर शीघ्र आना पडेगा, यहाँ भी।"

"जो कुछ भी हो फिर।"

दूत के जाने पर शेर अफगन ने मेहेर से जाकर कहा—"आग लगा चुका हूँ मेहेर!"

मेहेर कुछ समझी नही—"क्या अर्थ है तुम्हारा?"

पति ने सारी स्थिति स्पष्ट कर कहा उससे—"तुम्हारी ही सम्मति पर स्थिर रहना चाहता था मै, पर वह असभव हो उठी।"

"फिर क्या होगा अब?" चिंतित होकर मेहर बोली।

"तुम्हारी और लडकी की रक्षा का पहला उपाय करना है आज ही, सीमा पर मार-काट भी तो मचने लगी है। उसके लिये भी तो दूर-दर्शिता चाहिए ही।"

"क्या उपाय सोचा है, रक्षा का?"

"बूढे घोषी को बुलाया है मैने। दूर रहता है, सध्या-समय तक आ ही जावेगा। बरसो वह हमारे नमक से पला है, और सदैव उसे हमारा ऋण स्मरण रहता है। उसके यहाँ छद्मवेश मे तुम दोनों मा-बेटी सुरक्षित रह सकोगी।"

"और तुम?"

"मै यहाँ युद्ध करूँगा। यदि सूबेदार ने झगडा बढाया, तो फिर विवश होकर मुझे शेष विद्रोहियो के दल मे मिल जाना ही पडेगा।"

मेहेर असाधारण मानसिक बल रखती थी। सहसा दुःखो से अधीर

न हो उठती थी। बालकाल से ही वह जननी और जन्मभूमि को खोकर दु खो के ही दावानल से होकर बढी थी। फिर भी उसकी आँखो के कोने सजल हो गए।

उसकी लडकी निकट ही खडी थी। वह अब सयानी हो गई थी, और सहज ही अब सब बातो को गभीरता से सोचने लगी थी। अपनी एक नई चादर मे गोट जड रही थी, उसे दूर कर खडी हो गई, मलिन मुख कर पिता के सामने।

शेर अफगन ने कन्या के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—"अधीर न होओ बेटी, वहाँ सब प्रकार सुरक्षित रहोगी। घोषी प्राणो के पण से तुम्हारी रक्षा करेगा।"

"यदि सैनिक लूट-पाट करते हुए वहाँ भी आ पहुँचे, तो ?" लडकी ने पूछा।

"साधारण किसानो के वस्त्र पहनकर वहाँ छिपी रहोगी। उसके कई गोशालाएँ हैं, कही रख देगा ईधन या घास के सग्रह मे ढककर। बडा अनुभवी, धार्मिक और आयु का बूढा है वह। पाँचो समय भगवान् के लिये मस्तक विनत करता है। युवावस्था पे सेना मे नौकरी कर चुका है। दृष्टि कुछ दुर्बल हो गई, पर अब भी उसके शौर्य और साहस के सामने अच्छे-अच्छे रणवीर ठहर नही सकते।'

"पिता जी, और आप यहा युद्ध करेंगे ?" गद्गद होकर लडकी ने कहा।

"हाँ, वह तो जन्म का व्यवसाय है। चिंतित न होओ, मै शीघ्र ही शाति स्थापित होने पर तुमसे मिलूँगा। मै आज ही तुम्हारे नानाजी के पास एक अश्वारोही भेज रहा हूँ, वह तुरत ही हमारी सहायता करेंगे।"

मेहेर की आँखो के आगे आशकाओ की छाया-मूर्तियाँ नाचने लगी थी, भीम-भयानक। वह चिंता मे डूबी हुई चुप खडी रह गई थी। सोच

रही थी—"कुशल नही जान पडती इस बार। क्या होगा फिर, इस बधु-बाधव-विहीन प्रवास मे ?" उसके मुख से एक ठडी साँस बाहर निकल पडी।

शेर अफगन बोला—"तुम वीरागना हो। क्या सोचने लगी हो खडी-खडी ? चिंता से मुक्त होओ। घोषी तुम्हारी पूरी-पूरी रक्षा करेगा। और इन बादलों के छँट जाने पर, मेहेर, हम राजधानी को ही चलेंगे। वही कोई नौकरी कर लूँगा। केवल कुछ ही दिन कष्ट है।" शेर अफगन ने सोचा था, उसकी इस बात से मेहेर प्रसन्न हो उठेगी।

परंतु नही, मेहेर की चेष्टा मे कोई परिवर्तन नही प्रकटा।

"आगरे मे अपनी कन्या के उपयुक्त कोई योग्य वर ढूँढकर हम उसका भी विवाह कर न्यस्त-भार हो सकेंगे। कुछ धैर्य रखना ही पडेगा मेहेर, कुछ कष्ट सहन ही करना होगा प्रिये !"

इसका भी कोई प्रभाव न पडा मेहेर पर, कन्या कोई बहाना कर कुछ देर के लिये टल गई थी वहाँ से।

"साहस रक्खो मेहेर ! आज यह परीक्षा के समय कैसी दुर्बलता दिखाने लगीं। चलो, आभूषण-वस्त्र और अन्य सामान को सँभालकर बद कर दे। समय खोना नही है।"

मेहेर ध्वनि मे बडी पीडा खोलकर दूसरे के हाथ-पैरो से सामान सँभालने लगी। उसकी कन्या भी उसकी सहायता मे नियुक्त हो गई थी। और दासी को भी यह भेद दे दिया गया था।

सध्या-समय घोषी आ पहुँचा। वह शेर अफ़गन की स्त्री-कन्या की रक्षा करने को सन्नद्ध हो गया। किसी पर भी बात न खुले, इसीलिये रातोरात पैदल ही दासी और घोषी के साथ मेहेर बिदा हो गई। बाहरी नौकर-चाकरो को भी उस समय इधर-उधर भेज दिया गया।

कुछ दूर तक मार्ग मे शेर अफ़गन उन्हे पहुँचाने गया। चाल ढीली कर पति-पत्नी कुछ पिछड गए थे।

शेर अफ़गन ने रुद्ध कठ होकर कहा—"मेहेर !"

"हॉ ।" तारो की क्षीण ज्योति मे अस्फुट पथ पर मेहेर बोली ।

"मेहेर, मैने तुम्हे मन-प्राण से प्यार किया है ।"

"मैने कभी अन्यथा नही सोचा ।"

"पर बार-बार मैने यह पाया, तुम्हारी प्रसन्नता कही और थी । उस समय मै यह सोचता था कदाचित् मेरा प्यार, प्यार नही, एक अत्याचार है ।"

"आपकी बातचीत की असामयिकता चुभ रही है मुझे ।"

"मेहेर, जब यह विद्रोह की धूल धरती पर बैठ जायगी, कदाचित् मै—"

आगे नही कहने दिया मेहेर ने— 'कैसी भयानक कल्पना करने लगे तुम ।"

"मेरे प्रवाह को रोको नही सु दरि ! कदाचित् यह हमारी अतिम भेट है ।"

मेहेर रुक गई ।

घोषी लाठी के सहारे मार्ग मे बढ रहा था। उसके पीछे मेहेर की कन्या थी, अनेको विचारो और अधकार को चीरती हुई जा रही थी, सामने घोषी की छाया-मूर्ति के अधिनायकत्व मे ।

घोषी ने पीछे की ओर मुख कर धीरे से पुकारा—"सरकार !"

"हॉ, चले चलो, रुको नही, हम आ रहे हैं ।" शेर अफ़गन बोला—"रुको भी नही ।" वह मेहेर का हाथ पकडकर चलने लगा ।

"हे भगवान् ! क्या होगा !" मेहेर माथे पर हाथ रखकर बोली ।

"आज अवश्य ही पूछूँगा । तुम्हारे विवाह की इस सहचारिता मे यह प्रश्न कॉटे की भॉति प्राणो मे गडाकर सॉस लेता रहा हूँ । सच कहो मेहेर, क्या तुम सलीम से प्रेम करती हो ?"

"एक अशुद्ध उच्चारण ?" तत्क्षण ही मेहेर चमक उठी—"क्या हो गया तुम्हे ?"

"कुछ भी हो, उत्तर देना ही पडेगा। सुनना चाहता हूँ मै स्पष्ट, भय नही है किसी का।"

"मै नही करती किसी से प्रेम। उसकी आवश्यकता ही क्या है। धिक्कार है मेरे जीवन को!"

"कभी प्रेम किया था तुमने सम्राट् से?"

"मै नही जानती, क्या हुआ प्रेम?"

"कभी देखा भी है तुमने उसे?"

"संभव है, देखा हो, अनजान में।"

"अच्छा, जाओ मेहेर! यदि उपवन फिर तुम्हारे लिये पुष्प खिला सके और उन रगो में तुम्हारी तृष्णा ठहर जाय, तो तुम अपनी इच्छा पर चली जाना। परतु इस कन्या का, इसका स्मरण रखना। छोडना नही। किसी योग्य वर से इसका विवाह करना अपना परम कर्तव्य समझना।"

मेहेर रोने लगी। शेर अफ़ग़न ने घोषी को पुकारा, वह रुक गया।

"विद्रोह की अवधि मे इन्हे सौंपता हूँ तुम्हे। शाति होने पर फिर क्या होगा, कोई नही जानता। कुछ भी हो, तुम अवसर के अनुकूल अपना कर्तव्य निभाओगे, इसका विश्वास है मुझे।" शेर अफगन ने कन्या के मस्तक पर हाथ रक्खा—"जाओ बेटी, माता की आज्ञा का पालन करना।"

सूने गृह की दिशा में लौट गया शेर अफ़गन। मार्ग मे अपने दो-तीन ग्रामो के मुखियो के पास पहुँचा वह। उसने उन्हे सन्निकट विरोध के लिये सैन्य-संग्रह करने की आज्ञा दी।

रात मे बडी देर मे घर पहुँचा वह।

चौकीदार ने टोका।

"मै हूँ प्रहरी।" शेर अफगन बोला—"स्त्री-पुत्री को आगरे भेजकर आया हूँ अभी। इतनी शीघ्रता मे था कि जाते समय कुछ कह भी न सका तुमसे। तुम मेरे कार्याध्यक्ष को बुलाकर नही लाए?"

"आए थे वह मेरे साथ ही। बडी देर तक आपकी प्रतीक्षा की यहाँ। खाना खाने गए हैं, आते ही होगे।"

अध्यक्ष के आने पर शेर अफगन ने अपने गाँवो के समस्त मुखियो के लिये आज्ञा-पत्र लिखवाए, शीघ्र ही सेना-सहित तैयार हो जाने को। उसी समय वे आज्ञा-पत्र भिजवा भी दिए गए।

दूसरे ही दिन रात को सूबेदार कुतुबउद्दीन ने कुछ घुडसवारो के साथ छापा मारकर शेर अफगन का घर घेर लिया। शेर अफगन के प्रहरी दूर से ही मशालो को उधर ही बढते हुए देखकर खिसक गए थे।

शेर अफ़गन खिडकी के मार्ग से बाहर एक आम के पेड़ पर चढ गया, और अवसर मिलने पर उस पर से कूदकर भाग निकला।

कुतुबउद्दीन ने आज्ञा दी—"तोड दो विद्रोही का घर। उसको और उसकी स्त्री दोनो को पकडकर लाओ मेरे सामने।" उसे क्या ज्ञात था कि एक सूने घर के द्वारो पर उसके सैनिक व्यर्थ परिश्रम कर रहे हैं।

बिजली के वेग से आस-पास यह समाचार फैल गया कि सम्राट् ने शेर अफ़ग़न को पकड मँगवाया है, और सूबेदार स्वय सेना लेकर आए है।

उस रात मे शेर अफ़ग़न अपने एक गाँव के मुखिया के पास गया तो उसने उसे सहायता देना अंगीकार न किया। दूसरा, तीसरा, चौथा''' कोई भी तो सहमत न हुआ। सबने यही कहा कि हम साम्राज्य की सेना का सामना नही कर सकते। हाँ, विद्रोहियो का दमन करने को तैयार हैं।

प्रकट हो गया शेर अफ़ग़न पर कि जगत् सबल पक्ष का साथ देता है, दुर्बल का नही। उसने कुछ निश्चय किया। दस-पाँच घुड-सवार उसके साथ थे, वे भी भाग जाने का अवसर ढूँढ रहे थे। उसने कहा उनसे—"सारा खेल साहस का है। फिर सूबेदार अधिक सेना लेकर आया नही है।"

एक घुडसवार बोला - "निकट ही कही छिपा आया होगा ।"

"देखा जायगा ।" कहकर घोडा दौडा दिया शेर अफगन ने खड्ग खीचकर अपने गृह की दिशा मे—"तुममे से जो सच्चे हृदय से मेरा साथ देना चाहता है, चले वह भी, नही तो भगवान् मालिक है ।"

गृह का द्वार टूट गया था । कुतुबउद्दीन ने साथियो को बाहर ही रहने का आदेश दिया । वह अकेला ही गृह के भीतर घुस गया था ।

उसी समय शेर अफगन भी आ पहुँचा । घोडे से वह भी बिजली की चाल से मकान मे प्रविष्ट हो गया ।

कुतुबउद्दीन एक कक्ष के अनतर दूसरे कक्ष मे फिरता हुआ पुकार रहा था—"मेहेर ! मेहेर !"

शेर अफगन उसके निकट पहुँच गया । उसने अपनी पूरी शक्ति से खड्ग खीचकर मारा । आघात उसके घुटने पर पडा, कवच की सधि से होकर शस्त्र ने उसकी हड्डी तोड दी ।

"यह है मेहेर ! तू मेहेर को ढूँढने आया है !" घन गर्जना मे शेर अफगन ने कहा ।

कुतुबउद्दीन ने लॅगडाते हुए उस पर प्रत्याघात किया । शेर अफगन बच निकला । उसने फिर तलवार खीचकर उसके पेट मे घुसा दी । वह रक्त मे लथपथ होकर भूमिशायी हो गया । कुतुब के कई साथी इस समय तक गृह के भीतर आ गए थे । उन्होने शेर अफगन पर झपट कर उसे भी धराशायी कर दिया ।

कुछ ही देर मे दोनो योद्धा वीर-गति को प्राप्त हो गए ।

प्रभात होते ही यह समाचार घोषी ने सुन लिया । वह चित्र लिखा-सा खडा ही रह गया । उसकी समझ में न आया, यह शोक-समाचार कैसे जाकर मेहेर को सुनावे । कभी वह समाचार की सत्यता मे सदेह करने लगता । पर सवाददाता ऐसा मनुष्य न था, जिस पर कुछ सशय किया जा सके ।

एक सुनी हुई बात ही उसने दुहराई है। बिना इस समाचार की जाँच किए कह देना कदापि बुद्धिमानी नही है।" मन मे सोचकर घोपी निर्भय होकर घटनास्थल को चल दिया।

रात-ही-रात मे सूबेदार की सेना लूट-पाट कर,घर मे आग लगा कर चल दी थी। वह बडी सावधानी के साथ उस अधजले घर के भीतर घुसा। तमाम सामान अस्त-व्यस्त होकर पडा था। उसे शेर अफगन का शव ढूँढने मे कुछ भी विलब न लगा। जगत् की उस नश्वरता पर बूढा घोपी सिर पीटकर रह गया।

गाँव मे लोग आतक मे भरे हुए मकान बद किए बैठे थे। घोषी ने जाकर कुछ लोगो को बुलाया। उसने शेर अफगन के वध का समाचार उन्हे देकर कहा—"बडी लज्जा की बात है। वर्षो से तुम जिसके आश्रय मे रहे, दुर्दिन मे उसके सहायक न हो सके। उसकी मिट्टी का तो साथ दो। प्रकार चाहे कुछ हो, एक दिन ऐसा ही अत तो हमारा भी निश्चित है।"

घर और शव की रक्षा मे कुछ मनुष्यो को नियुक्त कर घोषी मेहेर के पास चला।

एक झोपडी मे घास के सग्रह के ऊपर शय्या बिछाकर मेहेर बैठी थी अपनी लडकी के साथ। झोपडी से सलग्न एक कठघरे मे गाय और भैस बधी हुई थी, जहाँ घोषी के नौकर-चाकर काम कर रहे थे। झोपडी के बाहर बीच मार्ग मे घोषी ने अपनी खटिया डाल रक्खी थी।

भगवान् की शपथ के साथ केवल एक नौकर को मेहेर का भेद दे उसे उसकी रक्षा मे छोडकर घोषी चल दिया था। जब दिन चढने लगा, तो वे मा-बेटियाँ मौन साधे हुए उस एकात मे घबरा उठी।

झोपडी का कुछ फूस एक ओर को सरकाकर मेहेर ने बाहर पथ पर दृष्टि डालने के लिये एक छिद्र बना लिया था। वह चुपचाप चिंता मे घुली हुई उस छिद्र से बाहर पथ पर दृष्टि गडाए हुए थी। नौकर-चाकर

गोबर फेक रहे थे, घास ले जा रहे थे। कही कुएँ पर पानी भरा जा रहा था। कोई लकडी फाड रहा था। बीच-बीच मे गाएँ रभा रही थी। पक्षी चहचहा रहे थे।

सूर्योदय हुआ। प्रकृति मे रग अधिक स्वच्छ और उज्ज्वल हो उठे, प्राणियो मे चेतना अधिक जीवित और जागरित प्रतीत हुई। धीरे-धीरे रव जिस स्तब्धता से बढा था, उसी मे मिलने लगा।

गाय-भैंस खोल दी गई। ग्वाले उन्हे चराने को ले चले। कुछ समय बीत जाने पर गोशाला मे सर्वत्र शाति छा गई।

"घोषी कहाँ चले गए। उनका कोई शब्द भी नही सुनाई पडता!" मेहेर ने बहुत धीरे-धीरे लडकी से कहा। रात्रि के जागरण का स्पष्ट प्रभाव उनके मुख पर था—"बेटी, भूख लगी होगी?"

लडकी ने केवल सिर हिलाकर व्यक्त किया—"नही।"

फिर धैर्य एकत्र कर मेहेर बैठ गई आसन बदलकर। दोनो के अग पर मलिन और जीर्ण वस्त्र थे। भूख की ज्वाला पर उनका कोई ध्यान ही न था। समस्त मन की वृत्तियाँ पति और पिता के कुशल-मगल पर ही अटकी हुई थी।

अचानक निकट ही कही घास पर किसी की चापे पडती हुई सुनाई दी। किसी ने पुकारा—"मा!"

मा-बेटी और भी नि शब्द और नि:स्पंद होकर रह गईं।

मनुष्य कुछ और निकट आया। उसने कुछ और उच्चतर स्वर में पुकारा—"मा!"

मेहेर ने समझा, हमारे ही उद्देश्य से यह पुकार है। बुरका खीचकर सकोच मे दबे कंठ से उसने कहा—"हाँ।"

"कोई भी मनुष्य अब यहाँ नही है। मै उनका नौकर हूँ। वह किसी आवश्यक काम से गए हैं। आपकी रक्षा का भार मुझे सौप गए हैं। गोशाला मे अब मेरे अतिरिक्त कोई मनुष्य नही है। आप निर्भय और

निःसकोच होकर उतर आइए। आँगन मे कुएँ पर मैने जल खीचकर रक्खा है। आप लोग मुँह-हाथ धोइए। भोजन की क्या व्यवस्था हो। बता दीजिए। यहाँ सब कुछ है। मै थोडी ही देर मे तैयार कर ला दूँगा।"

दोनो उस शून्य बधन से उतर पडी।

नौकर ने फिर पूछा—"भोजन के लिए आज्ञा ?"

मेहेर ने ढका हुआ सिर हिला कर नकारा।

"भोजन तो कुछ करना ही पडेगा। दु:खो को सहन करने की शक्ति नही तो कहाँ से आएगी।"

माता-पुत्री कुएँ की ओर बढी, और नौकर उनके लिये भोजन का प्रबध करने लगा। नौकर के दूध के उबलने तक मेहेर तथा उसकी कन्या शौचादि से निवृत्त होकर अपने अध कारागार मे चली गई थी। घोषी ने एक मोटी रस्सी में सम अतरो पर गाँठें बांधकर सीढी-सी बना कर लटका रक्खी थी।

कुछ देर मे नौकर फिर आ पहुँचा—"मा, रस्सी नीचे फेक दीजिए। मै खीर पकाकर लाया हूँ। कुछ खा लीजिए।"

लड़की ने ऊपर से उत्तर दिया–"नही, हमे कुछ भी इच्छा नही है।"

"यह तो उचित नही जान पडता।"

लडकी ने पूछा—"घोषी नही आए अभी ?"

"नही।" नौकर ने कहा। अधिक आग्रह भी न कर सका वह। लौट गया।

एक-एक क्षण मे चिंता के सागर में कई-कई थपेड़े खाकर मेहेर व्याकुल हो गई। कुछ समय के व्यतीत होने पर अचानक उसने दो मनुष्यो को निकट ही कुछ गुनगुनाते हुये सुना। उनके स्वरो मे किसी भयानक भविष्य की प्रतिध्वनि सुन पडी मेहेर को।

मेहेर ने घबराकर बेटी से पूछा—"घोषी आ गये क्या ?"

"हाँ, उन्ही का स्वर जान पड़ता है।"

"बेटी, आप-से-आप मेरा मन उद्विग्न हो उठा। घोषी को इतनी देर आए हो गई। हमारे पास तक आने मे उनके पैर भारी क्यो हो गए हैं ?"

अचानक घोषी ने आकर बडे करुण स्वर मे कहा—"मालकिन बडा भयानक समाचार लेकर आया हूँ मै तुम्हारे लिये।"

घोषी को आगे कुछ भी न कहना पडा। मेहेर सब कुछ अपने आप समझ गई। वृत-च्युत कुसुम के समान वह गिर पडी घोषी के सामने। उसे अपने तन बदन की सुध न रही, लज्जा-शील का सकोच न रहा। उसकी कन्या ने उसका अनुसरण किया।

पथ मे अग्रसर होती हुई मेहेर बोली—"चलो, कहाँ हैं वह ?"

कभी मुख खोलकर बोलते हुए नही सुना था घोषी ने उसे। देखा उसने, वह अविराम धाराओ मे रुदन कर रही थी। लडकी भी कातर स्वर मे रोने लगी थी। उन दोनो की यह विपन्न अवस्था देखकर घोषी भी ढाढ मार कर रोने लगा।

आभास पा गई थी लडकी, फिर भी वह सत्य को स्पष्ट शब्दो मे सुनना चाहती थी। उसने घोषी से पूछा—"क्या हो गया ? तुमने कहा नही कुछ ?"

"क्या कहूँ बेटी ! तुम्हारे पिता युद्ध मे मारे गए !"

सहसा पथ मे बढती हुई मेहेर पर मानो अनभ्र आकाश से वज्र गिर पडा। वह माथा पकडकर बैठ गई भूमि पर। उसे कुछ क्षण तक तो ध्यान ही नहीं रहा जीवन और जगत् का। बिखरे हुए केश, घूँघट और अचल मे वह कूडे और गोबर पर बैठ गई थी। आपातत. उठ बैठी वह—"पहुँचा दो मुझे वही।"

"धीरज रक्खो, तुम कुल-महिला हो। मार्ग मे इस प्रकार इस वेश मे जाते हुए लोग क्या कहेगे तुमसे। इसके अतिरिक्त मार-काट मची हुई है वहाँ।"

"मै भी वही मर-कट जाना चाहती हूँ, जहाँ मेरे पति पड़े है।

अब कैसा और किसका भय ! अब कैसी और किस की लज्जा ! पहुँचा दो मुझे वही ।" मेहेर बालको की भाँति हठ करने लगी ।

"कुछ क्षण तो धैर्य रक्खो । जो होना था, वह हो चुका । किसी भी उपाय से अब उनके प्राण लौटाए नही जा सकते ।"

"यह तो प्रकट सत्य है । मै कब इसके विपरीत कह रही हूँ । किंतु जो जीवन की ज्योति और सहारा था, वह मृत होकर भूमि पर पडा हो, गिद्ध और चीटियो का शिकार हो रहा हो, और मै लज्जा और भय की ओट खोजती हूँ । धिक्कार है इस जीवन को और इसके सुख की कल्पना को) तुम मेरी लडकी की रक्षा करना, मै अकेली ही चली जाऊँगी ।"

"नही मा, मै भी साथ ही चलूँगी ।"

"ठहरो फिर, वस्त्र तो अपने पहन लो ।" घोषी ने कहा ।

"शृगार किसके लिये अब ?" मेहेर बोली ।

" मृत पति के ही मान-सभ्रम को ।" घोषी ने उन दोनो को अपने-अपने वस्त्र पहनने पर विवश किया ।

उनके वस्त्र सभालकर रख दिये थे उसने, गुप्त वास की अवधि पूर्ण होने पर फिर उपयोग करने को । इतने शीघ्र ही उनकी आवश्यकता पड गई !

उसी समय घोषी के साथ मेहेर अपने घर पहुँच गई ।

जिस प्रकार हर्ष की एक सीमा है, उसी प्रकार शोक भी निःसीम नही है । पलो ने बीतकर घड़ियाँ बनाईं, घडियो ने प्रहर और प्रहरो ने दिन-रात । जीवन की नई आशा और नए प्रबधो मे मेहेर का शोक धीरे-धीरे कम हो चला ।

पति का समाधि-संस्कार कर घर मे जो वस्तुएँ लूट-पाट से बच गई थी, मेहेर ने उनको दिया-लिया। बर्दवान मे अब उसका क्या रक्खा था । स्वभावतः उसकी दृष्टि आगरे अपने पिता और भाई के आश्रय पर लगी ।

शीघ्र ही यह समाचार आगरे जा पहुँचा । सम्राट् ने शेर अफगन

की मृत्यु पर बडा शोक प्रकट किया। विद्रोह के दमन के लिये एक बडी साम्राज्य की सेना बँगाल को चली। उसी के साथ मेहेर को आगरे ले जाने के लिये उसके भाई आसफखाँ ने भी प्रस्थान किया।

सेना के पहुँचने के पहले ही विद्रोह शात हो चुका था। विद्रोहियो को पकडकर दड दे दिया गया। लडकी को लेकर मेहेर आसफखाँ के साथ आगरे जा पहुँची।

फिर वही आगरा! सम्राट् की वह सौधमालाओ से विशोभित कनकनगरी आगरा! मेहेर उदास होकर दिन मे कोलाहल से भरी और रात्रि को दीपावली से उद्भासित उस राजधानी को देखती। बैठे-बैठे एकात मे आँसू बहाती, और लडकी के मुख मे अपने मृत पति की स्मृति को सचित समझती।

पिता और भाई के निकट इसे पर्याप्त शाति और सात्वना प्राप्त हुई। राजदरबार मे वे दोनो उच्च पदो पर प्रतिष्ठित थे। द्रव्य और प्रभाव किसी की भी कमी नही थी। मेहेर को कोई अभाव ज्ञात न हो, इसके लिये दोनो पिता-पुत्र सदैव यत्नशील रहते थे।

उसकी लडकी सयानी हो चली थी। उसके विवाह की चिंता मे ही वह सदैव डूबी रहती थी। गृह-कार्य मे परम दक्ष मेहेर, जागृति के एक-एक क्षण का सुरुचि और सुदरता से उपयोग करने वाली मेहेर, जीवन के प्रत्येक बधन से उच्छिन्न हो उठी। किसी शून्य एकात मे माथा पकड़कर चुपचाप अलक्ष्य मे आँसू बहाना ही उसका अविराम कर्तव्य हो गया।

उसकी भाभी, आसफ़खाँ की स्त्री, आरभ के दिनो मे मेहेर के दुख पर बडी समवेदना प्रकट करती, नाना प्रकार से उसे समझाती, पर उस का कोई प्रभाव नही पडता था।

आसफ़खाँ की भी एक लडकी थी, मेहेर की कन्या की ही प्राय: समवयस्का। दोनो बहनो मे बडी प्रीति बढ गई थी। वे साथ-साथ सोती-जागती, खाती-पीती, हँसती-बोलती। एक के बिना दूसरी को चैन ही नही पड़ता था।

मेहेर आगरे आकर उपस्थित हो गई। यह जानकर जहाँगीर की पिपासा फिर नई होकर जाग उठी। उसने अपने प्रेम के स्वप्नो में फिर रग भरने आरभ किए।

शेर अफगन की मृत्यु पर कुछ लोगो ने यह अनुमान करना आरंभ किया कि उसका बध जान-बूझकर बिना कारण ही किया गया। वे लोग जहाँगीर के प्रेम-रहस्य से अवगत थे।

मेहेर के आगरा आते ही गुलाब उसके दु ख मे उससे समवेदना प्रकट करने जा पहुँची।

"क्या हो गया तुम्हे? मैं तो पहचान ही नही सकी।" गुलाब ने भूमिका बाँधी।

"मै भी नही जानती गुलाब।"

"आपातत कितनी अवधि व्यतीत होगी इस प्रकार?"

मेहेर के मुख से कोई उत्तर नही निकला। दो आँसू उसके कपोलो पर बह गए।

"ऐसे अस्वस्थ हो जाओगी। अभी तुमने देखा ही क्या है, अवस्था ही ऐसी क्या हैं तुम्हारी? इतना विस्तृत ससार है तुम्हारे सम्मुख।"

"उसे ढका ही रहने दो गुलाब। मृत्यु की जिस भयकरता के दर्शन किए हैं मैंने, अत्यत पीड़ा-भरी होने पर भी मै दिन-रात उसी को स्मरण रखना चाहती हूँ। यदि तुम जगत के प्रकाश की ओर जाने की मुझे प्रेरणा दोगी, तो तुम्हारा परिश्रम व्यर्थ होगा, और कदाचित् मुझे कोई कटु वचन न कहना पड़ जाय तुमसे।"

गुलाब अपने आश्चर्य को मन मे ही दबा गई। कहने लगी—"मैं तो दासी हूँ तुम्हारी। जो कुछ भी कहती हूँ, वह सेवा के ही भाव से। तुम्हारे निकट जो प्रश्रय और सदेह मिला है, वह मुझे अपना कर्तव्य करने को बाध्य करता है। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे इस दु.ख में पूर्व की

भाँति मैं तुम्हारी परिचारिका होकर रहूँ।"

"नही गुलाब, कोई आवश्यकता नही।"

"है कैसे नही ? ये दासियाँ तुम्हारी रुचि और आवश्यकता को नहीं पहचान सकती ?'

"तुम पहचानती हो, इसी से भयभीत हुई हूँ मै !"

गुलाब अप्रतिभ हो गई। साहस कर उसने पूछा—"ऐसी क्या भयावनी हो गई मै ? आज तक तुमने कभी कोई कलक नही दिया था। क्या कभी चोरी या झूठ का व्यवहार करते हुए पाया तुमने मुझे ?"

"नही गुलाब, तुम समझी नही।" गभीरता के साथ मेहेर ने कहा।

'स्पष्ट कहना ही पडेगा तुम्हे फिर।"

'तुम बहुत परिश्रमी हो। सु दर स्वभाव की, हँसमुख हो। तुम्हारे निकट रहने से मेरा दुख भूला जायगा। इसी से तुम भयावनी हो उठी हो। मै अपना दुख किसी को देना भी नही चाहती, भूल जाना भी नही।"

"अच्छी बात है स्वामिनी ! फिर मुझे चला जाना ही उचित होगा।"

मेहेर चुपचाप रही।

"तुम्हारी कुशल-मगल जानने की जब आकुलता उत्पन्न होगी मन मे तब आऊँगी ही अवश्य, तुम दड भी दोगी, तब भी। बाहर-ही-बाहर दास-दासियो से पूछकर लौट जाऊँगी।"

"ठहरो गुलाब, तुम रिसा गई हो ?"

"नही।" जाने की चेष्टा मे उस चतुर दासी ने कहा।

"मेरे इस दुर्भाग्य पर तुम्हे दया नही ?" अत्यंत भावान्वित होकर मेहेर बोली।

"है तो।"

"बैठ जाओ फिर। शोक अत्यंत बुरी अवस्था है। स्थिरता खो गई

है मेरी। जो कोई कटुता व्यवहार मे प्रकट हो गई मुझसे, उसकी गिनती करनी न चाहिए तुम्हे। तुमसे एक अत्यत आवश्यक काम है।"

गुलाब बैठ गई भूमि पर।

"तुम राजाओ के अतःपुरो मे विचरण करती हो। मेरी लडकी के योग्य कोई वर है तुम्हारी दृष्टि मे।"

"क्यो नही।"

मेहेर ने उसका हाथ पकड लिया। वह भी भूमि पर उसीके साथ बैठ गई—"मै उसे सब प्रकार से सपन्न और श्रेष्ठवर से विवाह मे देना चाहती हूँ।"

"इसी योग्य तो है वह। ऐसी कुल-शील और रूप-गुण-सपन्न कन्या मेरे देखने मे तो कोई और है नही।"

"बताओ फिर ?"

"सम्राट् के पाँच लडके हैं।"

एक आशा चमक उठी मेहेर के। "सबसे ज्येष्ठ, युवराज, सिहासन का अधिकारी, हो सकता है उससे विवाह ! नही गुलाब, यह एक भिखारी के राजतिलक का स्वप्न है!" निराश होकर मेहेर बोली।

"युवराज खुसरू से तुम्हारा अर्थ है। हो क्यो नही सकता है उससे विवाह ! पर मै कदापि सम्मति न दूँगी।"

"क्यो ?"

"तुम्हे अभी कुछ ज्ञात है नही। युवराज खुसरू सम्राट् की दृष्टि मे पतित है। सम्राट् ने उसे अधा बनाकर बदी-गृह मे डाल रक्खा है। दूसरा राजकुमार भी ठीक नही। तीसरा राजकुमार खुर्रम, वह योग्य है सर्वथा।"

"पर हो कैसे ?"

"मै कोई असभावना नही देखती इसमें। तुम्हारे पिता और भाई राजधानी मे सम्मानित हैं।"

"निराशा से मेहेर बोली—"भाई तो अपनी कन्या के लिये ही उप-युक्त वर नही ढूँढ सक रहे है ।"

"तो भी क्या कठिनता है ?"

मेहेर ने गुलाब को आगे बोलने देने का अवसर दिया ।

'बुरा न मानना । हो चका, ये शोक के वस्त्र उतार डालो । यही तो कहना चाहती हूँ । कुछ कडई अवश्य लगेगी तुम्हे मेरी बात ।" दासी बोली ।

ताडिता फरिणनी-सी होकर मेहेर ने कहा—"क्या ? क्या ?"

"कहूँगी, कोई भय नही मुझे सच कहने मे । सुनो, सम्राट् के हृदय मे तुम्हारे लिये जो स्थान है, वह अभी तक अक्षुण्ण है । ऐसा प्रेम तो मैंने देखा ही नही—सत्य और निर्मल ! तुम्हारी इस असहाय और असह्य दशा को देखकर तो वह और भी आकुल हो उठे है ।"

मेहेर ने कहने दिया गुलाब को ।

पर गुलाब बड़ी कुशल थी । युक्ति से ही बोल रही थी—"तुम्हारा केवल एक प्रस्ताव सम्राट् को मान्य होगा वह ।"

मेहेर ने नि श्वास छोड़ी—"नही, गुलाब ।"

"तो फिर इस राजभवन की आकाक्षाओ को विसर्जित कर दो ।"

गुलाब चली गई । उसे इस बात का गर्व हुआ कि उसने फिर सम्राट् के प्रेम की लता को बडी चतुराई से रोप दिया मेहेर के मानस मे ।

दिन घूमने चले । प्रकाश फिर मेहेर को अपनी ओर खीचने लगा । शीत से विदग्ध हुई धरती पर फिर बढते हुए दिन और युवक होते हुए सूर्य की तेज भरी किरणे पडी । जीव और प्रकृति दोनो फिर नवीन होकर खिचने लगे, किधर ? कोई नही जानता । उस क्षणिकता का नाम सुख रक्खा गया है ।

लता-वृक्षो को पुष्प और मजरियो ने रूप दिया । पक्षियों के कंठो मे गीत की श्रुतियाँ झकृति हो उठी । सर और सरिताओ मे स्वच्छ जल

प्रवाहित हुआ। वायु का सुरभि ने शृगार किया, एव मानव के मानस में आशा खिल उठी।

शोक के मलिन वस्त्रों मे आच्छादित मेहेर ऊब उठी। उसने झरोखो की जालियो से देखा, बाहर समस्त वृक्षराजि नवीन हरीतिमा में चमक रही थी। मरकत मणि की स्वच्छ आभा मे स्नात, नेत्रो को परम शाति-दायिनी।

प्रतिवासिनी महिलाएँ मेहेर को समझाती थी। अपने लिये न सही, कन्या के लिये तो उसे जीवित रहना ही चाहिए। धीरे-धीरे उनके विचारो ने मेहेर के मानस मे घर कर लिया।

समय बीत जाने पर भाभी के व्यवहार मे परिवर्तन उपज गया। धीरे-धीरे उसने द्वेष का रूप धारण किया। मेहेर को यह सबसे अधिक विद्ध करने लगा। वह अपने मन मे समझने लगी—"भाभी को मै अब भार-रूप हो गई हूँ। पर मै जाऊँ किधर ?"

निकट ही कही वायु के भीतरी स्तरो मे सम्राट् जहाँगीर की अतृप्त आकाक्षा के स्वर बज रहे थे—"आओ मेहेर, यहाँ आओ। एक युग बीत गया तुम्हारी प्रतीक्षा करते करते। तुम्हे क्यों विश्वास नही है मेरे प्रेम का। तुम्हारा आदि और प्रकृत प्रेमी मै हूँ। शेर अफगन ?—नही, वह एक हठ, अन्याय और प्रतिहिंसा का विवाह था। विवाह ही क्यो कहूँगा मै उसे—वह एक बधन था, एक फाँसी थी। उस विवाह के सयोजक न रहे, और अभागा शेर अफ़गन !.... .बेचारा न सँभाल सका उस रूप के भार को !"

मेहेर के कान भर दिए इस बीच में एक पडोसिन ने। किसी पाच-हजारी सरदार की पत्नी, सभ्रांत थी। उसने एक दिन चुपचाप कहा कान मे—"बहुत-से लोग यहाँ आगरे मे, कहते हैं, शेर अफ़गन की हत्या सम्राट् ने जान-बूझकर कराई है।"

कुछ क्षण विचारा मेहेर ने, फिर तीव्र प्रतिवाद किया उसने। पडोसिन अपना-सा मुँह लेकर चली गई।

उसके जाने के पश्चात् मेहेर विचारने लगी—"हठात् क्यो ऐसा प्रतिवाद निकल पडा मेरे मुख से ? सत्य का पता ही क्या है मुझे ? सम्राट् की एक तीव्र लालसा है मुझे प्राप्त करने की, इसमे कोई सदेह नही। समय के इतने बडे अतर पर भी वह चाहना दुर्बल नही हुई है। मुझे प्राप्त करने के लिये यदि उन्होने मेरे विगत पति की हत्या का षड्-यत्र रचा हो, तो यह स्वाभाविक हो सकता है।" उसने फिर मन ही मे प्रतिवाद किया—"नही, मेरा हृदय कह रहा है, सम्राट् ऐसे कायर नही है!"

(कल्पना के दो भाग हैं—एक सघन कल्पना, जो समयाँतर मे वास्त-विकता मे अनुवादित हो जाती है। दूसरी, मूढ कल्पना, जिसे दिवा-स्वप्न भी कहा जा सकता है। यह कर्म मे परिणत नही होती। मस्तिष्क के बाहरी खडो मे स्पदित होकर ही यह न-जाने कहाँ विलीन हो जाती है। इद्रियो की नियोजना कर ही नही सकती प्रत्यक्ष-लाभ के हेतु।)

बहुत भले प्रकार मेहेर के मानस मे गडी हुई थी वह प्रेम-कथा, दो कपोतो ने जिसे आरभ किया था। विवाह होने के पूर्व मेहेर ने सम्राट् का प्रेम स्वीकार करने के लिये कबूतर को ही दूत बनाया था। इस अवधि मे मेहेर कल्पना के ससार मे राजभवन मे ही विचरण करती थी—सोते और जागते।

सम्राट् अकबर ने उस कल्पना पर एक घना आवरण डाल दिया। मेहेर ने उसे उठाकर कभी देखने की चेष्टा की नही, पर उसकी अतर-चेतना मे समाई हुई वह कल्पना स्वप्नो के द्वार तोड कर उसके मन को अधिकृत कर लेती थी। छिपे ही-छिपे वह वर्द्धित होती रही।

शेर अफगन की मृत्यु के कुछ दिन बीत जाने पर वह आवरण आप-से-आप उड गया। मेहेर अब जाग्रतावस्था मे भी अपने को राजभवन के भीतर समझने लगी।

इस बार जब गुलाब उसके पास आई, तो उसके भावो में समूल

परिवर्तन पाया। मन ही मे कहा उसने—"अब यह अँकुर धरती की गहराई को छेदकर बाहर आया है। अब देखना गुलाब, इसमे कितनी शाखा-उपशाखाएँ, कितने पत्र और कितने फूल खिलते है।"

मेहेर की भाभी गुलाब के प्रवेश को बडी शङ्का की दृष्टि से निहारती थी। वह बार-बार अपने मन से प्रश्न करती थी—"यह राजभवन की परिचारिका क्यो इतना इनका सान्निध्य ढूँढती हुई चली आती है? यह अवश्य किसी मत्रणा के लिए आती है। भेद लेना चाहिये इसका। पुरानी दासी! हमारी भी तो अनेक दासियाँ रह चुकी है, वे कितना हमारे यहाँ आती हैं।"

गुलाब ने देखा, आज मेहेर को सम्राट् की चर्चा बडी प्रियतर प्रतीत हो रही थी। उनकी एक-एक बात मे बडी प्रतीति दिखा रही थी।

अनेक बाते होने पर मेहेर ने कहा—"क्या सम्राट् मेरी कन्या का विवाह युवराज खुर्रम से करने को प्रस्तुत होगे?"

यद्यपि मेहेर ने अत्यन्त धीरे से यह बात खोली थी, तथापि उस कक्ष के बाहर छिपी हुई भाभी के कानो ने उसे पकड लिया। मन मे कुढते हुए उसने कहा—"ये स्वप्न हैं इनके! साधारण रूप और गुण की, एक साधारण सरदार की कन्या का विवाह युवराज से होगा। साहस तो देखो इनका। मेरी लडकी के पासग-भर भी नही है वह।"

गुलाब ने उत्तर दिया—"कई बार इस प्रश्न का सतोषजनक उत्तर दे चुकी हूँ मैं तुम्हे?"

"तुमने पूछा है उनसे?"

"हाँ।"

"क्या उत्तर दिया?"

"यही कि मेहेर की समस्त अधूरी इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी।"

बाहर भाभी ने दाँत पीसे—"क्या बक रही है यह दासी? मै तो इन्हे एक बुद्धिमती रमणी समझती थी। एक चाटुकारिणी को ऐसे मुँह

लगा रही हैं ।"

"फिर ?" निकट ही अत्यत उजले भविष्य मे दृष्टि-निक्षेप कर मेहेर ने कहा ।

"फिर क्या ? केवल तुम्हारे ही निश्चय पर सब निर्भर है ।"

भाभी ने सोचा—"क्या निश्चय है इनका ?"

भाभी मेहेर की प्रेम कथा को जानती न थी। न धँस सकी उस निश्चय के तल तक, पर एक अबूझ पहेली मे उसकी कल्पना उलझ गई !

मेहेर निश्चय कर चुकी थी। वह बोली नही कुछ। उसके नेत्र और मुख मे एक विचित्र प्रकाश चमका। गुलाब ने उसमे मेहेर के निश्चय का प्रतिबिब पाया। गुलाब भी चुप रह गई।

गुलाब के उठने से पहले ही भाभी खिसक गई धीमी और वेगभरी च ापो से। जब गुलाब चली गई तो, उसने चुपचाप ननँद के कक्ष में प्रवेश किया ।

मेहेर दीवार पर जडे हुये एक विशाल दर्पण पर पडा हुआ परदा हटाकर उसमे अपने रूप को देख रही थी। भाभी के प्रवेश का आभास पाकर सहम उठी, और दर्पण पर की धूल स्वच्छ करने लगी।

भाभी बोली—"क्या देख रही हैं। बहत दुर्बल तो हो गई हैं।"

मेहेर हँसी—नही तो ।"

"इन वस्त्रो को बदल दो अब ।"

मेहेर ने चौककर भाभी के प्रस्ताव की गभीरता ज्ञात की।

"यह आवरण फेंक दो इस दर्पण पर का। अच्छा नही जान पडता।" भाभी ने कहा।

"हटा दूँगी।"

रात को आसफ़खाँ ने पत्नी से कहा—"सम्राट् ने मुझे मंत्री पद देने का वचन दिया है। अभी किसी पर प्रकट नहीं करना यह।"

पत्नी को हठात् दिन का मेहेर और गुलाब का सवाद याद आया, पर वह चुप रही।

आसफखाँ ने फिर पूछा—"एक बात और सम्राट् के एक अतरङ्ग मित्र से सुनी है मैंने। सम्राट् मेहेर से विवाह करना चाहते है।"

पति के मत्री-पद के हर्ष पर पानी फिर गया पत्नी के। पति ने पूछा—"करेगी वह विवाह ?"

"हाँ।" कहकर पत्नी ने दिन की घटना सुनाई।

विवाह निश्चय हुआ। मिर्जा गयास की मृत्यु से कुछ दिन के लिये टल गया। फिर सारी राजधानी ने मेहेर और जहाँगीर के विवाह का उत्सव मनाया। मेहेर ने नूरजहाँ—जग-ज्योति होकर जहाँगीर के अंतः-पुर मे प्रवेश किया।

———

[७]

जहाँगीर ने कहा—"इस मूर्ति-पूजा मे जो जीवन और तन्मयता दी, उससे कदाचित भगवान् मिल जाते।" सम्राट् उस फूल-बासर की रैन मे भावुकता के ध्रुव पर पहुँचे। तन-बदन, आँखो से नीचे तक ज़री की काषाय चादर से आवरित मुख लिए वह प्रतिगृहीता खडी थी जडता साधे हुए।

"सुंदरि! बोलो न कुछ।" कहकर उसने ओढनी सरका दी मुख पर से।

व्यथा के भार से ढली पलको पर आँसू चमक रहे थे उसके। उसने कटाक्ष कर फिर दृष्टि फिरा ली।

"तुम्हारी आँखो मे आँसू! क्या तुम्हारे समस्त अभावो की पूर्ति न हो जायगी इस राजभवन मे ?"

मेहेर चुप रही।

"नवीन प्रेम का मौन आभूषण है," पर हमारा प्रेम पंद्रह वर्ष का प्रौढ है। तुम्हारे अधरो की नि स्पदता शूल-सी बिद्ध कर रही है। मेहेर ! तुम्हारे मुख के प्रकाश से मेरा यह कक्ष सुहाग-भरा दिखाई देने लगा। क्या तुम अपन पिक-कठ से उसे मुखरित न कर दोगी ?"

मेहेर रोने लगी।

"मेहेर, तुम भारतवर्ष की सम्राज्ञी हो। रत्न-धन-धान्य का यह अक्षय भाडार ! सारा ससार इसकी ओर देखकर चमत्कृत हो उठता है। मैने उस जहाजी हॉकिस से योरप के राजाओ की कथाएँ सुनी हैं। वह जब भारत और भारत-सम्राट् का स्तुतिगान करता है, तो मै समझता हूँ, वह चाटुकारी नही करता। मैने तुम्हारे भाई को मत्री का पद दिया है। क्या कोई तुम्हारा शत्रु भी है ? वे कितने ही हो। मै शेरो के पिजरो मे लडने और मृत्यु के घाट उतर जाने के लिये छोड दूँगा। कहो, तुम्हे किसका भय है ?"

मेहेर ने अधर खोले—"शेर· "

"हाँ शेर ! तुम भयाकुल हो गईं। जब तक देख सको झरोखे पर से देखना।"

मेहेर ने शब्द पूरा किया—"शेर अफगन !"

"शेर अफगन ! हाँ, शेर अफगन ! तुम अभी तक उसकी स्मृति मे पडी हुई हो। मै इसे सहन करने का अभ्यस्त हूँ। शेर अफगन ! मै क्या करूँ, मेरा क्या दोष ? वह अदूरदर्शी योद्धा अपने ही दोष से कट मरा !"

"मेरे प्राणो की रक्षा करने मे बलि दी उन्होने।"

मै यह ऋण उसकी समाधि पर सदियो के लिये अकित कर दूँगा, और क्या ? मैने उसके वधिक की खोज की, दड देने को, उसे स्वय ही मिल गया।"

"उनकी एक धरोहर मेरे पास है। मै वचन-बद्ध हुई हूँ उनसे।"

"कहो।"

"उनकी वह कन्या।"

"उसका अंत पुर मे राजकुमारियो के समकक्ष आदर और सम्मान होगा, यह निश्चय कर चुका हूँ।"

"वह विवाह-योग्य हुई है।"

"राजकुमारी के अनुरूप वर ढूँढकर उसका विवाह कर दिया जायगा।"

"मै उसे अपनी आँखो की ओट नही करना चाहती। उसका विवाह युवराज खुर्रम से।"

"युवराज खुर्रम से!" सम्राट् विचारते हुए उदास हो गए।

"हमारे विवाह से पूर्व वचन दिया है आपने।"

"फिर दुहराने का अर्थ?"

"वे वचन सुदृढ होगे।"

"मै पूरा प्रयास करूँगा, पर वह तुम्हारी सौत का लडका है, और तुमने उसका स्थान अधिकृत किया है।"

"मै अपने स्नेह-व्यवहार से माता और पुत्र दोनो का हृदय जीत लूँगी।"

"तुम्हारी जय होवे मेहेर! तुम ज्योति हो, ससार की ज्योति हो। नूरजहाँ! नूरजहाँ!" अचानक सम्राट् के मुख से निकल पडा—'मैं इसी नाम से तुम्हे पुकारूँगा।"

नूरजहाँ ने अपने विमल-कोमल दोनो चरणो के दसो नखो पर मेंहदी की रक्तिमता देखी।

सम्राट् ने फिर प्याला भरकर तृष्णा बुझाई—"तुम जग-ज्योति हो नूरजहाँ! तुम्हारे प्रकाश मे मै समस्त ससार को विजित करता हुआ चलूँगा—मै जहाँगीर हूँ।"

सम्राट् के शब्द, उनके उच्चारण-स्वर एव उनकी भाव भगी को देखकर मेहेर को एक बहुत दिनो से सुनी हुई बात का प्रत्यक्ष हुआ।

"तुमने जहाँगीर की गर्दन का फदा अधिकृत कर रक्खा है, क्या तुम उसके राज्य का सूत्र भी धारण कर सकती हो नूरजहाँ !"

नूरजहाँ विचारने लगी—"सम्राट नशे मे बहक रहे हैं।"

"कहो, कहो, क्यो नही ! जब तुम उच्च सिंहासन पर बिठा दी जाओगी, सिक्को मे तुम्हारी प्रतिमूर्ति अकित होगी, और राजकीय आज्ञा-पत्रो मे होगे तुम्हारे हस्ताक्षर। जब घोषणाओ मे तुम्हारा नाम तार-स्वरो मे प्रतिध्वनित होगा, जब मत्रियो का दल तुम्हारे चरणो पर बैठा हुआ तुम्हारे निर्णय पर साँसे लेगा। तब 'हाँ' या 'नही' इन दोनो मे से किसी एक को चुन लेना क्या कठिन होगा। सम्राट् पर शासन कर सकी हो। प्रजा पर क्या कठिन है। कहो हाँ।" जहाँगीर ने फिर सुराही पर हाथ रक्खा।

नूरजहाँ ने पकड लिया वह हाथ—"नही, सम्राट् !"

"है ! यह क्या करती हो ?" सम्राट् ने बडी बेचैनी के साथ कहा।

"नही सम्राट्, इसे छोड दीजिए।" मेहेर ने अपने निश्चय मे बहुत स्थिर रहकर कहा।

"इसने तुम्हारे विरह को बहुत सँभालकर रक्खा था, और यह तुम्हारे मिलन को भी उज्ज्वल कर देगी।"

"कदापि नही सम्राट्। आपके दोनों भाइयो की असामयिक मृत्यु का कारण इसे ही सुना है।"

"वे दोनो राजकुमार डरकर पीते थे। जो डरा, वही मरा। तुम कविता करती हो ! आश्चर्य है, इसकी बुराई कभी किसी कवि के मुख से नही सुनी। क्या तुम बिना इसके छद की गति सँभाल सकती हो। सुनूँ तुम्हारा काव्य।"

मेहेर ने सम्राट् के अनुरोध पर कोई ध्यान नही दिया। उसने सुराही छीनकर अपने अधिकार मे कर ली—"महाराज, आपने जो शासन का सूत्र सौंपने को कहा है, अतःपुर से ही उसका आरभ करूँगी।"

"ठहरो, फिर अभी कुछ दिन और ठहरो। नही तो तुम मुझे एक झूठा और लपट बना दोगी। यह निशा कलह के लिये न चुनो सुदरि ! मै अनुरोध करूँगा, कुछ थोड़ी सी तुम भी लो। फिर देखना, रस का एक अटूट प्रवाह तुम्हारे छंदो मे छलक उठेगा। एक सरल स्पष्ट गति, कही एक शब्द ढीला नही, कठोर नही। साँचे में ढली, अटूट यति ! और तुक, पक्षियो के जोडे की भाँति, उडता हुआ अपने आप तुम्हारे बधन मे आ जावेगा।" सम्राट् ने सुराही छीन ली मेहेर के हाथो से।

अधिक हठ उचित न समझी मेहेर ने, पर यह निश्चय किया, सम्राट् के इस दुर्व्यसन पर अवश्य ही एक शक्तिशाली हाथ रखना पडेगा। यही पर परीक्षा होगी, महाराज के हृदय मे किसका स्थान ऊँचा है, मेहेर का या सुरा का।

"यह सूखे हुए प्राण इसी से सीच-सीच कर रक्खे मैने नूरजहाँ ! तुम्हारे रूप का प्रकाश, इन्हे विकसा देगा। मैं छोड सकता हूँ इसे, पर वह दूसरी वस्तु है। हरा-भरा रहने को प्रकाश भी चाहिए और आवश्यक है सिचन भी तो। यह रात्रि रसवती होने को गीत चाहती है। तुम गाती हो ?" सम्राट् ने प्याला रिक्त कर कहा।

"नही।"

"इस उच्चतम एकात से दूर जा नही सकते तुम्हारे स्वर। कोई सबधी उन्हे सुनकर तुम्हारी ढीठता पर भूमिका या भाष्य नही रच सकता। केवल तीक्ष्ण खड्गो को सिरहाने रखकर नीचे ऊँघते हुए खोजे, उनके कान हमारी बातो पर नही, बाहर के खटके पर अनुप्राणित हैं। गाओ, गाओ, इसी से मैंने आज अतपुर की गायिकाओ को विश्राम दिया है।"

"नही सम्राट्, मैंने सगीत की शिक्षा नही पाई है।"

"सगीत की शिक्षा ?—वह कोई वस्तु नहीं है। यदि है, तो मै उसे एक अस्वाभाविक, अनावश्यक, परिश्रम-साध्य सजावट का आधिक्य

कहूँगा। वह मस्तिष्क को विश्रांति देने के बदले उसे और भी भारी कर देती है। सहज-साध्य, अभिव्यक्ति है कला! संगीत हो, चाहे चित्रकारी हो, चाहे हो मूर्ति-कला। देख रही हो वह मूर्ति!"

मेहेर ने समझा—"ध्यान बँट गया सम्राट् का, चलो, ठीक ही हुआ, जान बची। जानती ही कहाँ हूँ मै संगीत।" प्रकट मे बोली—"हाँ महा-राज, बहुत सुंदर! बहुत सजीव! कौन है?"

"चिरतन मातृत्व! प्रेम की चरम परिपूर्णिमा! ईसा की माता मेडोना!"

"सम्राट् ने प्रजा मे विशुद्ध धार्मिकता की घोषणा की है। यह कैसा अपवाद! यह कैसा व्यतिरेक! प्रतिमा-पूजा!··'कुफ्र!"

"चुप रहो मेहेर, मेरे पिता गणेश, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन पाचो देवताओ की पूजा करते थे, और मै एक क्षत्राणी का पुत्र, उन मे से किसी का भक्त नही हूँ। (प्रतिमा-पूजको का का यह देश, मै उनका सम्राट्। मै पत्थर का उपासक नही हूँ, इस मैडोना का भी नही, केवल सजावट के लिये है यह, मै इस जीवित और जागरित रूप का पुजारी हूँ, इसे जो भी सज्ञा दो तुम।")

"सूफी दार्शनिक कहता है, निराकार स्थिर होने को आकार ढूँढता है। और ये सब आकार उसी से व्याप्त है! रूप उस अरूप को छू लेने के लिये सोपान है। पार्थिव प्रेम की शुद्ध सस्कृति ही ईश्वरीय प्रेम है।"

"हो सकती है नूरजहाँ!" सम्राट् ने ईषत् विरक्ति के साथ कहा—"मै सूफियो से घृणा तो नही करता, पर कुछ ·· कुछ सुहाते नही है वे मुझे। केवल एक तर्क-विहीन काव्य सूफीवाद मुझे अच्छा नही लगता मेहेर, बता दे रहा हूँ मै तुम्हे।"

मेहेर ने दासी को पुकारा।

दासी आकर खडी हुई।

"तुमने मेरे मन की बात कैसे जान ली?" सम्राट् ने कहा।

"क्या महाराज !" हक्की-बक्की हो मेहेर ने पूछा।

"सुराही रिक्त हो गई है, दासी फिर छलका देगी इसे।"

"नही, यह देखिए, कई दीपक तेल न होने से बुझ गए हैं। दासी को उन्हे प्रज्ज्वलित कर देने को बुलाया है मैंने।"

"बुझ जाने दो उन्हे। तुम ससार की ज्योति हो, अपने स्वरूप को पहचानो। दीपक एक क्षुद्र वस्तु है। लो दासी, भर ला दो इसे। और तुम क्या समझती हो मेहेर !"

दासी सम्राट् के हाथ से सुराही लेकर बोली—"अभी आती हूँ सम्राज्ञी !" वह चली गई।

मेहेर ने अपनी पराजय पर कुछ भी ध्यान न देकर आकाक्षा के साथ सम्राट् की ओर देखा।

"यही समझ रही हो न जहाँगीर नशे मे है। ह-ह-ह !"

"नही तो।"

"गीत की बात भुला ही दी तुमने। अब और अधिक बाते न करेंगे। बाते गीत की भाति शीघ्र और सरस वातावरण नही उपजा सकती।"

"नही गाती सम्राट् !"

"उस दिन गा रही थी, स्नागार मे !"

"वह भी कोई गीत हुआ ! अधो की भाँति टटोलना !"

"फिर क्या हुआ गीत ?"

"स्वर का बोध होना चाहिए।"

"तुम फिर व्याकरण की बात ले आई।"

"स्वरो की साक्षरता !"

"केवल एक ढकोसला। अक्षर मानवी रचना है, और गीत वह सारी प्रकृति का अधिष्ठान है।"

दासी ने सुराही लाकर सम्राट् को दी। वह निर्वापित दीपको की ओर जाने लगी थी।

जहाँगीर ने रोक दिया उसे—"बुझने दो उन्हे। स्वर का उजाला करो। तानपुरा मिलाना जानती हो न ?"

दासी ने हाथ जोडे—"प्रयास करूँगी।"

"स्वर दे, जा उठा ला।"

दासी तानपुरा उठाने को बढा

मेहेर ने अत्यंत सकोच के भाव से कहा—"आज क्षमा कीजिए महाराज। फिर कभी आज्ञा का अनुगमन करूँगी।"

"भयत्रस्ता मृगी के समान क्यो इतनी व्याकुल हो गई तुम!" हँसने लगे सम्राट्—"रहने दो दासी। जाओ तुम।"

दासी चली गई। एक दीपक और बुझ गया!

"काल की परिधि से जैसे बिलकुल बाहर खडी हो तुम। पद्रह वर्ष के सूर्य जैसे तुम्हारा स्पर्श किए बिना ही अस्त हो गए। कोई परिवर्तन नही हुआ है तुम्हारे रूप और अवस्था मे। कोई कौशल ज्ञात है तुम्हे ? कोई जादू जानती हो ?"

"नही, सम्राट्!"

एक दीपक और बुझ गया!

जहाँगीर के साथ विवाह होते ही सबसे पहला काम, अतःपुर मे प्रवेश होते ही जो मेहेर ने किया, वह थी महारानी के चरणो मे विनति। उसने अपने यौतुक के सर्वश्रेष्ठ वस्त्र-आभूषणो के उपहार एकत्र किए, और उन्हे लेकर महारानी के चरणो की भेट दे आई।

महारानी उसकी इस नम्रता और कुशलता से बहुत प्रसन्न और प्रभावित हुई।

दूसरे दिन मेहेर फिर अपने मनोभाव समर्पित करने गई। रीति के अनुसार उसने उनकी वदना की, और बडे सकोच के साथ खड़ी ही रह गई।

महारानी ने मुक्त हृदय से उसे छाती से लगा लिया, और बोली—

"आओ, आसन पर बैठो। तुम मेरे पति को प्रिय हो, इससे मेरी भी प्रीति की पात्री हुई हो। इस भवन को भी अपना ही समझो। सकोच और शिष्टाचार को छोडकर सहज गति और भावों मे प्रकट होओ मेहेर। तुम सम्राट् के हृदय की अधिष्ठात्री हुई हो।"

"इस पर मेरे किसी गर्व या अधिकार-लालसा का आधार न हो। आपकी अनुचरी और दासी होकर ही रहने की प्रेरणा से मैंने सम्राट के प्रासाद मे पदार्पण किया है।"

"तुम्हारा शारीरिक सौंदर्य ही प्रशसा के लिये नही, तुम्हारे विचार भी स्तुति के योग्य है। तुम सबकी प्रिय होकर रहोगी राजभवन मे।"

'महारानी का आशीर्वाद सफल हो। जब कभी अनजान में कोई धृष्टता या अपराध हो जाय, आपकी ताडना का स्वागत करूँगी मैं, और शीघ्र-से-शीघ्र अपनी भूल सुधार लूँगी।"

"तुम कुलवती महिला हो। जान पड़ता है। सौत की कोई भावना मेरे हृदय मे उपजने न दोगी तुम। लडकी को आज भी नही लाई हो तुम अपने साथ ?"

ईषत् हास्ययुक्त होकर मेहेर ने कहा—"आएगी वह भी।" कुछ कहना चाहती थी वह और भी, यति दे दी उसने।

"अबकी बार अवश्य लाना उसे।"

"महारानीजी धृष्टता क्षमा हो। राजरानी हैं आप, राजमाता भी रहेगी आप ही।" फिर रुक गई मेहेर।

"कहो न "

"यद्यपि निकट संबंध मे ग्रथित हुई हूँ आपके साथ, तथापि राज-भवन की कूट चालों के जाल मे कब क्या हो जाय, कोई नही कह सकता। मै और भी आपके निकट आ जाना चाहती हूँ।"

"अर्थात् ?"

"मेरी कन्या विवाह योग्य है। युवराज के साथ उसका विवाह हो

सकता है।" महारानी कुछ सोचने लगी।

मेहेर शीघ्र ही उनसे कोई उत्तर न पाकर घबराई। बोली—"यह मेरा अभिमान न हो, मैं कहूँगी वह सर्वथा युवराज के उपयुक्त है। इससे हमारे बीच मे और भी अधिक सद्भावना उपजेगी, और मैं युवराज का सहज स्नेह प्राप्त कर धन्य होऊँगी।"

"युवराज!" महारानी ने पुकारा।

कोई प्रत्युत्तर नही मिला।

"अभी तो इधर से जाते हुए मैंने उनकी छाया देखी। महारानी ने फिर उच्च स्वर से पुकारा—"युवराज खुर्रम!"

उत्तर आया इस बार—"हाँ, महारानी जी।"

मेहेर, किसी प्रकार अनेक विदग्ध आकाक्षाओ को लिए हुए जी रही हूँ मै। इन विशाल स्तम्भो और छतो की ओट मे? जनता समझती है, इन मणि-मुक्ता, कचन-काषाय, नृत्य-उल्लास हास-विलास के बीच मे महारानी रहती है। उसे क्या ज्ञात है, हृदय मे कितने छाले, प्राणो मे कितने क्षत लेकर दिन काटती हूँ मै। तुम्हारी बातो से कुछ शाति मिली है। फिर उसी वायु-मडल मे व्याप्त हो जाऊँगी, पीडा और वेदना के!"

युवराज खुर्रम ने प्रवेश किया।

"तुम्हारी छोटी माता हैं यह, प्रणाम करो इन्हे।" महारानी ने कहा।

खुर्रम ने प्रणाम किया मेहेर को।

"तुम्हारी दीर्घ आयु हो। तुम्हारे शुभ नाम का उच्चारण किया मैंने, और तुम आ गए उसी समय।"

मेहेर के मधुर शब्द और मीठी वाणी से मुग्ध होकर स्थिर रह गया युवराज वहाँ पर। जिस काम के लिए आया था वहाँ पर, भूल गया।

"आप भारत के भावी सम्राट् हैं युवराज। आपके विनय, शील, काति और बल को देखकर मुझे यह विश्वास दिन-दिन बढेगा कि आपके

कधो पर वह भार सुरक्षित रहेगा। भगवान् आपके आयु-आरोग्य की निरन्तर वृद्धि करे। कुदृष्टियाँ दूर हो !"

खुर्रम मन-ही-मन विचारने लगा—"सम्राट की यह नवविवाहिता पत्नी, यह राजतिलक के लिये मेरे पक्ष का अनुमोदन करेगी, भरोसा हुआ। भाव से स्थिर और प्रतिज्ञ ज्ञात तो हो रही है यह। अत्यत सभ्य, परिष्कृत और मधुर व्यवहार की। बडी पचमेल महिला ज्ञात हो रही है यह। माता से भेंट करने आई हैं! भारत-सम्राट् की प्रेमपात्री! इसे क्या आवश्यकता थी ऐसी। सम्राट् के हमारे साथ कैसे व्यवहार है, यह नही जानती। क्या कुछ कहा नही उन्होंने। अभी नवीना ही है यह! पर प्रतीत हो रहा है, हमारे अतःपुर के कलह यदि घट न सकेंगे, तो बढेंगे भी नही इनके आगमन से।"

"क्या सोचनें लगे युवराज !" माता ने पूछा।

"कुछ नही, मेरे कटार के कोष को वह चितकबरी बिल्ली उठा लाई है, न-जाने किसकी गध पाकर। अभी इधर ही से गई है।

युवराज की माता बडी गभीरता से विचार कर रही थी मेहेर के उस प्रस्ताव को—"यह सुँदरी सम्राट् की दृष्टि मे प्रस्थापित हुई है। राजकुमार खुर्रम से युवराज कह रही है। यदि इसकी कन्या से विवाह हो जाय खुर्रम का, तो उसके युवराज होने मे सदेह अधिक न रहेगा। पर, अभी यह सतानवती नही है। नई है, इसी से यह त्याग दिखा रही है। पुत्र हो जाने पर, क्या फिर इसके मन में युवराज की माता बन जाने का लालच न बढ जायेगा। कदाचित नही, कन्या की ओर न देखेगी क्या यह ?

"एक आग्रह करूँगी युवराज !" मेहेर ने कहा।

फिर युवराज सबोधन पाकर प्रफुल्लित हो गया खुर्रम—"हाँ-हाँ, कहिये।"

"तुम्हे नित्य ही एक बार मेरे पास आना होगा ।"

खुर्रम ने माता की ओर देखा—"जब युद्ध मे राजधानी से बाहर जाना पडेगा, तब ?"

"तब दूसरी बात है ।" महारानी बोली ।

"हाँ, आऊँगा ।" खुर्रम ने फिर माता को देखा ।

माता ने मस्तक का सकेत देकर अनुमोदन किया ।

युवराज निष्क्रात हुआ । वह अतःपुर के भीतर एक नवशक्ति के प्रवेश पर प्रसन्न प्रतीत हुआ ।

"महारानीजी, आप इस क्षुद्र सेविका को उसकी अभिलाषा पूर्ण करने का वचन देगी ?"

"मेरा क्या अस्तित्व समझ रखा है तुमने इस राजभवन मे, कौन मेरा वचन सुनता है । सम्राट् से कहो । जो भगवान् ने रच रक्खा है, होकर रहेगा वह ।"

"माता हैं आप । आपके स्नेह से सहज ही युवराज आपकी ओर आकर्षित हैं । आपकी आज्ञा का पालन करेंगे वह ।"

"मेरी आज्ञा का पालन !" ठंडी साँस लेकर महारानी ने कहा—"आज्ञा का अनुसरण खुसरू ने किया, और यह भी करेंगे ।"

मेहेर ने खुसरू के अधकार-भरे जीवन की कल्पना की । उसे उदास होकर चुप रह जाना पडा ।

कक्ष के मौन और उदास वातावरण को भग किया महारानी ने—"मै क्या बताऊँ मेहेर ।"

"केवल अपनी स्वीकृति दे दीजिए । कन्या को नही देखा है आपने, कदाचित् इसीलिये । उसे देख लीजिए फिर । मेरा तो विश्वास है, यदि आपकी अनुमति होगी, तो फिर टाल न सकेगा कोई ।"

एक क्षीण हँसी से महारानी ने उत्तर दिया ।

मेहेर ने अपने मन मे सोचा—"बिना कन्या को दिखाए ही, इनसे

वचन का निष्काशन कर लेना असगत ही तो है।"

कुछ समय पश्चात् मेहेर बिदा हो गई अपने महलो को।

उस दिन से प्राय नित्य ही आसफखाँ से उसकी पत्नी अपनी कन्या का विवाह राजकुमार खुर्रम के साथ कराने का अनुरोध करने लगी। सम्राट् के अत.पुर से आने-जाने वाली दासियो का वह प्रचुर सत्कार करती, और उनके मन मे अपनी कन्या के रूप-शील और गुणज्ञता की भाँति-भाँति से छाप अकित करती कि वे राजधानी-भर मे उसकी कीर्ति की सुरभि फलाती रहे।

धीरे-धीरे आसफखाँ की पत्नी का राजभवनो मे परिचय बढ गया था। पति के मत्री-पद पर प्रतिष्ठित हो जाने से ही पर्याप्त हो गया था, ननँद के विवाह से तो उनका भवन अत पुर का ही एक अग बन गया।

उस दिन महारानी के पास से कुछ फल लेकर एक दासी आई थी। आसफखाँ की पत्नी ने अपनी कन्या के हाथ की बनी हुई प्राय. बिलकुल नई ओढनी उसे उपहार मे दे दी। कन्या ने सलमे-सितारो से फूल-बेले और पक्षी जड रक्खे थे।

कन्या का नाम था अर्जमद बानू, सुगुण और सुरूपवती थी, इसमे सदेह ही क्या, माता उसकी माप अतिशयोक्ति से करती, ममता हो या राजकुमार से उसका विवाह कराने को इसे आवश्यक समझती हो।

"अर्जुमद बानू के ही हाथ का कढा हुआ है यह।" ओढनी उपहार में देते हुए माता ने कहा।

दासी ने चमत्कृत होकर एक फूल पर अपनी उँगली रखकर उसका घनत्व टटोला—"अद्भुत कला का अकन किया है।"

"दासी, इसी से तो ललच रही हूँ उसे यथायोग्य वर के हाथो मे सौप देने को।"

"राजकुमार खुर्रम है उनके योग्य।' दासी ने पूछा—"कितने दिन मे काढा यह ?"

माता ने पुकारा—"बानू ! बानू !"

तुरत ही आज्ञा का अनुसरण करती हुई अर्जमद बानू चली आई—"क्या है मा !"

कितने दिन मे काढा तुमने इसे ?"

"एक ही पखवारे मे तो। केवल प्रभात और सध्या के ही समय इसमे हाथ लगाती थी।"

"धन्य हो बेटी, भगवान् चिरजीवी करे।" दासी कहने लगी—"मै तो सोच-सोचकर आश्चर्य मे पड गई हूँ।"

बानू को वह प्रशसा रुचिकर ज्ञात न हुई। वह बहाना कर चली गई।

"रूप में ऐसी कि अधेरे कोने मे रख दो, सर्वत्र प्रकाश फैल जाय। और, गुण ऐसे ! इनका तो मुझे परिचय ही न था। मै कह सकती हूँ, अत पुर मे कोई बहू-बेटी ऐसी दक्ष नही है।"

"प्रस्ताव रक्खो न महारानी के समीप।"

"घुमा-फिराकर कह तो चुकी हूँ कई बार। फिर समुज्ज्वल के लिये कहने की आवश्यकता ही क्या है। वह अपनी चमक से स्वयं ही आकर्षण कर लेता है।"

"बडी आकाक्षा है मेरी, विघ्न भी वैसे ही हैं। मेरी ननद की लड़की, सुनती हूँ, राजकुमार खुर्रम का विवाह उससे होने जा रहा है।"

"कौन कहता है। मैं तो समझती हूँ, यह भूल न करेंगे वह ! उस लडकी को तो किसी बात की भी योग्यता नही है। न आए-गए से बात करने का ढग, न वस्त्र पहनने का कौशल, न रूप-शील, कुछ भी तो नही। प्रत्येक क्षण न-जाने किस अभिमान में विलीन रहती है, सीधी दृष्टि से देखती नही, सीधे मुँह बात नही करती।"

"और एक गुण तुम्हे अभी ज्ञात ही नही है।" धीरे-धीरे बानू की माता बोली।

"क्या-क्या ?"

"उसे मृगी आती है ।"

"मृगी !"

"हाँ, मास मे कम-से-कम एक या दो बार । उसका यह अवगुण बाहर फैल जायगा, इस भय से किसी वैद्य-हकीम को दिखाते नही ।"

"मै अवश्य कह दूँगी यह महारानीजी से ।"

"हाँ, हाँ, क्या भय है, पर मेरा नाम न लेना ।"

"नही-नही, क्यो लूँगी । क्या ऐसी मूर्खा हूँ ।" दासी जाने के उपक्रम मे लगी ।

"ओढ लो न इसे ।"

कुछ लज्जा और सकोच के भाव को प्रसन्नता मे बदलकर दासी ने कहा—"बानू के विवाह के दिन पहनूँगी ।"

"दासी, यदि मन की इच्छा पूर्ण हुई, तो तुम्हे सतुष्ट करना कदापि न भूलूँगी ।"

दासी चली गई ।

निकट ही द्वार के पास खडी-खडी अर्जमद बानू माता की बात सुन रही थी बडी तन्मयता के साथ । वह न-जाने किन स्वप्नो मे उलझ गई थी कि दासी के उठकर चले आने की कल्पना न कर सकी ।

दासी पर दृष्टि पडते ही भूमि पर कुछ ढूँढने का नाट्य करने लगी—"सुई गिर पडी है । अभी से जाने लगी क्या ?"

"हाँ । महारानी स्मरण करती होगी ।"

"अब कब आओगी ?"

"जब निमत्रित करोगी ।" दासी हँसती हुई चली गई ।

अर्जमंद बानू सुई-तागा लेकर एक गवाक्ष के निकट बैठ गई । दूर वन मे जाली से होकर यमुना के कगार दिखाई दे रहे थे, और कही पर उनके बीच-बीच मे टूटी हुई जल की रेखाएँ दृष्टिगत हो रही थी ।

रेखाओ पर अस्तमित होते हुए रवि की किरणो ने रौप्य चमका रक्खा था।

हाथ के काम पर अधिक जी नही लग रहा था उस रूपवती का। दूर की रजतरेखा बलात् खीच-खीच ले रही थी उसके ध्यान को। कौन कह सकता है, क्या सोच रही थी वह ? क्या अपने विवाह के चित्र बना रही थी ? राजकुमार खुरम के साथ ? यमुना के उस रमणीक तट पर उन रूपे की रेखाओ पर किन स्वप्नो का निर्माण कर रही थी, कौन जान सकता उस समय ?

कौन जान सकता था तब, वही ताज की प्रतिमा है। सम्राट् शाहजहाँ के प्रेम के स्वप्न की आधार वह, जिसकी कोमलता एक दिन कठिन मणि और प्रस्तर मे बदिनी होकर अनेक शताब्दियो तक वर्षा-वज्र, शीत-घाम और आँधी-भूचाल से युद्ध करती रहेगी। भौतिकता मे आबद्ध हुए प्रेम के मधुर स्वप्न ! ताजमहल ! अमर होओगे तुम। प्रेम के हे उज्वल प्रतीक ! प्रेमियो के लिए मधुर प्रेरणा तुम, कवियो के घनतम आवेश ! तुम कलाकारो की भावुकता होओगे, और होओगे तस्करो के पू जीभूत लोभ !

उसी दिन रात्रि को भोजन के समय पत्नी ने आसफखाँ से कहा—"बानू के विवाह के लिये एक दिन कहते तो सही सम्राट् से। गभीरता पूर्वक न हो सकता, हँसी-हँसी मे ही कह डालते। सुनती हूँ, सम्राट् तुम्हारी बात बहुत मानने लगे हैं।"

"नही, साम्राज्य के अनेक प्रश्नो का उत्तरदायित्व है मेरे ऊपर, उनको छोड़कर मै कैसे अपने तुच्छ स्वार्थ को विशेषता दे सकता हूँ। तुम्ही चाहे जो करो।"

"मै क्या करूँ। मैं तो प्राय सभी प्रकार से प्रयास कर ही चुकी हूँ। लडकी पसद है हमारी महारानी को अत्यधिक। एक दिन कह डाली उन्होंने मुझसे अपने मन की बात। पर वह विवश है—स्त्री-जाति,

अतिम स्वीकृत दे नही सकती किसी प्रकार ।"

"फिर ?"

"सम्राट् से वचन लीजिए, यह आपका काम है । शीघ्र-से-शीघ्र नही, तो···"पत्नी ने सहसा तोड दिया वाक्य ।

"नही तो क्या ?"

"कही और निश्चित हो जायगा विवाह ।"

हो जाने दो । मेहेर भी चाहती है, उसकी कन्या का विवाह राजकुमार खुर्रम से हो । हो जाने दो उसी के साथ । मै बहन से प्रतिद्वद्विता का भाव नही रखना चाहता । बडी लज्जा की बात होगी यह, लोग क्या कहेगे !"

पत्नी को मुहँतोड उत्तर मिला । वह अपने अधर सीकर रह गई उस समय ।

मेहेर की वाक-चातुरी, स्नेह-सौजन्य, आदर-सत्कार और भाव-भक्ति पर रीझ उठा खुर्रम । वह नित्यप्रति मेहेर के प्रासाद मे जाकर उसके दर्शन करता, और अपनी प्रतिज्ञा को निभाता ।

वहाँ शेर अफगन की कन्या से अधिकाधिक परिचित होने की स्वतत्रता मिली राजकुमार खुर्रम को । वे दोनो परिणय के सूत्र मे होने जा रहे हैं, यह तथ्य अभी उन दोनो से छिपा कर ही रख दिया गया था ।

जब खुर्रम के आने का समय होता, मेहेर कन्या को नित्य नये वस्त्रो और अलकारो से सुसज्जित करती । राजकुमार के आदर-सत्कार के लिए भाँति-भाँति की शिक्षा देती । जब राजकुमार आता तो उनके भावो के मुक्त प्रवाह के लिये, बहुधा उन दोनो के लिए, एकात की रचना कर किसी बहाने से चल देती । छिपकर देखती-सुनती, उनकी बातचीत को प्रणय की दिशा की ओर उड़ते न समझकर चिंतित हो जाती ।

नारी बडे कौतूहल और आकर्षण की वस्तु नही थी खुर्रम के लिए

उस समय । केवल पिता और उस नवीना माता की इच्छा का मान कर देने के लिये वह नियम-पूर्वक वहाँ जाता था । साहस और पराक्रम के उद्योग उसे प्रिय थे । शस्त्रो की झकार और सेना के कोलाहल मे वह रस लेता था । रण, आक्रमण और विजय की गाथाओ तथा योजनाओ मे वह अधिक प्रसन्नता अनुभव करता था ।

अच्छी बडी आयु तक वह अनावश्यक विलास की ओर नही गया । मद-पान से दूर रहता था । कहते है, कई बार सम्राट् जहाँगीर ने उसे मद पीने के लिए कहा, पर उसने बडे साहस के साथ पिता की उस आज्ञा को टाल दिया ।

रूप एक वस्तु है, सज्जा दूसरी । मेहेर समझती थी शेर अफगन की कन्या रूपवती है । वह उसकी जो कुछ कमी थी, उसे सज्जा से परिपूर्ण कर देती थी । रूप और सज्जा इनके अतिरिक्त भी एक वस्तु है, उसका नाम है शैली—हाव भाव । वह सौदर्य की मूक भाषा है—रूप और सज्जा के प्राण ।

उस युवती कन्या मे इस अभिव्यक्ति का अभाव था । यह तो नही कहा जा सकता था कि युवक खुर्रम में सौदर्य की पिपासा नही थी । वह युवती ही अल्हड थी ।

मेहेर सोचती थी, उन दोनो का विवाह शीघ्र-से-शीघ्र हो जाना आवश्यक है । सम्राट् उसके अनुवर्त्ती ही ठहरे । खुर्रम की माता की स्वीकृति लेनी कठिन हो गई थी । मेहेर सोचती थी, यदि राजकुमार को मुट्ठी मे कर लिया जाता, तो सब काम बन जाता ।

खुर्रम की माता धीरे-धीरे इस बात को समझ गई कि मेहेर इस विवाह से आगरे के सिंहासनाधिकार पर भविष्य के लिए भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहती है । इसके अतिरिक्त उस कन्या के विरुद्ध कई प्रकार से उसके कान भर दिए गए थे । और जब से उसे यह विश्वास दिला दिया गया कि उसको मृगी आती है, तो वह सारे लोभ का सवरण कर सतर्क हो गई ।

वह कल्पना-हीन युवती कोई स्थान अधिकृत न कर सकी राजकुमार खुर्रम के मानस मे। उस दिन वे दोनो अकेले ही थे अत पुर के भीतरी उपवन मे। मेहेर किसी आवश्यक काम से अन्यत्र चली गई थी। कोई दासी भी नही थी वहाँ पर।

एक छोटे से सरोवर पर जडे हुए सगमरमर के चबूतरे पर, दोनो विराजमान थे। सरोवर के बीच मे स्थित एक फुहारा अपने आधार पर के कमलो और कमल-पत्रो पर मुक्ता-बिदु बरसा रहा था।

युवती सरोवर की पालतू मछलियो को चारा दे रही थी, और राजकुमार दिशाओ मे उठते हुए एक बढती घटा के गभीर घोष और बिजली की चमक पर खिचा हुआ मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था।

अचानक सरोवर के जल मे एक हाथ डुबोए युवती चिल्ला उठी—"राजकुमार !"

"क्या हुआ ?" खुर्रम ने उधर दृष्टि की—"क्या हुआ ? क्या किसी मछली ने उँगली काट ली ?"

"नही।" युवती ने बडी चिंता से राजकुमार को देखा।

"फिर ?"

"आपकी हीरे की अँगूठी गिर पडी जल मे !"

"नही। असभव ! मै एक ही अँगूठी पहने था, वह सुरक्षित है मेरी उँगली पर !"

"नही, आपके ही लिये दे रक्खी थी वह मुझे।"

"किसने ?"

"मैने स्वय रख रक्खी थी, आपको भेंट देने के लिये, उसे ढूँढ दीजिए।"

"भेट कैसी ?"

"कि आप मुझे भूले नही।"

राजकुमार स्मितानन पानी मे हाथ डालकर ढूँढने लगा—"कुछ नही मिलता।"

बहुत चिंतित होकर युवती बोली—"फिर क्या होगा ? मा असतुष्ट हो जायँगी राजकुमार !" उसने बडी कातरता का भाव दिखाया, और अत्यत असहायता के साथ अपने मस्तक का भार राजकुमार के कधे पर डाल दिया।

राजकुमार को उस पर दया आ गई। उन्होने उसे अपने दोनो हाथो से सँभालकर कहा—"मै ढूँढ देता हूँ, क्षणिक धीरज रक्खो।" राजकुमार धीरे-धीरे गहराई मे खोजकर भी कुछ न पा सका। उसने प्रवाह मे परिश्रम किया। ज्यो-ज्यो देर होती गई, त्यो त्यो उसकी निराशा बढती गई, और अत मे उसने हाथ धो लिए, और कहा—"नही मिलती !"

"नही मिलती ?" निराश आँखो से युवती ने प्रश्न किया।

"नही। मैने कण-कण छान दिया। जान पडता है, कोई मछली उसे मुह मे दबा भागी है। प्रवाह में तो कोई तीव्रता है नही। क्या चिंता है फिर भी। कसी थी वह ? उसी से मिलती-जुलती ला दूँगा मै तुम्हारे लिये।"

"नही राजकुमार, वह तो मुझे ही देनी ी आपको।"

"तो समझ लो, तुम दे चुकी वह मुझे। मै समझ लूँगा वह मेरे हाथ से ही गिर पडी जल मे। अपनी माता जी से कह देना कि मै खुर्रम को दे चुकी वह अँगूठी। वह यदि मुझसे पूछेगी, तो मैं हाँ कह दूँगा।"

युवती की आत्मतुष्टि न हुई—"नही राजकुमार !" वह स्वयं ढूँढने लगी जल मे।

'एक बात बताओगी ? सुदरि !" खुर्रम ने पूछा।

प्रशसा का ऐसा विशेषण कभी नही दिया था राजकुमार ने, सुदरी खिल उठी। अन्वेषण भूला गया। उसने हाथ खीच लिया जल और कमलो की नाल मे से। वह बोली—"क्या राजकुमार, क्या ?"

"क्या तुम्हे मृगी आती है ?"

सारे हर्ष पर कालिमा पुत गई, एक ही पल मे। युवती ने अप्रतिभ होकर जिज्ञासा की—"मृगी क्या हुई ?"

"मै भी नही जानता। सुनता हूँ, उसमे मनुष्य गिरकर अचेत हो जाता है।"

कुछ असतुष्ट होकर उसने तीव्र प्रतिवाद किया–"नही राजकुमार !"

मेहेर कदाचित् कही पर से सुन रही थी उनकी वातो को। तुरत गति से उपस्थित्त हो गई वहाँ पर। पूछा उसने—"कौन कहता है राजकुमार !"

कुछ हलका पडकर राजकुमार बोला—"कोई नही छोटी मा !"

"फिर कैसे पूछा तुमने ?" शासन के स्वर मे मेहेर ने कहा।

"मेरा अर्थ इनको मृगी आती है, इससे नही है। मृगी कैसी होती है, आप बता सकती हैं। एक रोग होता है न ?"

"मै ही क्या जानूँ। ··"

सहसा सम्राट् ने पदार्पण किया। उनकी बात टूट गई। सम्राट् ने कहा—"नूरजहाँ, आज मै जो समाचार लाया हूँ, उससे तुम अवश्य संतुष्ट होओगी।"

सबने स्थिर होकर सम्राट् की ओर दृष्टि की।

"पदवी के अनुरूप कार्य कर दिखाने को जो निरतर चेतना दे रही हो तुम मुझे वही।"

"क्या, कहिए तो सही।" हँसकर नूरजहाँ बोली।

"मेवाड ! मुगल-साम्राज्य की छाती पर पडे हुए एक व्रण की भाँति ! एक छोटा-सा राज्य !"

"फिर उसका जीतना क्यो ऐसी महत्ता की बात हो गई ?"

"मुगल-प्रभाव से मुक्त रहकर, वे कहते है, उन्होने अपने गौरव को प्रतापान्वित रक्खा है। पिता की वह एक अपूर्ण साधना है। उनके अनेक बार के विजय के असफल प्रयास अभी तक हमारे बल और प्रणाली का

उपहास करते हैं। मैने उस पर चढाई कर देने की योजना बनाई है।"

खुर्रम के अग-प्रत्यग मे बिजली दौड गई! वह आगे बढा, उसने छाती पर हाथ ठोककर कहा—"पिता, इस चढाई मे आपके इस पुत्र की परीक्षा होगी। बहुत दिनो से मेरे मन मे यह इच्छा है, मनुष्यो के समूह को अपनी आज्ञा मे बाँधकर ले चलूँ। इस आक्रमण का सेनापति मै बनूँगा।"

"हाँ, हाँ, तुम्ही बनोगे। यह तुम्हारे पिता के हर्ष की वस्तु है।"

"सेनापतित्व?" नूरजहाँ ने शका से उच्चारा।

"हाँ नूरजहाँ, राजकुमार के पूर्वजो ने जिस अवस्था मे रणकौशल दिखाया था, खुर्रम उसका अतिक्रमण कर चुका है।"

"नही, राजकुमार की रण-प्रगति में बाधा पहुचाना मुझे इष्ट नही। पर माता का हृदय ··" नूरजहाँ ने खुर्रम के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—"इसके अतिरिक्त मै राजकुमार से दोहरे सम्बन्ध मे आबद्ध हो रही हूँ।"

"दोहरा सम्बन्ध!" राजकुमार का माथा ठनका—"वह कैसा छोटी मा?"

मेहेर की कन्या को वहाँ से चुपचाप निष्क्रात होते हुए किसी ने भी नही देखा।

"इसे राजकुमार ." नूरजहाँ ने बेटी को लक्ष्य करने के लिये देखा उधर। उसका स्थान रिक्त था। उसने उसे पुकारा। वह नही आई, उसने उत्तर भी नही दिया। मन-ही-मन नूरजहाँ ने समझा—"निपट मूर्खा है यह।" उसने अभाव मे ही अपना वाक्य पूरा किया—"इस कन्या को तुम्हारे साथ परिणय-सूत्र मे ग्रथित कर देना चाहती हूँ राजकुमार!"

बडी उलझन मे फँसकर खुर्रम ने सम्राट् की ओर देखा।

"हाँ, हाँ, राजकुमार खुर्रम, मेरी भी ऐसी प्रबल इच्छा है। नूरजहाँ

से जो तुम्हारा काल्पनिक नाता है, वह अधिक स्वाभाविक होकर दृढ हो जावेगा। उस दृढता मे हमारे भविष्य का सुख और शाति निर्भर रहेगी।"

राजकुमार खुर्रम ने हँसकर बात टाल देनी चाही।

सम्राट् ने कहा—"गम्भीर होकर सुनो राजकुमार! नूरजहाँ की योग्यता धीरे-धीरे साम्राज्य के सूत्रो को अधिकृत कर रही है। याद रक्खो, उसे प्रसन्न करने पर ही तुम्हे युवराज-पद के लिये अधिक अवसर प्राप्त होगे।"

खुर्रम ने मन मे विचार किया—"भाग्य से यदि खुसरू और परवेज सिंहासन न पा सकेंगे, तो खुर्रम पावेगा ही। नूरजहाँ की प्रसन्नता, वह कोई वस्तु नही—एक स्त्रैण और विलासी सम्राट् की कल्पना! मै अपने बाहुबल से सिंहासन को प्राप्त करूँगा।"

"अधिक विचार की बात ही नही है यह।"

"फिर भी महाराज जीवन-मरण की सहचरी जिसे बनाना है, उसको ग्रहण करने को क्या इतनी शीघ्रता चाहिए। मुझे पूछना पडेगा।"

"किससे?"

"अपने हृदय से।" साहस-पूर्वक खुर्रम ने कहा।

"यह दूसरी अवज्ञा है तुम्हारी। पहली अवज्ञा तुमने उस दिन की, जब तुमने मेरे हाथ के दिए हुए रस-पात्र की उपेक्षा की, दूसरी बार यह होगी। खुसरू का उदाहरण स्मरण करो। अँधेरे कारागार मे नेत्र-हीन होकर किस प्रकार वह अपने दुखद जीवन के वर्ष टटोल रहा है। तुमने कभी आँखो मे आसू भरकर विचारा है, यह मेरा भाई है। खुर्रम, मैंने भी नही। मैंने तीन बार उसे क्षमा किया। फिर कहाँ तक? मैंने उसे जीता ही छोड दिया, यह मेरे मोह का प्रमाण है। न्याय का नही। सम्राट् के घर जन्म लेने से ही क्या हो जाता है, यदि उसकी प्रसन्नता पर वश न हो सका, तो?"

खुर्रम पर फिर भी कोई प्रभाव न पडा। उसने उसे पिता की मदिर

बहक समझा। उसने फिर अपने अट्टहास से उस गम्भीर वायु-मडल के टुकडे-टुकडे कर दिए। आम के पत्रो मे छिपा हुआ कोई पक्षी मधुर स्वर-सृजन कर रहा था। राजकुमार उधर खिच गया। वृक्षो की आड मे जाकर वह निष्क्रात हो गया।

सम्राट् भी हँसने लगे—"अभी बालक ही है यह नूरजहाँ, धैर्य रक्खो, फिर कभी एकात मे समझाऊँगा इसे।"

"मै नही मान सकती कि वह बालक ही हैं। इनकी अवज्ञा विचारणीय है।" नूरजहाँ बोली।

"सच पूछो, तो पत्नी के लिए पिता का अनुशासन कहाँ तक न्याय है! तुम्हारे सम्बन्ध मे ही जब विचारने लगता हूँ। सम्राट् अकबर की क्या आज्ञा थी और मेरी कैसी इच्छा!"

नूरजहाँ उदास हो रही थी।

सम्राट् ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे अन्तःपुर के मार्ग की ओर अग्रसर कराते हुए कहा—"क्या चिंता है। खुर्रम ही मेरा एक पुत्र नही है। यदि यह हमारा अनुवर्ती न होगा, तो शहरयार, मेरा सब से छोटा पुत्र, वह हमारी आज्ञा मान लेगा। उसके साथ तुम्हारी कन्या का विवाह होगा। और उसे ही हम युवराज-पद के लिए अधिक उपयुक्त समझेंगे।"

नूरजहाँ बडी जल्दी बात मे पैठ जाती थी। कई दिनो से वह समझने लगी थी, खुर्रम से विचार न मिलेगे। आज की घटना ने तो उसे राजकुमार की ओर से बिल्कुल ही विभक्त कर अलग कर दिया। सम्राट् की बात उसके मानस में गड गई।

नूरजहाँ का राज्य और उसके प्रबन्ध तथा नीति के भीतर पहुँचना भी खुर्रम को असह्य होने लगा था, बहुत दिनो से। एक स्त्री-जाति, वह भी उसकी माता से दरजे मे बहुत छोटी, राज्य के सूत्रो की ओर हाथ बढावे, इसे अपने और साम्राज्य के हित के लिए वह एक बुरी बात

समझने लगा। भीतर-ही-भीतर उसके द्वेष की आग भड़क रही थी। आज की घटना ने उसकी एक शिखा बाहर दिखा दी।

महारानी के साथ सगी बहन का नाता, यह भी न चला अधिक दिन। उसके, नूरजहाँ के कारण ही महारानी अनेक वर्षों से उपेक्षित और अनादृत होकर रह रही थी। नूरजहाँ की वे उदार चेष्टाएँ फल-दायक न हुई। नूरजहाँ की कन्या महारानी के मन को भी आकृष्ट न कर सकी। जब से उसने मन्त्री की कन्या को देखा, और उनका आग्रह पाया, उनका मन अर्जमंद बानू की ओर खिंच गया।

खुर्रम ने माता के समीप जाकर कहा—"मा, मैं आज अपने मस्तक पर का भारी बोझ फेंक आया हूँ।"

महारानी ने बिना कुछ समझे ही कहा—"कहाँ ?"

"छोटी मा के यहाँ।"

"क्या कह रहे हो तुम ?"

"खुर्रम के जीवन का मुक्त प्रवाह बँध जाता मा! वह मुझे सिंहासन का लालच दिखाती हैं। मानो, सिंहासन उनकी मुट्ठी में की वस्तु है। स्पष्ट ही उन्होंने आज मुझसे अपनी कन्या से विवाह कर लेने को कहा। चाहती तो थी वह कि प्रस्ताव मैं करता।"

"सम्मत न हुए तुम ?"

"नहीं, मैंने महाराज का का आग्रह भी उनके साथ ठुकरा दिया!"

"महाराज ने यदि इसे तुम्हारा दुराग्रह समझा तो, ?"

"नहीं समझेंगे। यह बिलकुल व्यक्तिगत बात है, राजनीति से इसका कोई संबध नहीं। निकट भविष्य में चित्तौड़ पर आक्रमण होनेवाला है। मैं उसमें पराक्रम दिखाकर चित्तौड़ ही नहीं सम्राट के हृदय पर भी अधि-कार कर लूँगा। विवाह मेरे मन की वस्तु है।"

"तुमने मंत्री की कन्या को देखा है ?"

खुर्रम कुछ सोचने लगा।

"अर्जमंद बानू को ?"

राजकुमार के मुख मे मीठी मुस्कान प्रकटी।

"तुम्हे रुचिकर है वह ? मै तो चाहती हूँ, उसका तुम्हारे साथ विवाह हो जाय।"

राजकुमार चला गया, पर महारानी उसके मन की बात समझ गई थी। महारानी को शेर अफगन की कन्या के साथ संबध जोडना किसी प्रकार इष्ट न था। वह समझती थी, पति नूरजहाँ के वश मे हैं, पुत्र पर भी उसके बधन पड जावेगे। उसने शीघ्र-से-शीघ्र आसफखाँ की पत्नी के पास राजकुमार के विवाह की स्वीकृति भेज दी।

अर्जमंद बानू की माता के हर्ष का ठिकाना न रहा, पर आसफखाँ विषण्ण मन हो गया। वह शुद्ध हृदय से चाहता था, राजकुमार खुर्रम के साथ शेर अफगन की कन्या का ही विवाह हो। वह नूरजहाँ की बात रखना चाहता था। वह अधीर हो उठा, जब उसने यह सुना। उसके द्वारा ही नूरजहाँ के हृदय को चोट पहुँचेगी, यह समझ-समझकर उसका मुख पीला पड गया। वह सोचने लगा, बहन के सामने जाकर कहूँगा क्या।

आसफखाँ ने अत्यत असतुष्ट होकर पत्नी से कहा—"तुम्हें मुझसे भी तो कहना था न। क्या कहूँगा मै बहन से।"

कहोगे क्या ? राजकुमार तैयार भी थे उससे विवाह करने को। उन्होने बहुत खुले शब्दो मे अस्वीकार कर दिया।"

कुछ आश्वासन पाकर आसफखाँ ने कहा—"फिर भी !"

"फिर भी क्या ? एक दिन जाकर उनके पास अपनी स्थिति स्पष्ट कर आओ। उन्हें तो फिर भी प्रसन्न होना चाहिए। अपनी लड़की न हुई, भाई की सही।"

कुछ दिन पश्चात् ही अर्जमंद बानू का विवाह राजकुमार खुर्रम के साथ सामारोह-पूर्वक सपन्न हो गया। नूरजहाँ और खुर्रम के बीच में

खाई गहरी और चौडी होने लगी। वह अब नूरजहाँ के अत पुर मे नही जाता। सम्राट् ने इस बातको कोई विशेषता नही दी। उनका स्नेह राजकुमार पर पूर्ववत् ही बना रहा।

शीघ्र ही राजकुमार शहरयार के साथ शेर अफ़गन की कन्या भी परिणीता हो गई।

---

[८]

साम्राज्य के एक सूत्र के बाद दूसरे सूत्र की ओर हाथ बढाती गई नूरजहाँ। राजकीय सिक्कों मे उसकी सज्ञा अकित होने लगी सम्राट् के साथ-साथ। राज्य के निर्माण और ध्वस मे उसका विचार धँसने लगा। संधि और विग्रह मे उसका हाथ रहने लगा। न्याय और नीति मे उसकी सम्मति विशेष अंग बनी। साम्राज्य के अनुशासन, आज्ञापत्रो मे उसके हस्ताक्षर प्रकाशित होने लगे। घोषणाओ मे उसका नाम प्रतिध्वनित होने लगा।

सम्राट् जहाँगीर उसके हाथों की कठपुतली बन गया। उसका भाई आसफखाँ उसका प्रधान सहायक हुआ। सुरापायी और विलासी सम्राट मुक्तभार होकर निश्चित हो गया। यही चाहता भी था वह। अनेक समस्याओ मे नूरजहाँ का सुलझाव युक्तियुक्त होता था। अनेक विवादों मे उसका निर्णय पक्षपात-विहीन रहता था। वह न्याय-परायण था। वह उदार-हृदया दानशीला थी। राज्य की सहस्रों अनाथ कन्याओ के विवाहो मे उसने मुक्तहस्त होकर व्यय किया था।

जहाँगीर के ये प्रसिद्ध भाव—"मुझे केवल मास-मदिरा चाहिए, साम्राज्य नूरजहाँ का है, वह सुश्री-पूर्ण हो या विश्री-युक्त!" इनमे कोई

अत्युक्ति न थी । सम्राट् बार-बार यह कहते थे कि राज्य-सचालन का भार उन्होने नूरजहाँ के योग्यतम हाथो मे सौपा है ।

चौतीस-पैंतीस वर्ष की अवस्था थी नूरजहाँ की, जब सम्राट् ने उसका पाणिग्रहण किया था । कहाँ तक वह रमणी अपने यौवन को, सौदर्य को सुरक्षित रख सकी होगी । केवल एक वेगवती मन की प्रवृत्ति ! अपनी-अपनी इच्छा, अपनी-अपनी सनक ! प्रथम दर्शन की स्मृति ने आलोकित कर* रक्खा था नूरजहाँ को, जहाँगीर ने बडी दृढता से सुरक्षित कर रक्खी थी वह स्मृति ।

सम्राट् मन-प्राण से वशीभूत हो गया नूरजहाँ का । उसने जहाँ जो परिवर्तन करना चाहा, किया । अत पुर के भीतर-बाहर, राजसभा मे, राजधानी मे जहाँ जिसकी नियुक्ति-वियुक्ति करनी चाही, की । जहाँ-जहाँ उसके मार्ग के काँटे थे, उसने खोद-खोदकर दूर कर दिए !-साम्राज्य नूरजहाँ का था और सम्राट् उसकी इच्छा मे वदी !

सम्राट् नूरजहाँ को लेकर चद्रिका मे सरिता-सरोवरो मे विहार करता । मृगया के लिये वन-पर्वतों में उसे साथ-साथ ले जाता । ग्रीष्म-ऋतु मे अवकाश निकालकर वह भारतवर्ष के हिम-किरीट, प्रकृति के नदन-कानन और धरातल की अमरावती का'श्मीर पहुँच जाता उसे लेकर । कही प्रासाद निर्मित होते और कही उपवनों की रचना । आज भी वे विहार-स्थल अपनी सदियों की काई लगी जीर्ण ई टो मे साक्षी होकर खडे है । अनेक प्राचीन आम के पेडो की ओर जनश्रुति अगुलि-निर्देश कर कहती है – "ये वृक्ष साम्राज्ञी नूरजहाँ के हाथो के लगाए हुए हैं ।"

सम्राट् का मद-पान छुडा देना नूरजहाँ अपना पवित्रतम कर्तव्य समझती थी । पर कुछ ही दिन बाद उसने निश्चय किया कि वह एक असंभव कल्पना है । फिर भी उसने उसे नियंत्रण मे रखा देना भी बहुत बडी बात समझी ।

एक दिन की घटना है, सम्राट् अपने विलास-कक्ष मे विराजमान थे। नूरजहाँ के सहसा कल्पनातीत प्रवेश पर सम्राट् चौक पडे। हीरो की जडी हुई एक स्वर्ण की डिबिया उनके हाथ मे नीचे फर्श पर गिर पडी। कदाचित् सम्राट् उसे खोल रहे या बद कर रहे थे।

नूरजहाँ ने वह डिबिया उठा ली। सशक हो उठी! सम्राट् की अत चारिणी होकर भी उसने उसे एक रहस्य से भरा हुआ पाया। पूछा उसने—"क्या है यह ? कही से नवीन भेट उपलब्ध हुई है क्या ?"

"लाओ, दे दो मुझे। औपधि है, खोलो नही।" आतुर होकर सम्राट् बोले।

परतु नूरजहाँ ने डिबया खोल दी थी। उसने सूँघा उसे सतोप-जनक गध न पाई उसमे। कुछ निकालकर छिपा ली उसने और डिबिया लौटा दी सम्राट को। पूछा उसने—"किस रोग की औषधि है यह ?"

"यह जो भूल-भूल जाता है मनुष्य, फिर-फिर उसका चिंतन क्षीण पड जाता है और निष्क्रिय होकर जगत् को झूठा समझने लगता है।"

"यह कौन रोग है ऐसा ?"

"रोग कहो या लक्षण, एक ही बात है दोनो। हमे मतलब है औषधि से वह लाभप्रद होनी चाहिए, और यह है। खुर्रम मे एक ही दोष है, मानता नही वह मेरी बात। तुम खिच उठी हो उससे। राज-कुमार ही से तो हो गया उस कन्या का विवाह।"

"क्या दोष है राजकुमार खुर्रम मे ?"

"यही प्रत्येक पल नाक-भौह संकुचित ही रखता है। अरे मै क्या, सारी प्रकृति कहती है, हँसने और प्रफुल्लित रहने ही के लिये जगत है, उसी का नाम जीवन है।"

नूरजहाँ ने सम्राट् से छिपाकर उस गोली को अपनी रेशमी ओढनी के एक छोर में बाँध लिया।

"आकाश के प्रत्येक तारिका-ग्रह, हरियाली पर का एक-एक पुष्प

और सागर की छोटी-से-छोटी तरग क्या मनुष्य को इसका स्मरण नही दिलाती। कभी-कभी जब समुद्र जड हो जाता है, तो पत्थर फेंककर उसमे लहरे उठानी भी पडती हैं। जाने दो, अभी वह यदि हमारा कहना नही मानता तो। समय आवेगा और उसे मानना पडेगा।"

"कदापि नही मानेंगे। उनसे तो अधिक शील-सपन्न मै राजकुमार खुसरू को समझती हूँ।"

"वैसे खुर्रम पराक्रमी है। शौर्य मे स्वाभाविक गति है उसकी। यद्यपि मैंने अभी उसे केवल आखेट के क्षेत्र मे देखा है, तथापि मै कह सकता हूँ कि वह रण के मैदान मे भी विजय प्राप्त करेगा। वह शूर ही नही, शूर-वीरो का जन्मजात नेता है। चित्तौड के आक्रमण का सेनापतित्व देना चाहता हूँ मै।" सम्राट् ने नूरजहाँ की ओर उसका अभिप्राय जानने को कहा और मन मे विचारा, वह अवश्य उसका प्रतिरोध कर राजकुमार शहरयार का नाम आगे रक्खेगी।

पर नूरजहाँ ने कहा—"दीजिए, ठीक है।" नूरजहाँ के मानस मे उस समय अपने देश के गौरव की उन्मत्त राजपूतो की नगी तलवारे चमक रही थी। उस चमक मे वह समझ रही थी खुर्रम कही खो तो न जायगा।

निकट ही एक ऊँचे स्थान पर चमक रहा हाकिंस का लाया हुआ घटा लटकता था। उस पर प्रतिफलित होती हुई ज्योति के एक फलक ने सम्राट् की दृष्टि खीच ली। कुछ स्मरण कर वह बोले—"हाकिंस—इग्लिशखाँ, अच्छा था वह जहाजी। दो-तीन वर्ष अच्छे कटे उसके साथ मेरे। प्रतिद्वद्वियो ने रहने न दिया उसे अधिक दिन। पढा-लिखा अधिक न था यद्यपि, तथापि नाना देशो की सैर कर रक्खी थी अच्छी। सुंदर, हँसमुख स्वभाव का, खूब पीता था मेरा मित्र!"

नूरजहाँ बोली—"ठडे देश का था, तब पीता था खूब! भारतवर्ष की जल-वायु में अहितकर है। वह।"

"क्या भारतवर्ष के वर्ष मे जाडे की ऋतु नही है ?"

नूरजहाँ चुप रही।

सम्राट् ने फिर कहा—"क्या ग्रीष्म के भी दिन के चक्र मे सारा वर्ष अपनी ऋतुओ के साथ घूम नही जाता। मेरे मद-पान पर रक्खा गया तुम्हारा यह कोमल हाथ बडा कठिन हो गया है। तुमने अपना ही दबाव नही बरता, तुमने और तुम्हारे भाई ने हकीम साहब को भी सिखा दिया। वह कहने लगे हैं, पाँच बार से अधिक पीना अत्यत हानिकारक है मेरे लिये। इस प्रकार भयभीत कर दिया मुझे उन्होने।"

नूरजहाँ ने ओढनी की गाठ मे बँधी हुई वह गोली टटोली।

"इस घटे का कोई उपयोग न सूझा अभी तक नूरजहाँ! तुम्हारी कल्पना भी न धँस सकी अधिक गहराई तक। निष्काम ही यहाँ पर फासी मे सा लटका हुआ यह, कोई सज्जा नही देता मेरे कक्ष को। केवल कभी-कभी नशे की अत्यत गभीरता मे मै इसकी रस्सी खीचकर बजाता हूँ, तब इग्लिशखाँ खडा दिखाई देता है मुझे। ह-ह-ह-ह!" सम्राट् उच्च स्वर से हँसने लगे।

"क्या हँसी आ गई महाराज को ?"

"मुल्ला और पडितो ने मुझसे कहा, शराब हिंदू और मुसलमान दोनो धर्मो मे दूषित ठहराई गई है। एक दिन मैने इग्लिशखाँ से पूछा, क्यो मित्र, तुम्हारा धर्म क्या कहता है। वह बोला, नही हमारे धर्म मे कोई बधन नही इसके लिये। मैने उत्तर दिया, ठीक है। मै सुरापान के समय ईसाई-धर्म का प्रतिपादन करूँगा। ऐसे ही टुकडे जोडकर तो मनुष्य का निर्माण हुआ है। वह जो कई रग के कपडो के टुकडे जोडकर तुमने आसन बनाया है, कितना मोहक लगता है। रस रगो के सतुलन मे है और सतुलन यह एक जगाई और बढाई गई भावना है। यह समस्त सृष्टि! केवल रगो की चिनगारियो के फलक! नूरजहाँ, सतुलन मे हैं! इसी से इतने मधुर और अभेद्य हैं।"

"ऐसे ही महाराज जैसे आपकी वाक्यावलि !" नूरजहाँ ने व्यग्य का प्रयोग किया ।"

"नूरजहाँ ! सचमुच !" सम्राट् ने नूरजहाँ का हाथ पकडते हुए कहा—'क्या मै नशे की बहक मे हूँ ?"

हँसते और हाथ छुडाते हुए नूरजहाँ बोली—"मै नही जानती !"

"परतु नूर ! इसे बहक किसी प्रकार नही कहा जा सकता । केवल एक कल्पना ! यह समस्त विश्व को ढकने वाली सुख और दु ख की दोरगी चादर, इसका ताना-बाना दोनो सूक्ष्म हैं । सूक्ष्मता ही तो जब एक के बाद दूसरी इंद्रिय से अतीत हो जाती है, तब केवल विचार ही मे रहने लगती है ।"

सम्राट् के तत्त्व-दर्शन से ऊब उठी मेहेर । बडी खिन्नता के गुणक चिह्न खीचे नूरजहाँ ने अपने मुखचद मे ।

जहाँगीर ने सोचा, कल्पना के धरातल से उतरकर लौकिकता मे आना चाहिए । पूछा उसने—"नही सोचा फिर तुमने कोई उपयोग इस घटे का ?"

नूरजहाँ के मन मे अनेक घटे बजने लगे थे पल-पल मे इधर । और सबसे भयकर घोष था उस घटे का, जिसे वह राजकुमार खुर्रम के हाथ से समझती थी । आशा मे थी खुर्रम को जामाता बनाकर वह सौत-महारानी के साथ के अपने सबधो को उजला कर लेगी, पर उसने उसके सहोदर भाई के नाते मे भी धीरे-धीरे विष घोल देना आरभ कर दिया ।

दासी ने आकर श्रीमान् आसफखाँ का प्रवेश प्रकट किया । वह दूसरे दिन मेवाड पर प्रबल आक्रमण करने का प्रबध कर आए थे । राजकुमार खुर्रम के अधिनायकत्व मे बडी विशाल सेना कूच करने वाली थी । आसफ़खाँ महाराज को सूचित करने और कोई विशेष आदेश लेने आए थे ।

महाराज ने उनकी बाते सुनकर कहा—"नूरजहाँ, तुम भी प्रसन्न

मन से बिदा दो। वह कोई अन्य थोड़े है। उसका उत्साह बढ़ाओ। जीवन के इस प्रथम पराक्रम मे यदि वह सफल होकर आ गया, तो वह हमारे पितरो के कलक को ही नही धोवेगा, प्रत्युत अपने लिये एक महान् और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करेगा।"

नूरजहाँ सोच रही थी, कही खुर्रम की यह विजय उसके जमाता शहरयार के उत्तराधिकार मे रोडे तो न रक्खेगी। पर भाई की उपस्थिति से उसने अपने वाक्य को दूसरा मार्ग दिया—"हाँ, हाँ, मै चाहती हूँ, वह विजयी होकर लौटे।"

"यही तुम्हारे योग्य बात है। तुम्हारा आशीर्वाद पाकर विजयी होकर ही आवेगा।" सम्राट् ने कहा।

नूरजहाँ की भावना पलटी। बड़ी चिता दिखाकर कहा—"पर सुनती हूँ, जातीय गौरव की रक्षा के लिये ये उन्मत्त राजपूत अपने प्राणो की बलि दे देना एक खेल समझते है। कट जाना और काट देना उनके लिये कोई बात ही नही है। ऐसे नर-सहार के बीच मे, युद्ध के अनुभव से विहीन उस राजकुमार को भेज देना मै नही जानती कहाँ तक ठीक है। उनकी माता ने आज्ञा दी है?"

"नही।" सम्राट् ने कहा।

"कारण?"

"कदाचित् वह मृत्यु का भय नही, रक्त का सबध है।"

आसफखाँ हँसने लगे।

"और अर्जमद बानू ने?" नूरजहाँ ने पूछा।

"हाँ, वह युद्ध के ही पक्ष मे है।" आसफखाँ ने कहा।

"फिर मुझसे क्या पूछना है।" नूरजहाँ बोली।

"कोई बात नही है। राजकुमार कवच और अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित रहेगे और उनके साथ अनेक शरीर-रक्षक रहेगे। भय कुछ भी नही है नूरजहाँ।" सम्राट् बोले।

"न होगा !" उदास मुद्रा मे नूरजहाँ बोली ।

"धरती और धरती पर के भोग विजेता के लिये उपजे हैं, और विजेता को कौन अत पुर मे घेरकर रख सकता है ? जहाँगीर को कापुरुष न समझा जाय । उसे प्रत्येक पल सुई को भाँति चुभता है । कारण, वह पदवी जो उसने धारण कर रक्खी है ' वह जानता है, पदवी का भी वही मूल्य है, जो प्रतिज्ञा का है । पर क्या करे, वह कुछ कठिनाइयो मे घिर गया है । निकलता जा रहा है उनमे से धीरे-धीरे । आशावादी है वह, और विश्वास को जगत की साँस समझता है । स्मरण है उसे अपने प्रपितामह की की गई प्रतिज्ञा !" सम्राट् ने प्रवाहित होकर कहा ।

"कैसी प्रतिज्ञा ?" नूरजहाँ ने जिज्ञासा की ।

जब उन्होने सुराही का बहिष्कार और प्यालों को असबद्ध कर दिया था ।" सम्राट् बोले ।

नूरजहाँ अत्यत प्रसन्न हो उठी । वह समझी, कदाचित् सम्राट् शराब छोड देने की बात कह रहे है ।

सम्राट् उसका भाव समझ गए । उन्होने हाथो के सकेत से उसे रुक जाने की चेतना दी—"पर पहले भीतर से नूरजहाँ ! धीरे-धीरे, रिक्त कर रहा हूँ मैं स्थान । जब विचार ही मे सुरा न रहेगी, तो फिर इस कक्ष मे की यह खुली हुई सुराही विचारी कर क्या सकेगी । भीतर से आरभ कर ही उत्सर्ग परिपूर्ण होता है, वही चिरतन होकर सत्य मे परिणत होता है । पर धीरे-धीरे कि सहसा की गई प्रतिज्ञा कही टूट न जाय ।"

"धीरज एक सीमा के पश्चात् दीर्घसूत्रता मे बदल जाता है, दृढ निश्चय एक ही क्षण की वस्तु है । आपके प्रपितामह एक ही क्षण में प्रतिज्ञावान् हुए, उन्होने उसे सच्चाई क साथ निभाया और लोक मे एक उज्ज्वल उदाहरण छोड गए !"

"आवेगा ऐसा ही समय आवेगा । सारे भारतवर्ष की राजकीय

एकता, पिता की वह खडित साधना, उत्तराधिकार मे मिली है मुझे ध्यान है मुझे उसका। इस दर्प-भरे मेवाड को विध्व त हो जाने दो। चाहता तो नही हूँ मै ध्वस, पर एक सकीर्णता की घाटी मे पली हुई हठी जाति, उसके क्षुद्र दुर्ग को चूर-चूर कर व्यापकता मे मिला देना होगा। मुगल शासन के बीच मे यह अनत-मस्तक मेवाड, एक मरुस्थल-सा है। मै उसमे अपने शासन का लौह अकुश रोपकर उसे पल्लवित कर दूँगा और तब फिर आगे बढूँगा। समस्त भारत मे एकछत्र छाया करूँगा और एक सिक्का चलाऊँगा। जिस दिन इसके लिये कमर बाँधूँगा, उसी दिन सुराहियो का मुख खोलकर उन्हे औधा दूँगा।"

आसफखाँ भी समझने लगे, सम्राट् रस के ज्वार मे है। कुछ देर ऐसी ही बातो के बाद उन्होने फिर चित्तौड की चढाई का प्रकरण छेडा। कुछ समय उसी की चर्चा मे बिताकर उन्होने सम्राट् से जाने की आज्ञा मागी।

नूरजहाँ भाई को भीतरी प्राँगण तक पहुँचाने गई। मार्ग मे उसने चादर का छोर खोलकर वह औषधि आसफखाँ को देकर पूछा—"क्या है यह ?"

आसफखाँ ने उसे लेकर सूँघा। भले प्रकार देखा। फिर सूँघा। तिल-भर उसमे से तोडकर जीभ पर रक्खा, स्वाद ज्ञातकर थूक दिया। हँसकर उन्होने कहा—"कहाँ से लाई हो ?"

"पडा मिला इतना टुकडा, क्या है यह बताओ न।"

"अफीम जान पडती है, गिर पडी होगी किसी खोजे या दासी की डिबिया मे से। फेक दो।" आसफखाँ ने फेंक दिया वह टुकडा एक नाली मे।

नूरजहाँ ने मुख की विषण्णता पर एक कल्पित हास्य प्रकट किया और भाई को बिदा दी। उसने फिर उदास होकर सम्राट् के कक्ष मे प्रवेश किया। वहाँ आकर जो कुछ देखा उसने, वह स्तभित खड़ी रह गई।

सम्राट् एक विशाल दर्पण के सामने बालक की भाँति उच्च स्वर मे रुदन कर रहे थे। अग पर के रत्नाभूषण उतार-उतार कर भूमि पर बिखरा रखे थे। वस्त्र फाड-फाड कर चीथडे बना दिए थे। आकाश की ओर हाथ उठाकर कह रहे थे—"हे सारे ससार के स्वामी ! इस नीच और पापी सम्राट् को क्षमा ! यह कदापि इतने बडे साम्राज्य का भार उठा सकने योग्य न था, तुमने क्यो दिया उसे यह असम और विषम भार !"

नूरजहाँ की समझ मे कुछ न आया। उसने सम्राट् की ऐसी दशा आज ही देखी थी। उसने विचारा कदाचित् यह नशे की कोई पराकाष्ठा है। मस्तिष्क की विकृति हो सकती है, मद के कुप्रभाव से। एक दासी के मुख से कुछ ऐसा ही सुना था उसने। डरती-डरती वह महाराज के समीप गई—"क्या हो गया सम्राट् !"

"नूरजहाँ ! तुम कहाँ चली गई थी मुझे छोडकर ? ये सब आभूषण बटोरकर, बाँधकर रख दो, उसके घर भेज देने होंगे।"

नूरजहाँ समझी किसी साधू का नाम लेगे। साधु-सतो मे से यदि किसी ने अपना रग जमा लिया सम्राट पर तो वह उसे रत्न आदि के उपहार से लाद देते थे। उसने पूछा—"किसके घर ?"

"इकराम खोजे के घर। मैने समझा उसने चोरी की और उसके ऊपर वह झूठ बोला।"

"कौन इकराम खोजा ?"

"उसकी हड्डी-पसलियो का जब एक-एक टुकडा मास और रक्त मे सना हुआ आकाश मे बिखर रहा था, और गिद्ध उसे धरती पर नही गिरने दे रहे थे, तब वह दृश्य देख-देख कर मै आनन्द मे मग्न हो रहा था। मै नही जानता, यह ऐसी जघन्य प्रवृत्ति क्यो हो गई मेरी ! रस का ऐसा भयकर उद्गम !" सम्राट् फिर रुदन करने लगे।

"भारत के सम्राट् को ऐसे कातर होकर रोते हुए सेवक-सेविकाएँ

सुनेगे, तो क्या कहेगे महाराज !"

"उन्हे सुनना चाहिए। इकराम खोजे के अग-अग के टुकडे उडाकर मैने अट्टहास्य किया था, उन्होने उसे सुना था। वे इसे भी सुने।"

नूरजहाँ अफीम का प्रकरण लेकर सम्राट् को ताडित करने आई थी, उनकी यह दशा देखकर उसकी करुणा उमड पड़ी और वह उस बात को भूल ही गई।

सम्राट् ने वह हीरक-जडित स्वर्ण की डिबिया निकाली—"नूरजहाँ ! यह डिबिया हो शत्रु हो गई !" वह फिर रोने लगे।

नूरजहाँ फिर उसी डिबिया को सम्राट् के हाथो मे पाकर आश्चर्य मे आ गई। मन मे बोली—"यह रोना स्वाभाविकता नही है। एक रोग ही जान पडता है। एक नशे के ऊपर दूसरा नशा !"

सम्राट् कुछ स्वस्थ होकर फिर कहने लगे—"उस दिन मैने समझा, यह डिबिया खो उई। इकराम खोजा ही था तब यहाँ अकेला। मैने उसी पर शकित होकर चोरी लगाई। बडी वीरता से उसने मेरे आरोप का खडन किया। एक और अशिष्टता का अपराध मैने उसके माथे पर मढा। मै भयकर रोष मे आ गया, और मैने उसी समय उसे हाथ-पैर बाँधकर एक उन्मत्त हाथी के पैरो के नीचे डाल दिये जाने की आज्ञा दी।"

"यह मद कि जड़ता है सम्राट् ! इसी से नित्य इसके त्याग के लिए मै आपसे प्रार्थना कर रही हूँ।"

सम्राट् अपनी बात पूरी कर रहे थे—"और डिबिया मै एक सदरी के खीसे मे रखकर बिलकुल भूल गया। यह उतारकर रख दी गई थी, और बहुत दिनो तक इसे पहनने का न अवसर आया, न इच्छा ही हुई। अभी हाल ही मे जब यह मिली, तो सारी स्मृति जाग उठी। एक बिच्छू के दश-सी यह चुभ रही है नूर ! किसी प्रकार दबाता-छिपाता चला आ रहा था, इस समय बाँध टूट पडा !"

नूरजहाँ ने भूमि पर छितराए गए अलकार एकत्र कर लिए थे,

उसने उनको लेकर कहा—"वस्त्र बदल लीजिए महाराज, अलकार पहन लीजिए, बडा अशोभन दिखाई दे रहा है।"

"नही नूर, ये सब अलङ्कार उसी खोजे के किसी निकट सबधी को देने पडेगे। उसकी हड्डियाँ भी छिन्न-भिन्न कर दी जायँगी, और वे एक समाधि के नीचे न जुडी होगी।" सम्राट् विक्षिप्त की भाति विरस और विश्री होकर उस कक्ष मे दौडने लगे।

नूरजहाँ को कुछ समझ ही न पडा कि वह क्या करे। उसने द्वार बन्द कर दिये थे। दासियाँ द्वार के निकट आ-आकर लौट रही थी।

"कौन कहता है, मै न्यायी हूँ। सब ढकोसला है, ढोग है। मेरे कर्मचारी सब घूस खा-खाकर साँच पर झूठ और झूठ पर साँच का मुलम्मा चढाते है। ये किसी दड और भय से नियमित नही हो सकते। वेतन बढा देने से भी फिर इन्हे कम पड जाता है। केवल एक भगवान्, ये उसके आयत लोचनो से ही ढीले पडते है। नूरजहाँ, मेरी प्रजा का सबसे निर्धन वर्ग, वही सबसे अधिक दलित और पिसा हुआ है। उसी पर भार है, और उसे ही मेरे पास तक आने मे अनेक रुद्ध द्वार बाधक हैं। यदि वे मुझ से न्याय नही पा सकते, तो मेरा ही दोष है। मै उनका न्याय करूँगा नूरजहाँ!" नूरजहाँ की ओर देखकर महाराज ने फिर उसी इग्लिशखाँ के घटे पर दृष्टि गडाई।

"आप उनका भी न्याय कीजिए सम्राट्, वे आपके जयघोष को विस्तार देगे, पर क्या ऐसे छिन्न वेश मे!"

"लाओ मेरे लिए सुन्दर नवीन वस्त्र लाओ, इन अलङ्कारो को भी लाओ, अभी पहन लूँगा, पर तुम्हे स्मरण रखना होगा. ये दूसरे की वस्तु हैं।"

नूरजहाँ ने बडी प्रसन्नता-पूर्वक अपने हाथो से सम्राट् को वस्त्रालङ्कारो मे सुसज्जित किया।

सम्राट स्वस्थ हुए। धीरे-धीरे नूरजहाँ की बातो मे अपने भावा-

तिरेक को भूलकर व्यावहारिक दशा मे आए—"नूरजहाँ, इस घटे को मै अपने शयन-कक्ष मे लटका दूँगा। इसको खीचकर बजाने वाले रस्से का सिरा बाहर रहेगा, सिहद्वार के बाहर ताकि मेरी दीन-दुखी प्रजा जब चाहे, तब इसे खीच कर मुझे जगा सके!"

सुनने मे बडी मधुर थी यह वाक्यावलि। नूरजहाँ सोचने लगी—"क्या सम्भव है यह ?"

"स्थिर ही रह गई नूरजहाँ! क्या प्रयोग मे न आ सकेगा यह? धीरे-धीरे आ सकेगा। यही राजा का महान् कर्तव्य है। स्वामी भी है वह प्रजा का और सेवक भी। इसे पूरा करने मे सहायिका होओ सुन्दरि! हम आपस मे बॉट लेगे इस भार को, यह हलका पड जायगा। और, यह मेरी विलासिता के सारे कलङ्क को धो डालेगा। सभव है यह।"

"सभव कैसे है यह महाराज! इतना बडा साम्राज्य है आपका। रस्से के सिरे पर तो आठो पहर भारी भीड लग जायगी, और घटे पर की लगातार चोटो के रव मे हमारा विश्राम नष्ट हो जायगा। विश्राम ही न मिलेगा, तो कैसे स्वस्थ रह सकेंगे। मन मे चैन ही न होगा, तो क्या न्याय सूझेगा। प्रत्येक बात के लिए समय है महाराज, यह सबसे बडा नियामक है। घटा बजाने का समय नियुक्त करना पडेगा। दिन-रात आठो प्रहर, यह एक हास्यप्रद बात हो जायगी। फिर न्याय की दुहाई भी तो निर्धारित करनी पडेगी। प्रतिबध रखने पड़ेगे ही। न्याय और शाति के लिए काजी और कोतवाल तो हैं ही।"

"नही, मै निरीह और असहाय प्रजा तक पहुँच जाना चाहता हूँ। उन पर अन्याय है, मै जानता हूँ। तुम कैसे प्रतिबन्ध की बात कहती हो ?"

"राज्य के कर्मचारियो को अपना काम करने दीजिए। यदि सभी कुछ सम्राट् के वश की बात होती, तो इतने नौकर-चाकर रक्खे

क्यो जाते ।"

"फिर क्या हो ?"

"प्रजा के दर्शन के लिये जब आप विराजमान होते हैं, वह समय रखिए घटा बजाने का, और केवल वे ही लोग घटे की रस्सी खीच सकेगे, जिन्हे आपके प्रधान कर्मचारियो के विरुद्ध कुछ कहना होगा। छोटे कर्मचारियों के अन्याय का शोधन बडे कर्मचारी करेगे, और बडे कर्मचारियों के पक्षपात की विवेचना करेगे आप ।"

"ठीक है नूरजहाँ !"

"इस घटे से आपके प्रधान-प्रधान न्यायकर्तागण सदैव सतर्क रहेगे। उन्हे आपका भय बना रहेगा, और अपनी प्रतिष्ठा एवं नौकरी को बनाए रखने के कारण वे सदा न्याय ही करेगे ।"

नियत समय पर राजकुमार खुर्रम ने मेवाड के विजय की प्रतिज्ञा कर रण-यात्रा के लिये प्रस्थान किया । उसे बहुत बडी सेना का पतित्व दिया गया ।

तीन बार आक्रमणकारियो का विध्वंस सहन कर मेवाड की राजधानी चित्तौड उजाड कर दी गई थी । महाराणा प्रतापसिह ने उदयपुर बसाया, और वनो मे भयकर कष्ट सहन कर जातीय गौरव की रक्षा की । उनके पश्चात उनके पुत्र अमरसिह उदयपुर के महाराणा थे। राजकुमार खुर्रम की प्रबल शक्ति का सामना करने के लिये महाराणा अमरसिंह प्राण-पण से सचेष्ट हो गए ।

सम्राट् के शयन-कक्ष मे वह घटा लटका । बाहर राजमार्ग पर, धूप और वर्षा से सुरक्षित एक मंडप मे उसकी रस्सी का मुक्त सिरा रख दिया गया । फारसी-अक्षरो मे सगमरमर पर निम्न-लिखित सूचना अंकित कर सर्व-साधारण के लिये जड दी गई—"जहाँगीर की प्रजा का कोई भी व्यक्ति, जिसे काजियो के न्याय से सतोष न हुआ हो, यहाँ आकर इस रस्सी को खीच सम्राट् का आह्वान कर सकता है । उसे पक्षपात-विहीन

न्याय मिलेगा।" इसी आशय की राजाज्ञा समस्त प्रातो के सूबेदारो के पास भेज दी गई कि वे ढिढोरा पीटकर सम्राट् की सारी प्रजा के कानो तक इस सदेश को पहुँचा दे।

यह घोषणा काजियो के लिये खुली चुनौती थी। उनमे से अनेक, जो न्याय को एक सौदा समझकर बैठे हुए थे, मन-ही-मन इंग्लिशखाँ को बुरा-भला कहते। वे लोग इसके प्रतिकार के लिये छिपे-छिपे अनेक प्रकार के भ्रम प्रजा मे फैलाने लगे।

(धरती को खोदकर उससे जीविका उपजाने वाला सबसे अधिक निर्धन है, वही निरक्षर भी है। वह सरदी-गरमी, आँधी-ओले, अवृष्टि-बहुवृष्टि, अनाहार-अवसन, जीर्णता-मलिनता, जडता अधविश्वासो मे घिरा हुआ प्राणी सहज ही अन्याय और अत्याचार का शिकार हो जाता है। अज्ञता उसका अभिशाप, सतोष उसकी दुर्बलता, मौन उसका कलक, सहनशीलता उसका रोग और सरलता उसकी मृत्यु है।)

प्रजा को लूटने और खसोटने वालो ने अपढ जनता के बीच में उस न्याय के घटे के सबध में अनेक भ्रम विकसा दिए। कही यह बात फैला दी गई कि रस्सी खीचने से पहले एक दहकते हुए अग्नि-कुड के बीच मे होकर जाना पडता है। कही यह कि यदि सम्राट् के सामने एक भी झूठी बात मुँह से निकल गई, तो उसी समय वादी का सिर धड से अलग कर दिया जाता है, या उसे शेरो अथवा अजगरो के पिंजरे मे बद कर देते हैं।

निकटतम सपर्क का राजकर्मचारी या न्यायाधीश, उससे कौन झगडा लेना चाहता। झगडा लेकर फिर कितने दिन तक बचा जा सकता। उनके विरुद्ध राजा के पास तक अभियोग ले जाना, इसकी कल्पना भी न कर सका कोई। राजधानी से दूर के प्रात-वासियो को मार्ग के तस्कर-चोर, श्रम-व्यय भी तो एक बडी बाधा थी। राजभवन के न्याय के घटे की रस्सी खीचने का किसी को साहस न हुआ, किसी को न सूझा।

घटे की स्थापना के रूप मे कुछ प्रतिक्रिया हुई अवश्य । सम्राट् का भय कुछ अधिक फैला, और न्याय की तुला स्वाभाविकता से सतुलित हुई कुछ दिन । परतु फिर उसी बहुत दिन की अभ्यस्त और गहरी लीक मे धँसने लगे गाडी के चक्र !

सम्राट् ने एक दिन, जब वह शयन-कक्ष मे थे, नूरजहाँ से कहा—"नूर ! इतने दिन हो गए इस घटे को स्थापित किए । यह एक बार भी नही बजा ! क्या कारण है ? क्या मेरे राज्य के कोने-कोने मे न्याय की पवित्र भावना फैल गई ? या पाप कम हो गए ? कर्मचारियो ने घूस लेना बद कर दिया, और आततायियो ने सद्वृत्ति ग्रहण कर ली ?"

नूरजहा हँसकर बोली—"कदाचित् प्रजा सम्राट को कष्ट देना नही चाहती !"

"कुछ सभासदो ने मुझसे कहा है, घटे का हिलाना कुफ्र समझकर कोई रस्सी नही खीचता । परतु मेरी प्रजा अधिकाँश मे हिंदू है । अभियोग लेकर मेरी ओर आने वालो को क्या कोई पदाधिकारी मार्ग मे ही डरा-धमकाकर लौटा तो नही देते ?"

"गुप्तचर नियुक्त कीजिए ।"

"करने पडेगे ।"

अचानक घटा बज उठा ! इस नवीन नियुक्ति मे पहली बार ! सम्राट् उत्साहित और स्थिर होकर बैठे—'परतु यह घटा बजने का समय तो नही है । कुछ भी हो, मैं इसका विचार न करूँगा, और उस न्याय के भिखारी की बात मनोयोग से सुनूँगा । वह बडी प्रतीक्षा के बाद आया है । नूर ! यही रहो, तुम भी । अवश्य ही यह अभियोग तुम्हारे भी सुनने योग्य होगा, और इसमे तुम्हारी बुद्धि भी अपेक्षित है ।"

सम्राट् ने दासी को बुलाया और कहा—"जाओ, देखो, देखो रस्सी के सिरे पर कौन है । उसे ले आओ यही ।"

दासी कुछ ही देर बाद लौट आई । बोली—"कोई भी नही है

महाराज !"

आश्चर्य के साथ सम्राट् उठे—"कोई नहीं है ! प्रहरियो से नही पूछा ?"

"पूछा, वे भी नही जानते, घटा किसने बजाया।"

"नूर ?"

हँसती और पलको पर आती पलको को उँगलियों से कान के पीछे खोसती हुई नूर बोली—"मै क्या जानू सम्राट् किसने बजाया !"

"तुमने भी तो स्पष्ट सुना था न ?'

"हाँ महाराज !"

"एक मनुष्य भ्रम मे पड सकता है। विचारो की तल्लीनता मे कभी-कभी उसके कान बज उठते है। दो व्यक्ति एक ही भ्रम मे नही पडते।" सम्राट् आसन छोडकर उठे। घटा बजानेवाले का अनुसधान करने के लिये स्वय बाहर गये।

बाहर जाकर नौकर-चाकरो से पूछ-ताछ की। कुछ पता न चला। नौकर-चाकरो को असावधानी के लिये डाट फटकारकर सम्राट् ने उनसे कहा—"यदि भविष्य मे फिर यही भूल हुई, तो याद रखना, सिंहद्वार से लेकर अत पुर के प्रवेश तक के समस्त प्रहरियो को एक साथ ही सूली पर लटका कर राजमार्ग मे प्रदर्शन और पक्षियो के नोचने को छोड दूँगा। स्मरण रखना, अफीम खा-खा कर यहा पर ऊँघने को नही हो तुम।"

सम्राट् ने भीतर आकर कहा—"कुछ पता नही चला।"

"घटा तो बजा महाराज ! अत्यत स्पष्ट और मधुर ध्वनि, तीन बार !" नूरजहाँ बोली।

"यदि प्रहरीगण सच्चे हैं, तो यह घटा हमारे लिये एक गहन रहस्य बन जाता है। नूर, क्या तुम सूक्ष्म शरीरो मे विश्वास रखती हो ?"

"क्या हुआ सूक्ष्म शरीर ?"

"यही जिन-परि, भूत-प्रेतो का अस्तित्व ?"

"होते ही होंगे।"

"प्रत्यक्ष भी पाया कभी ?"

"नही।"

"जब तक इस घटा बजानेवाले का पता नहीं चलता, हमे समझना होगा, उसे किसी भूत ने ही हिलाया। सभव नही हो सकता क्या, कोई आत्मा मेरे किसी कर्मचारी से पीडित होकर मुझसे न्याय माँगती है? एक प्रहरी विशेषतया घटे की रस्सी पर ही दृष्टि रखने के लिए नियुक्त करना पडेगा, और अभी राजधानी मे ढिढोरा पीटकर एक बार फिर खोजना उचित है कि घटा किसने बजाया?"

नूरजहाँ का मन घटा बजानेवाले से अधिक ठहर गया था भूत-प्रेतो की सभावना पर। उसने पूछा—"महाराज! कहते है, जैसे बालको को डराने को हाऊ की कल्पना की गई है, ऐसे ही भूत-प्रेतो का अस्तित्व आयु-प्राप्त लोगो की ताडना है। आने देखे हैं कभी?

देखे तो नही है। कहानियाँ बहुत सुनी ऐसे लोगो से है, जिनके अनुभव को झूठा नही कहा जा सकता।"

"कहते है, ये अपढ और असभ्य लोगो के विश्वास है।"

"वे प्रकृति के अधिक ससर्ग में रहते हैं, और प्रकृति उनसे अधिक परदा नही करती। केवल भाषा ही नही है सत्य तक पहुँचने का माध्यम। फिर मैंने अनेक विद्वान्, साधु-सत, कवि और कलाकारो से इस सबध मे बाते की हैं। उन्होने भूत-प्रेतो के जगत् को सिद्ध किया है। एक विशिष्ट आयु और विद्या के मनुष्य इसमे सदेह करते हे।"

"क्या मनुष्य भी भूत बन जाता है?"

"हाँ।"

"सभी नही बनते?"

जीवितावस्था की अतृप्त वासनाएँ जब अचनक मृत्यु से उच्छिन्न

हो जाती हैं, उनकी परिपूर्णता तक मनुष्य प्रेतलोक मे निवास करता है। कुछ भूतवादियो की ऐसी धारणा है।"

नूरजहाँ को शेर अफगन का स्मरण हुआ। वह समझने लगी कि वह अचानक मृत्यु को प्राप्त हुए है। उसने पूछा—"रण मे मृत्यु को प्राप्त हुआ मनुष्य क्या भूत हो सकता है ?

"मैं नही कह सकता नूरजहाँ !"

नूरजहाँ बडे गहरे विचार में पड गई। वह सोचने लगी—"शेर अफगन की वासनाएँ भी अतृप्त थी।" एक भयानक कल्पना ने उसके मन मे घर किया। वह चौक पडी।

सम्राट् ने लक्ष्य किया, पूछा—"क्या हुआ नूर !"

"कुछ नही महाराज !"

"तुम जैसे भयभीत हुई हो !"

"घटा किसने बजाया ?" नूरजहाँ ने पूछा।

"इस प्रश्न मे तुमने मेरी ही व्यग्रता छलका दी है। घंटा किसने बजाया ? मै भी इसका उत्तर चाहता हूँ। इस घटे का आदोलन मेरे अन्याय की घोषणा है। वह है, मै जानता हूँ इसे। पर कहाँ है ? इसी को बताने को रस्सी के उस छोर पर मैंने प्रजा का आह्वान किया है। उसे वहाँ आने का साहस क्यो नही हो रहा है। मै आठो पहर वहाँ अपनी साधारण-से-साधारण और निर्धन-से-निर्धन प्रजा का प्रवेश खोल दूँगा।"

"यदि किसी प्रेतात्मा को सम्राट् के विरुद्ध कुछ कहना होगा तो ?"

"मैं करूँगा उसकी क्षति-पूर्ति। यदि वह दिखा नही सकता स्वयं को तो किसी प्रकार व्यक्त करे अपने मनोभाव को।"

"बहुत दिनो से छिपाए हुए इस विचार को निकल जाने दूँगी महाराज ! शेर अफगन अत्यत असहाय स्थिति मे बडे धोके से मारे गए है। मै अपने मन का सशय सामने रखूँगी। महाराज, आपने न्याय करने की घोषणा की है। मेरा अभियोग आपके विरुद्ध है !" बडी उत्तेजना के

साथ नूरजहाँ ने कहा ।

सम्राट् ने कॉपकर उसका हाथ पकड लिया—"नूर, इतनी तीव्रता कभी नही देखी मैने तुम्हारे भावो मे ।"

"आज्ञा देते हैं महाराज !"

"हॉ-हाँ, क्यो नही । कहो, निर्भय होकर कहो ।"

"क्या उस जागीरदार का वध आपकी इच्छा से आपके सूबेदार द्वारा नही हुआ है ?"

उसी प्रकार कॉपकर सम्राट् ने नूरजहाँ का हाथ छोड दिया—"नही सम्राज्ञी ! कदापि नही । कोई आधार ? कोई प्रमाण है तुम्हारे पास ?"

"प्रमाण ?" कुछ विचार किया नूरजहाँ ने—"प्रमाण ?–यह घटा!"

"यह घटा ?"

"हॉ, यदि इसका बजानेवाला कोई मनुष्य नही है, तो ?"

"तो क्या तुम समझती हो शेर अफगन की आत्मा ने इसे बजाया है । नही, मैने उसका वध नही कराया है । उसकी मृत देह को समाधि मे सुरक्षित किए जाने की आज्ञा भी मै दे चुका हूँ ।"

नूरजहाँ के मुख पर कोई सतोष नही झलका !

"शेर अफगन के साथ तुम्हारा विवाह होने के पहले से मै तुमसे अनुराग करता हूँ । तुमसे कोई झूठ बोलकर मै उस प्रेम की उज्ज्वलता मे कलक नही लेना चाहता । भगवान् साक्षी हैं नूर ! यदि मैने उस जागीरदार का वध कराया हो, तो मै उससे भी पतित गति को प्राप्त होऊँ ।" सम्राट् आवेश मे आ उठे । उन्होने घटे को सम्बोधित कर कहा—'इस घटे को बजानेवाले यदि तुम शेर अफगन के सूक्ष्म शरीर हो, और तुम्हारा वध मैने कराया है, तो तुम एक बार फिर बज उठो ।"

और घंटा बज उठा—"घननन ! घननन ! घननन !"

सम्राट् ने एक हाथ फैलाकर एक हाथ से सिर पकड लिया, और आँखे फाड-फाडकर घटे की ओर देखने लगे ।

नूरजहाँ विनत-मस्तक दुःख और संताप से मानो भूमि मे गड गई। विचारने लगी, पछताने लगी—"व्यर्थ ही एक अत्यंत तुच्छ बात कहकर मैंने सम्राट् को पीडा पहुंचाई !"

इतने मे एक दासी दौडती हुई आई, और कहने लगी—"महाराज, घंटे को बजानेवाला पकड लिया गया !"

"कौन है, मेरे पास ले आओ उसे।" हर्ष मे उछलते हुए महाराज बोले—"भगवान्, तुम्हारा धन्यवाद है! तुमने मेरे और मेरी प्रेयसी के बीच की संशय की खाई पाट दी। नूर !"

नूरजहाँ ने सम्राट् के पैर पकडकर कहा—"दासी को क्षमा कीजिए महाराज !"

"नही, कोई क्षमा नही। मुझे तुम्हारे साहस का अनुमोदन करना चाहिए। तुमने अपने मन की मलिनता निकाल दी। वह धुलकर स्वच्छ हो गया। इससे हम एक दूसरे के और भी निकट आ गए। शेर अफगन, वह वीर सैनिक, अपने सम्मान की रक्षा करता हुआ युद्ध मे उसने प्राण विसर्जित किए है। वह प्रेत नही हो सकता। उसका ध्यान भुला दो। मै तुम्हारा आदि और प्रकृत प्रेमी हूँ।"

एक हाथ-पैर और मुँह बंधे हुए बंदर को लेकर राजकुमार शहरयार ने प्रवेश किया।

"क्या है राजकुमार ! इस बंदर को क्यो लाये हो ?" सम्राट् ने पूछा

"इसी ने घंटा बजाया महाराज !" राजकुमार बोला।

सम्राट् ने उस बंदर की पीठ पर थपकी देकर कहा—"धन्य हो, तुमने मुझे संशय के एक नीलतम-श्याम घन मे ढक जाने से बचा लिया !"

नूरजहाँ सम्राट के साथ-ही-साथ बोली—"राजकुमार ! राजकुमार दूर फेंको इसे, किसी सेवक को दे देते। कही तुम्हारे अंग मे दाँत या नख गडा देगा।"

"ठहरो नूरजहाँ !" सम्राट् बोले।

"यहाँ बँधा और असहाय है।" राजकुमार ने कहा।

सम्राट् को कोई राजस्व न देनेवाले और उसके सिक्को के ढेले चलाने वाले, हे मूढ बदर ! तू कौन-सा अभियोग लाया है मेरे कर्मचारियो के विरुद्ध !"

बदर "ऊँ-ऊँ" करने लगा।

कई दासियाँ भी वहा पर आ गई थी।

नूरजहा ने एक दासी की ओर सकेत कर कहा—"तुम ले लो इस बदर को।" राजकुमार शहरयार से उस बन्दर को दासी ने ले लिया।

"इस बन्दर के लिये एक सुन्दर और दृढ पिजरा बना दिया जाय। प्रशस्त, विस्तार का, जिसमे यह प्रसन्नता-पूर्वक कूद-फाँद सके, इसे बँधन प्रतीत न हो। एक सेवक केवल इसी की सेवा को नियुक्त किया जाय। इसे समय पर फल-फूल मेवे-मिष्टान्न दि (जायँ। एक बडे आदरणीय अतिथि की भाति इसका आदर हो। यह मेरे लिए आदर की वस्तु है।" सम्राट् कक्ष छोडकर बाहर की ओर बढे।

सबने उनका अनुसरण किया। राजकुमार शहरयार किसी बहाने से वही पर रह गया।

महाराज अनुचरो के साथ उस बन्दर का प्रबन्ध कराने को उसी समय चले। नूरजहाँ कक्ष मे लौट आई।

कक्ष मे आकर उसने देखा, राजकुमार शहरयार एक सुराही को ही लेकर रिक्त कर रहा है अपने मुँह मे। वह नूरजहाँ के प्रवेश से अनजान ही था।

ताडना के तीखे स्वर मे नूरजहाँ ने पुकारा—"राजकुमार !"

"ह-ह-ह-ह !" हँसते हुए राजकुमार ने सुराही आधार पर रख दी।

"राजकुमार ! और मै तुम्हारे कधो पर मुगल-साम्राज्य का भार रखाने को छटपटाती रहती हू। यह बात ठीक नही है। मैने कईबार तुमसे इस सबध मे बहुत कुछ कहा-सुना है।"

"सम्राट् से से उत्साह मिलता है, इस सबध मे।"

"अपने प्रतिस्पर्धी खुर्रम पर दृष्टि रक्खो। वह मद की गध से दूर भागता है। तुम दिन-दिन स्त्रैण और लोलुप होते जा रहे हो। कैसे काम चलेगा।। सिंहासन पर केवल प्रतिष्ठित करा देने से ही क्या होगा। तुम्हे उसे दृढता से अधिकृत भी तो रखना होगा। खुर्रम मेवाड पर विजय स्थापित कर लौट आनेवाला है। तुम्हारे मन में ऐसी उमगें नही उठती।"

शहरयार कुछ लज्जित हुआ, बोला—"अच्छा, अब की बार जो भी रण-यात्रा होगी, उसका अधिनायकत्व मुझे प्रदान कीजिए। मै भी अपना शौर्य प्रकट करूँगा।"

नूरजहाँ ने उसे उत्साहित करने को कहा—"अच्छी बात है। दक्षिण मे मलिक अबर सिर उठा रहा है।"

नूरजहाँ का अनुमान सत्य ही निकला। कुछ दिन बाद राजकुमार खुर्रम मेवाड के अधीश्वर महाराणा अमरसिह से सधि कर राजधानी मे लौट आया। सम्राट् ने बडी धूमधाम से उसका स्वागत किया, और उसकी सेना के वीर सरदारो को भाँति-भाँति के पुरस्कार देकर सतुष्ट किया। नूरजहाँ ने विष के घूँट को पी-पीकर यह सब सहन किया।

घटे की रस्सी का छोर सिंहद्वार के बाहर बढाकर रख दिया गया कि अभियोगी को सरलता हो। वहाँ पर एक गृह बना दिया गया, और दिन-रात प्रहरियो की बारी लगा दी गई। घटा बजाने का समय काल का प्रत्येक क्षण नियत किया गया। फिर भी कभी घटा नही बजा। महाकाल अपने चक्र मे प्रवर्तित होता गया। पलो की घडियाँ, घडियो के प्रहर, प्रहरो के दिन-रात, मास-वर्ष बनते गए, घँटा न हिला।

राजनगरी के उत्सव-आमोद, राजा के हास-विलास, राजभवन के यंत्र-चक्र, राज्य के सधि-विग्रह के बीच मे प्रजा भूल गई उस घटे का अस्तित्व। कुछ दित तक सम्राट् को याद था वह, फिर वह भी भूल

गए ! केवल वे प्रहरीगण ही उस घटे का अस्तित्व अपने हृदय मे गडाए बैठे थे, जिनको उसके सिरे की चौकसी का प्रतिमास वेतन मिलता था ।

जहाँगीर की दृष्टि मे खुर्रम की प्रतिष्ठा नूरजहाँ की द्वेष-ज्वाला को बढाती गई । खुर्रम भी राज्य के समस्त प्रबधो मे नूरजहाँ का प्रबल हाथ देखकर जलने लगा शहरयार एक दुर्बल हृदय और क्षीण मनोवृत्ति का राजकुमार सिद्ध हुआ । खुर्रम ने पिता के साथ-ही-साथ प्रजा के हृदय पर भी अधिकार जमाया । दो-तीन वर्ष और बीत गए ।

इस बीच मे उस दिन घटा फिर बज उठा ! प्रभात का समय था । महाराज को जगाने को गायिकाएँ सुमधुर गीत गा रही थी । अचानक घटा बज उठा !

सम्राट् उठ बैठे । घटा उस समय भी बज ही रहा था ।

"कौन है ? देखो, दासी जाकर ।"

सूर्योदय के सुमधुर प्रकाश मे हाथ मे एक जली हुई मशाल लेकर, अव्यवस्थित केश और वस्त्रो मे एक मनुष्य सिहद्वार के पास घटे की रस्सी को खीचने आया ।

प्रहरी ने उसे टोका ।

"कहाँ है वह घटे का रस्सा ?"

"मतलब तुम्हारा ?"

"मै उसे खीचने को आया हूँ । मै सम्राट् से न्याय चाहने आया हूँ ।

"यह जली हुई मशाल हाथ मे क्यो ले रक्खी है ? सूर्य का प्रकाश फैल चुका अब तो ।"

"फिर भी अन्धकार हे, अन्याय है मुझ पर, इसीलिये । देर हो रही है, बताओ, कहाँ है वह रस्सी, जिसे खीचकर न्याय का घटा हिलाया जाता है ?"

प्रहरी ने केवल यही विचार किया कि घटा सप्ताह-पक्ष मे कम-से-

कम एक बार तो हिलना ही चाहिए, अन्यथा इसके उपयोग-हीन रह जाने पर हमारी नौकरी ही कितने दिन रहेगी ? उसने रस्सी की ओर सकेत कर कहा—"यह है ।"

घटा बजानेवाले का शोध लेने को जो दासी बाहर आई थी, उसने भीतर जाकर सम्राट् से कहा—"प्रजा के साधारण वर्ग का कोई मनुष्य है । महाराज के न्याय की दुहाई दे रहा है । उसके हाथ मे एक जली हुई मशाल है ।"

सम्राट् कौतूहल मे भरकर उठे । आखेट की पहली विजय जैसे किसी शिकारी को प्राप्त होती होगी उसी की प्रसन्नता हुई उन्हे । बिना स्वच्छ हुए, शृङ्गार किए वही बासी मुख शयनकक्ष से बाहर निकल गए ।

अभियोगी को अत पुर के भीतर प्रविष्ट होने की आज्ञा हुई । सम्राट ने अलिद मे आकर उसे दर्शन दिए ।

"सम्राट् की जय हो !" चिल्ला उठा अभियोगी । उसने दडवत्-प्रणाम किया सम्राट को ।

"क्या कहना है तुम्हे ?" सम्राट् ने पूछा ।

"अन्याय ! अन्याय ! घोर अन्याय सम्राट् !" अभियोगी ने सिर से बहुत ऊँची वह मशाल उठाकर कहा—"ऐसे न्यायी सम्राट् के शासन मे अन्याय ! इसी से यह मशाल जलाकर लाया हूँ ।"

"कहो भी तो ।"

"मेरी पहली स्त्री मर गई !"

"फिर इसमे मेरा या मेरे न्यायाधीशो का क्या अन्याय !"

"मेरे पडोसियो मे से तो किसी की स्त्री नही मरी है ।"

सम्राट सोचने लगे, इस मनुष्य को कोई मस्तिष्क की विकृति तो नही है ।

"अच्छा, फिर मेरी दूसरी स्त्री क्यो भाग गई, कहाँ को भाग गई ? यह तो है न सरासर आपके शासन का अन्याय ! आपके कर्मचारियो मे

से कोई भी उसका पता नही बता सका मुझे। अवश्य ही उनका मुख घूस ठूँसकर बद किया गया है। आप सम्राट् है। आपने न्याय की घोषणा की है। आप बताइए महाराज, कौन बहका ले गया उसे। यही नही, उसके दड की व्यवस्था भी कर दीजिए।"

सम्राट् को अब कुछ सदेह नही रहा कि वह मनुष्य पागल है। किसी प्रकार हँसी दबाकर उन्होने कहा—"अच्छी बात है। मैंने आपका अभियोग ध्यान-पूर्वक सुन लिया। मै इस पर राजसभा मे विचार करूँगा, और शीघ्र ही इस पर न्याय होगा। आप इस समय जाइए।"

"मुझे अपना नाम-धाम भी तो कही लिखा देना चाहिए न। नही तो गडबड न हो जायगी। मेरा न्याय किसी मुझसे मिलते-जुलते नाम या रूप के मनुष्य के पास चला जायगा, तो बेचारा फेर मे पड जायगा। लेकिन मै एक कठिनाई मे पड गया सम्राट्! विधुर मै हुआ नही, कुमार भी नही, फिर क्या विशेषण हुआ मेरा?"

सम्राट् मन-ही-मन हँसे। नूरजहाँ अलिद पर आई थी, पर एक पागल को देखर लौट गई। दास-दासी ओटो पर से सम्राट् और उस विक्षिप्त का सभाषण सुनकर हँस रहे थे।

"यह भी उसी सभा मे निश्चय कर दिया जायगा। आप क्या व्यवसाय करते है।

"पिता तलवार बनाते थे, मैंने तलवार चलाना सीखा। यौवन मे कई मनसबदारो की सेना मे नौकरी की मैंने। उमर ढलने पर दूसरा विवाह किया, और व्यवसाय भी बदल दिया। क्या बताऊँ, क्या व्यवसाय, कुछ भय लगता है।"

"भय क्या? कुछ भी नही!"

"घोडे का ध्यवसाय करता हूँ। आगे न पूछिए महाराज! बात बढ जायगी।"

"घोडे बेचते हो क्या?"

"नही, किराए पर लगाता हूँ। जब मनसबदारो के घोडो की जाँच होती है, तो मै अपने घोडो से उनकी गिनती पूरी कर देता हूँ। अच्छा लाभ होता है मुझे।"

सम्राट् की भौहे तनने लगी थी, पर उन्होने पागल की बात पर अधिक ध्यान देना उचित न समझा।

पागल ताली पीटकर उछला, और हँसा—"महाराज, एक बात पूछता हूँ।"

सम्राट के मुख पर घबराहट के चिह्न प्रकटे।

"शेर अफगन आपकी रानी को भगा ले गया। आपने उसे पर्याप्त दड दिया। सच बताइए महाराज, नूरजहाँ से भी कुछ कहा-सुना आपने ?"

सम्राट् चौककर इधर-उधर देखने लगे—और कौन-कौन उसकी बात सुन रहा है। सम्राट् ने बडी तीव्र दृष्टि उस विक्षिप्त पर निक्षिप्त की, और प्रहरी को बुलाया।

कछ भी प्रभाव न पडा उस पर इसका। वह कहता जा रहा था—"मेरीस्त्री के अपहरणकारी को आप दड देगे ही। स्त्री का भी मुझे कुछ दमन करना ठीक होगा या नही ?"

प्रहरी आ पहुचा था। सम्राट् ने उसे सकेत दिया। वह पागल को पकडकर बाहर ले गया, और सम्राट् अत.पुर मे प्रविष्ट हुए—आधी हँसी और आधे क्षोभ के भाव मे।

पागल के रस्सी खीचने के परिणाम-रूप एक कर्मचारी की नियुक्ति और हुई प्रहरी के साथ। उसका काम हुआ अभियोगी की भले प्रकार जाँच कर तब उसे आगे बढाना।

दक्षिण मे अहमदनगर की निजामशाही के वजीर मलिक अबर ने अहमदनगर को मुगलो के पाश से मुक्त कर लिया। उसने अपने कौशल और पराक्रम से बार-बार साम्राज्य की सेना को मार भगाया।

किसी योग्य और विश्वसनीय सेनापति के अधिनायकत्व मे दक्षिण की रणयोजना अत्यन्त आवश्यक हो उठी।

राजकुमार खुर्रम उस अभियान के लिये प्रचुर उत्साह रखने लगा। वह चाहता था, राज्य के विशद विस्तार से परिचित होना और प्रजा के प्रेम को प्राप्त करना। इससे उसे राज्य की सेना के हृदय को भी अधिकृत कर लेने का सुयोग मिलता था। सम्राट् भी उसे सेना-नायक बनाना चाहते थे। शहरयार को वह किसी योग्य नही समझते थे, केवल नूरजहाँ का मन रखने को ही शहरयार की प्रशसा करते थे। इसके अतिरिक्त नूरजहाँ और खुर्रम मे जो विद्वेष चल पडा था खुर्रम के राजधानी से दूर रहने मे कुछ दिन के लिये उससे छुट्टी मिल जायगी, यह भी महाराज का लक्ष्य था।

खुर्रम ने दक्षिण की रण-यात्रा की, और एक ही वर्ष मे मलिक अबर को परास्त कर उसे सधि करने को बाध्य किया। सम्राट् खुर्रम पर बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होने शाहजहाँ की पदवी देकर उसका सम्मान किया। नूरजहाँ की साधो पर मानो बिजली गिर पड़ी!

---

[६]

राजकुमार खुर्रम जब दक्षिणी अभियान से लौटकर राजधानी में आया, तो उसने नूरजहाँ को राज्य-संचालन मे बहुत गहरा पैठा हुआ पाया। सेना, राजस्व, न्याय, जागीर तथा मनसबदारी का वितरण, सूबेदार तथा सेनापतियो की नियुक्ति-वियुक्ति, टकसाल—कोष, सधि-विग्रह आदि राज्य के प्रधान अगों के निर्णय बिना नूरजहाँ की सही के परि-

पूर्णता-प्राप्त न होने लगे।

खुर्रम ने देखा, उसकी अनुपस्थिति मे नूरजहाँ ने उसके पक्ष के अनेक सरदार और मन्त्रियो में से किसी को हीनपद और अनेको को न कोई-न-कोई दोष लगाकर नौकरी से अलग कर दिया था। राजकुमार ने जब पिता से इस सबंध मे बाते की, तो उन्हे सर्वथा दुर्बल उस सुदरी के वशीभूत पाया।

नूरजहाँ के साथ खुर्रम की प्रतिद्वद्विता अब खुल पडी। वह सम्राट् से स्पष्ट शब्दों मे नूरजहाँ के अन्याय के प्रतिकार को कहता, और नूरजहाँ खुर्रम के राजनीतिक प्रबधो में अनधिकार प्रवेश की दुहाई देती।

सम्राट् खुर्रम से प्रभावित थे, वह अकारण ही उसे निरुत्साहित करना नही चाहते थे और नूरजहाँ, वह तो उनके जीवन की सार और सर्वस्व थी। उसकी इच्छा पूर्ण करना उनका सर्वोत्तम लक्ष्य था। दो नावो में एक-एक पैर रक्खे हुए मनुष्य के समान उनकी यात्रा दुबिधाओ मे डगमगा उठी।

सम्राट की-सी सदिग्ध दशा मे प्रधान मत्री आसफखाँ भी पड गए थे। एक ओर पत्नी और पुत्री का स्वार्थ, दूसरी दिशा मे बहन नूरजहा का विचार। जब वह उदार भावो मे होते, तो सोचते—"योग्यता हो सकती है। मुझमे, पर इस पद तक पहूँचने मे सहायता नूरजहाँ की ही है। उसका अनहित एक महान् पातक है।" दूसरे क्षणो मे वह अपने मन मे कहते—"उत्तराधिकार के सबध मे नूरजहाँ की तुच्छ स्वार्थ भरी कल्पना है। उत्तराधिकार मे ज्येष्ठता ही गणनीय वस्तु है। राजकुमार खुर्रम को हटाकर राजकुमार शहरयार के मस्तक मे राजमुकुट रखना, उसके मन की छिपी चाल खुल पडी है। उसके लिये कुछ दिन को यह लाभदायक हो, पर साम्राज्य का अणु-मात्र हित नही है इसमें। अवस्था की गणना छोड भी दी जाय, तो क्या योग्यता भी उपेक्षणीय है? वह सम्राट् का सबसे छोटा राजकुमार, कायर और विलास-प्रिय,

उसके दुर्बल कधो पर यह बाबर, हुमायूँ और अकबर का अर्जित साम्राज्य यदि सम्राट् जहाँगीर अधे होकर रख भी देगे, तो वह ठहर नही सकता एक दिन भी। वह टुकडे-टुकडे हो जायगा, चील, गिद्ध, सियार उसे नोच-नोच डालेगे, और निर्दोष प्रजा व्यर्थ ही सकट मे पड जायगी। समस्त भारतवर्ष की भलाई के लिये यदि मुझे एक व्यक्ति की मूढ कल्पना का विरोध भी करना पडेगा, तो करना चाहिए मुझे।"

नूरजहाँ इस बात को समझ तो गई थी कि शहयार राजसिहासन के योग्य है नही। फिर भी वह उसके सुधार और उसके लिये सुयोगो की रचना मे बराबर तत्पर रहा करती। नूरजहाँ उदार थी, बुद्धिमती थी, पर यह उसकी नैतिक दुर्बलता उसका कलक सिद्ध हुई, और उसके दु.ख का कारण बनी।

शहरयाह का पक्ष लेने मे नूरजहाँ को स्नेह-बधन की प्रेरणा थी, इसके अतिरिक्त वह जीवन-पर्यत अधिकारसपन्ना बनी रहना चाहती थी। सम्राट् की जीवितावस्था तक उसका जादू अटल रहेगा, इसक उसे पक्का भरोसा था। यदि उनकी मृत्यु हो गई, तो शहरयार की उत्तराधिकार-प्राप्ति उसकी आकाक्षा को स्थिर रख सकेगी। इस आशा पर वह अपने भविष्य का निर्माण करने लगी।

सहसा नूरजहाँ का ध्यान उस अभागे युवराज खुसरू की ओर गया। वह करुणा की भावना थी या क्या? नही कहा जा सकता। वह सम्राट् द्वारा प्रदत्त अधेपन को भोग रहा था, उनका कोप-भाजन था वह। नूरजहाँ समझती थी, उसका इतना गुरुतर अपराध है। फिर भी उसने युवराज के प्रति कोई स्नेह-प्रदर्शन नही किया। वह आज तक कदाचित् ही कभी उससे बोली होगी। उसने उसे केवल एक-दो बार ही देखा था। उसने सम्राट् से उसके अपराध और दड के सम्बध मे कोई बात नही की। उन दिनो वह खुसरू से भेट करने की उत्कट इच्छा रखने लगी।

एक दिन वह चली गई उस अधे युवराजके प्रासाद की ओर।

पाई बाग मे टहल रहा था वह एक लाठी के सहारे। एक प्रहरी कभी कभी उसको मार्ग बताने और उस पर तीखी दृष्टि रखने को नियुक्त था, कुछ दूर पर बैठा हुआ था वह।

नूरजहाँ को आते हुए देखकर प्रहरी उठ खडा हो गया। उसने अभिवादन किया।

"प्रहरी, तुम कुछ देर के लिये जा सकते हो, मै बताऊँगी राजकुमार को मार्ग। जाओ।"

प्रहरी चला गया।

नूरजहाँ खुसरू की ओर दृष्टि करती हुई उसकी ओर बढने लगी। धीरे-धीरे उसकी गति विधि और भाव-भगी का अध्ययन करते हुए देखा उसने, सगमरमर से पटे हुए पथ की धार पर अपनी लाठी घिसता हुआ जा रहा था वह। अचानक रुक गया। लाठी उपवन की ओर घुमाकर उसने एक गुलाब के वृक्ष की स्थिति ज्ञात की। वह उस वृक्ष के निकट गया। बडा हलका हाथ फेरकर उसने एक पुष्प को टटोला और तोड लिया। एक बडी क्षीण स्मिति उसके अधरो पर खिल उठी। उसने उस फूल को सूँघा। वह हँसी कुछ, और मूक विस्तार पा गई। खुसरू ने माथा पकड लिया। न-जाने किस स्मृति मे वह निमग्न हो गया था। .

नूरजहाँ ने स्नेह-भरे स्वर मे पुकारा—"युवराज!"

खुसरू ने सुना वह शब्द, पर कुछ भी उत्तर नही दिया। वह चुपचाप अपने मार्ग मे आकर एक ओर खड़ा हो गया।

नूरजहाँ ने फिर कहा—"युवराज खुसरू!"

मन-ही-मन दुहराया उस अधे ने—"युवराज खुसरू!" उसने चकित भाव से उस पुकार के पथ मे बडे आकुल भाव से निहारा—हाँ-हाँ, मेरा अर्थ तुमसे ही है।"

"खुसरू को युवराज कोई नही कहता। तुम्हारा इस दुर्ग मे नवीन

ही प्रवेश जान पडता है।"

"नही, यह बात नही है।"

"फिर तुम कौन मेरे सोते हुए भाग्य को जगाना चाहते हो ? उसको कोई नही जगा सकता। उस निद्रा का नाम अब मैं मृत्यु रख चुका हूँ। मेरे इस घने अधकार मे कोई किरण आवश्यक नही है। मेरी आँखों मे चकाचौंध उत्पन्न हो जायगी। चतुर शिल्पी ने बडी कारीगरी से इनकी पलकों को सी दिया है। इनके ऊपर एक-एक चमडे का टुकडा और भी। बाहर से कोई प्रकाश की रेखा भीतर नही जा सकती, और न भीतर से आँसू की बूँद कोई बाहर टपक सकती है। हँस नही सकता, रोने का भी सुयोग नही। दुर्ग में कही भी जाने की मुझे आज्ञा है, पर मै जाता नही। कौन हो तुम ? तुम्हारा परिचय पाकर ही तो मुझे कुछ बोलना चाहिए।"

द्रवित स्वर मे उसने कहा—"मै हूँ नूरजहाँ!"

'बडा कष्ट किया! आप महाराज की सबसे प्रिय रानी हैं। नित्य ही सुनता हूँ, आप सुयश के साथ इतने बडे साम्राज्य का शासन कर रही हैं।" खुसरू का मुख तेजस्विता से भर उठा। "आपने ही मुझे युवराज कहकर पुकारा ?"

"हाँ।"

"किसी और की पुकार को मैं चाटुकारी समझता, परतु तुम—तुम्हारी ? क्या महाराज ने मुझे क्षमा कर दिया ? अपराध की लघुता और गुरुता क्या सम्राट् के वश की बात नही है ?"

"यह सब मैं कुछ नहीं जानती।"

"आश्चर्य है! देखता कुछ नही हूँ। एक शाश्वत अनत-विस्तृत अधकार! पर सुनता हूँ सत्य ही, राज्य के सूत्र जैसे सम्राट् के हाथों मे हैं, वैसे ही उनकी समस्त गति-विधियो का सचालन आपकी इच्छाओ में है। सारी प्रजा आपसे ही महारानी कहती है, महारानी आप ही हैं।

इस अंधे पर सत्य प्रकट करो। मै ठीक ही कह रहा हूँ न ?"

"सम्राट् का हृदय-तल और गहराई मे एक अनत-अथाह वस्तु है। कौन उसे अधिकृत कर सकता है युवराज !"

"आप फिर बार-बार युवराज कह-कहकर मेरे जगत मे प्रकाश के द्वार खोलना चाहती है, परतु इस अधेपन ने मुझे विचार की गहराई मे पैठने का अवसर दिया। जगत् और उसके सबध आवरण एव आभरण-हीन होकर मुझ पर प्रकटे है। मै इस यौवराजत्व को लाछित समझता हूँ, और इससे घृणा करता हूँ।")

"क्यो ? क्यो ?' आश्चर्य के साथ नूरजहाँ बोली—"फिर क्यो इस राजभवन मे यह अधा जीवन और पग-पग की ठोकरें सहन कर रहे हो ?"

"मै भाग जाता। राज्य से, सभ्यता से भी दूर, कही जगली कोल और भीलो की सगति मे। दिन भर उनके साथ श्रम करते हुए भगवान् की याद मे जीवन विता देता। क्या है यह जीवन एक नीरस और नि सार स्वप्न—जिस का अधिकाश बीत चुका है, और शेष अश का मुझे कोई मोह नही है। पर कैसे ? सम्राट् इस बात पर विश्वास नही करते। उनके सेवक भागने नही देते मुझे। वह समझते है अवसर मिलते ही यह खुसरू फिर विद्रोह का झडा ऊँचा कर देगा। भगवान् को देख कर कहता हूँ महारानी, ऐसी बात नही है।" खुसरू ने आकाश को सकेत किया।

नूरजहाँ उस अधे युवराज की बातो से द्रवित हो उठी। उसका हृदय दया से भर उठा। वह बोली—"मुझे विश्वास होता है युवराज ! फिर क्या इच्छा है तुम्हारी ?"

"क्या बताऊँ ? स्वय ही नही जानता कुछ।"

"तुम्हारी ये आँखे केवल सी दी गई हैं। सम्राट् की इच्छा-मात्र होने पर ये फिर खुल सकती हैं, और यह प्रकाश का सारा विश्व फिर तुम्हारा हो सकता है।"

खुसरू के पैर काँपने लगे। वह भूमि पर लाठी दबाकर बैठ गया। दोनो हाथ जोडकर बोला--"नही, महारानी जी, नही। कोई आकाक्षा मेरे मन मे जीवित नही रह गई !"

"नई उपज सकती हैं।"

"नही !"

"मै सम्राट् से प्रार्थना कर तुम्हारी आँखे खुलवा दूँगी। तुम्हे उनकी क्षमा प्राप्त होगी।"

"क्या युवराज-पद के लिये ?"

नूरजहाँ ने उसका हृदय टटोलने को कहा---"हाँ-हा, क्या हानि है। न्याय से उस पर तुम्हारा ही अधिकार है।"

"नहीं। अब दूसरी स्थिति हो गई है। खुर्रम इस मार्ग पर बहुत आगे बढ चुका है, और··"

खुर्रम का नाम सुनते ही नूरजहाँ की द्वेषाग्नि भडक उठी।

खुसरू ने वाक्य पूरा किया---"और शहरयार, वह भी मेरा भाई है। उसके साथ तुम्हारा दोहरा नाता है। सुनता हूँ, वह भी अपने हृदय मे राजसिंहासन की आशाओ को प्रतिपालित कर रहा है। करने दो, इन्ही को करने दो। मै देख चुका। आखें खोकर ही मैने देखा। ये जब देख सकती थीं, तो वह सब एक भ्रम था, एक छलना थी।"

"तुम्हे राजकुमार शहरयार का युवराज-पद सह्य है ?"

"हाँ-हाँ, क्यो नही।"

नूरजहाँ भी भूमि पर उस सगमरमर से पटे हुए पथ पर बैठ गई। उसने खुसरू की पीठ पर हाथ रक्खा---"हाँ, तुमसे कोई बात छिपाऊँगी नही। सबसे पहले मै चाहती हूँ, सम्राट् का सबसे बडा पुत्र ही राज-सिंहासन का अधिकारी है। इसीलिये मै तुमसे अनुरोध कर रही हूँ, तुम उसके लिये सर्वथा योग्य हो। राजकुमार खुर्रम, वह कदापि उपयुक्त नही है। वह अभिमानी और सकुचित विचारो का मनुष्य, उसका कोई भी

गुण उसे सिंहासन का अधिकारी बनाने के लिये यथार्थ नही है। मै भले प्रकार जानती हूँ, साम्राज्य की प्रजा के किसी भी अग को वह सतुष्ट न कर सकेगा। कुछ सेनापतियो पर नि सदेह उसका प्रभाव है। उन्ही के कारण एक-दो-छोटे छोटे युद्धो मे, युद्ध भी क्या, विग्रहो मे उसने विजय पाई है।"

अधे युवराज ने कहा—"हाँ, सम्राट् ने उन्हे शाहजहाँ की पदवी दी है।"

"तभी से उनका अभिमान चरम सीमा पर जा अटका है। उन्हे पता ही नही। जिसने उन्हे वह पदवी दी है, एक ही क्षण मे वह उसे छीन भी सकता है।"

"आपकी सहमति न थी क्या उस पदवी-दान मे ?"

"पदवी मे यदि यथार्थता नही है, तो मैं उसे कोरा आडबर और धोका समझती हूँ। युवराज, केवल भारतवर्ष के एक अग को ही जगत् की उपमा दे देना क्या एक भयकर भूल नही है ? तुम उस राजकुमार की बात कहते हो, मैं स्वय सम्राट से भी उनकी पदवी के लिये अनेक बार बहुत कुछ कह चुकी हूँ, और फिर कहूँगी।"

खुसरू अपने मन में सोचने लगा—"तेजस्विनी है यह रमणी।"

"तुम्हे प्रजा की बाते सुनने से कोई मतलब नही, मै जानती हूँ, खुर्रम प्रजा-प्रिय नही है। निरतर भौहो मे ग्रथि पडी हुई, सर्वत्र अपने ही स्वार्थ के सबध किसे सह्य होते हैं। और, तुम्हारे लिये अधिकाश प्रजा की भारी समवेदना है। वह बहुत चाहती है तुम्हे। तुम किसे क्या दे रहे हो ? केवल भाव का बधन युवराज !"

खुसरू ने एक दीर्घ श्वास छोडी—"ओह ! इसीलिये तो मै आपसे बिनती कर रहा हूँ। यह अत्यत शोक-भरा सबोधन है मेरे लिये। मै अपने उन अगणित साथियो को कैसे भूल जाऊँ, जिन्हें सम्राट् ने मेरे सह-योग के लिये सूलियो पर लटका दिया ! उन सबके प्राणहीन शव मुझे

भी दिखाए गए। उसके बाद फिर मेरी बारी आई। मृत्यु की कामना करता था मै। न दिया गया वह दड मुझे। वह दड एक क्षण-व्यापी था। यह कठोरतम दड असीमित है, इसे भुगत रहा हूँ। बीच-बीच में आकाश मे जितनी तारिकाएँ हैं, उतने ही वे मुख मेरे सहयोगियो के मेरी ओर क्रूर दृष्टि-निक्षेप करते हैं। क्या करूँगा मै उस राजसिंहासन से ? किसलिये ? उन मित्रों के त्याग का क्या मूल्य चुकाऊँगा ! इसलिये फिर अतिम बार प्रार्थना करता हूँ, मुझे उस कटको के मुकुट और सूलियो के सिंहासन का कोई स्वप्न न दो।"

"अच्छा, न दुखाऊँगी मै तुम्हारा हृदय। समझ गई हूँ तुम्हारे अतर की पीडा को। पर तुम्हारा पुत्र—राजकुमार बुलाकी ? तुम्हारे अधिकार के प्रति उदासीन होने पर मै उनका अधिकार समझती हूँ।"

एक क्षीण सतोष खुसरू के मुखमडल पर चमक गया—"हाँ, आपका न्याय स्तुति के योग्य है। इसी कारण विश्वास हुआ मुझे, तुमने प्रजा की वत्सलता और सम्राट् के हृदय पर विजय प्राप्त की है।"

खुसरू बोला—"हाँ, राजकुमार बुलाकी ! कभी-कभी सोचता तो हूँ मै उस निर्दोष राजकुमार ने सम्राट का कुछ नही बिगाडा है। कदाचित उसके हृदय में राज्य करने की आकाक्षा और योग्यता दोनो विकसित हो उठे समय प्राप्त होने पर। तुम्हारी उदारता धन्य है महारानीजी ! ऐसी हित-चिंता से कोई बात नही करता इस अधे प्राणी से। जीवन और जगत् की राजनीति से सर्वथा विहीन बातों के लिये भी तो वे सम्राट् की तनी भौहो से डरते रहते है।"

"हाँ, राजकुमार शहरयार पर मेरा विशेष स्नेह स्वाभाविकता है। जब तक मैं किसी के अधिकारो का हरण कर उन्हे नही दे देती, वह मेरी दुर्बलता न कही जायगी। मै चाहता हूँ, समय आने पर राजकुमार बुलाकी ही युवराज घोषित हो। उनकी अवयस्कता तक राजकुमार शहरयार उनके स्थानापन्न और सहायक, ठीक है न ?"

"हाँ, ठीक है ।"

"मैं सम्राट् को इस पर सम्मत कर लूँगी । मै आपकी आँखें भी खुलवा दूँगी । राजनीि से कोई खुला सबध न रखने पर भी आप उन दोनो के सरक्षक रहेगे । यह निश्चित हुआ फिर ।"

"हाँ, जो कुछ तुम्हारी समझ मे आवे ।"

नूरजहाँ उठ गई—"हाँ, यही उचित है ।"

खुसरू सोचने लगा—"क्या करूँ अब ?"

नूरजहाँ ने कहा—"तुम्हे तुम्हारे भवन तक पहुँचा दूँ ?"

बडी भोली हँसी के साथ उसने कहा—"वहाँ जाकर ही क्या करना है । यहाँ पर ये चिडियाँ कभी-कभी मेरे बहुत निकट आ जाती है । इनके स्वर प्राणो मे गँस जाते हैं । इनके परो की फडफडाहट जब मेरे अग मे लगती है, तो मै समझता हूँ, यह मेरी ही साँस का स्पर्श है ।"

नूरजहाँ बडी करुणा-भरी दृष्टि से उसे देख रही थी ।

खुसरू उठते हुए कह रहा था—("आँख, कान, नाक, मुख, हाथ-पैर की इन इद्रियो के अनुभव सब जाकर मन ही को प्रभावित करते हैं । मन मानो एक भवन है, और ये पाँचो उसके द्वार । क्या मेरे एक द्वार के बद हो जाने से मन की कुछ भीड कम हुई होगी ?")

नूरजहाँ हँसती हुई बोली—"राजकुमार, तुम्हारे निकट आने से हमारे विचारो का विनिमय हुआ, हमने एक दूसरे को पहचाना । हमारा यह स्नेह दिन-दिन पल्लवित होगा । अब की बार मै तुम्हे अपने भवन मे आमन्त्रित करती हूँ । जब तुम्हे अवकाश और तुम्हारी इच्छा हो । भोजन वही करोगे ।"

"आपके भवन में ?" एक गभीर पहेली को सुलझाता हुआ राज-कुमार बोला—"नही-नही, वहाँ न बुलाइए ।"

"मैं पालकी भेज दूँगी ।"

"नही अधत्व के कारण नही कहता । सम्राट् न-जाने क्या समझे !"

"तुम उनके ज्येष्ठ श्रेष्ठ पुत्र हो। मै तुम्हारे लिये उनके हृदय को स्वच्छ करूँगी राजकुमार !"

खुसरू फिर सकुचित हो गया, और बैठा ही रह गया।

"तुम कुछ चाहते नही हो सम्राट् से, यह मै जान गई हूँ। पर तुम्हे अपने पुत्र की ओर देखना है न ?"

"इस उपवन की सीमा से बाहर मेरी स्त्री कही बाहर जाने नही देती। अब भी इस भवन में किसी गवाक्ष के झरोखे पर से वह मुझे देख रही होगी। वह कही खाना भी नही खाने देती। केवल अपने ही हाथ का भोजन देती है।"

"क्यो ?"

"क्या बताऊँ ?" हँसने लगा खुसरू—"उसकी बुद्धि ! उसका भ्रम ! उसकी कायरता ! अपने स्वार्थ को खोकर मै तो निर्भय हो गया हूँ।"

नूरजहाँ मन मे सोचने लगी—"कही कोई भोजन में विष न दे दे, यह भय होगा उसे।" वह सहम उठी, और इस सबध मे चुप हो गई।

खुसरू लाठी सँभालकर उठा—"अच्छा, महारानी जी, आप मेरे पुत्र पर स्नेह बढावेगी, यह जानकर बडा सुख हुआ। वह नहीं होगा यहा, नही तो अब तक आ जाता। आप फिर दर्शन देंगी, कृतकृत्य हुआ हूँ मै, अब नमाज का समय हो गया।"

"कैसे जान लिया तुमने ? अजान तो नही हुई अभी।"

"मेरे हाथ-मुँह धोने तक अजान हो जावेगी।" स्मित मुख से उसने कहा—"जान लेता हूँ मै। समय एक रहस्य है। यदि हमारे विचारो की लडी अटूट रहे, तो हमें वह ज्ञात ही रहता है। चद्र सूर्य-तारागण, भाँति-भाँति की घडियाँ ही केवल उसकी नाप के साधन नही, हमारे यह हृदय के स्पदन मे भी तो उसी की गति के अक हैं। नेत्र खोकर वह स्पदन मेरे कानो मे कुछ अधिक गहराई से बजता है ! भगवान् की वदना का समय महारानी जी, ससार की बातें, इन सबको छोडकर वह आवश्यक है।"

खुसरू उपवन मे एक फुहारे के पास चला गया और वहाँ पर मुँह-हाथ धोने लगा ।

कुछ देर तक देखती रही नूरजहाँ उसे । उसकी दासी ने पश्चिमाभिमुख एक आसन बिछा रक्खा था वहाँ पर, राजकुमार की नमाज के पढने के लिये । अजान से कुछ पहले ही नूरजहाँ वहाँ से चल दी ।

इसके कुछ ही समय बाद एक दिन राज-काज से छुट्टी पाने पर जब नूरजहाँ सम्राट् के साथ अत पुर के एकात मे थी, उसने खुसरू की चर्चा छेडते हुए कहा—"महाराज, राजकुमार खुसरू के दड-भोग की अवधि अब और कितनी है ?"

"तुम सम्राज्ञी हो, तुमने न्याय-दड पर भी अधिकार कर रक्खा है । स्वय विचार करो इस पर ।

"अवधि समाप्त हो गई !"

चकित होकर जहागीर ने कहा—"समाप्त हो गई ! विचार नही किया तुमने स्थिर होकर ।"

"कर चुकी हूँ महाराज ! यदि समाप्त नही भी हुई है, तो वह राजकुमार दया के पात्र हैं ।"

"दया ?"

"हाँ, दया कर ही रक्खी है महाराज ने, नही तो उस सुई को कुछ और गहरा धँस जाने मे क्या लगता ।"

"आश्चर्य है, तुहारी करुणा उधर कैसे खिच गई ?"

"युवराज की वह पतित अवस्था हमारा कलक है सम्राट् !"

"उसका अपराध पर्वत के समान उँचा और भारी है नूरजहाँ ! तुम्हे नही ज्ञात है ।"

"जानती हूँ मै सब कुछ ।"

"इस सबध मे तुम्हे नीरव रहना उचित है ।"

"नही, महाराज ! मै चाहती हूँ वह भूल शीघ्र ही ठीक हो जाय ।"

"यह भूल-सुधार फिर तुम्हारी भूल होगी । कदाचित पहली से गुरुतर ।"

"क्यो ?"

"तुम राजसिहासन के एक पगु अधिकारी को फिर सक्रिय और सचेष्ट कर दोगी ।"

"सम्राट् आपको पता ही नही है, राजकुमार खुसरू के भीतर एक विरक्त हृदय स्पदित है ।"

"उसमें रग दौडते कोई देर न लगेगी नूरजहाँ । यह राज्य के अधिकार की लालसा अद्भुत है, विचित्र है ।"

"सम्राट् ने स्वय को न्यायी विघोषित किया है । मै इसे सरासर अपका अन्याय कहती हूँ ।"

"तुम जो भी कहो, सह सकता हूँ मै उसे । धीरज से सुनो, क्या तुम राजकुमार शहरयार के लिये एक सबल प्रतिद्वद्वी जीवित कर देना चाहती हो ?"

"न्याय के यज्ञ मे मै अपने स्वार्थ की बलि दे दूँगी ।"

चकित होकर सम्राट् ने कहा-"नूरजहाँ ! तुम सच कह रही हो ?"

"हाँ, हाँ !"

"नही, यह क्षणिक आवेश है । शीघ्रता न करो, और विचार करना हितकर होगा ।"

पर नूरजहाँ विचलित न हुई । बोली—यदि सम्राट् राजकुमार खुसरू को क्षमा नही कर सकते, तो मै करती हूँ—"मैं सम्राज्ञी हूँ ।"

बडी विवश हँसी हँस कर जहाँगीर ने कहा—"अच्छा, मै भी उसे क्षमा करता हूँ, किंतु..."

"किंतु की कोई आवश्यकता ही नही है । राजकुमार के हृदय मे राजसिहासन का कोई लोभ नही । इसे अटूट सत्य समझिए ।"

"यह अधकार का प्रभाव है । आँखे खुल जाने पर फिर दूसरा

जगत् दिखाई दे जायगा।"

"मै इसका उत्तरदायित्व लेती हूँ।"

"अच्छी बात है, तब खोल दो उस उस अधे की आँखे। उसे देखने दो, उसके इस अन्धत्व की अवधि ने विश्व को कितना परिवर्तित कर दिया है।"

"सम्राट् की जय हो! वह राजकुमार जब फिर प्रकाश को देखेगा, जब फिर बिना सहारे के गति-विधि करेगा, तो उसकी आत्मा अत्यन्त प्रसन्न होगी।"

"तुम भी प्रसन्न होओगी नूरजहाँ, और मुझे भी प्रसन्न होना ही चाहिए। मेरी प्रसन्नता क्या है, तुम जानती ही हो। अतिरिक्त सुरा देनी ही पडेगी तुम्हे आज मुझे।"

"नही!" नूरजहाँ ने दृढ स्वर मे कहा।

"क्यो?"

"क्योकि प्रसन्नता का उद्गम मन है। बाहर की किसी वस्तु के सयोग से जो उसका उद्भव है, वह झूठा और क्षणिक है।"

"जब मन ही है, तो बद ही रहने दो उस राजकुमार की आँखे, मैने उसके मन में कोई टाँके नही लगाए हैं। आँखे खुल जाने से बाहर की वस्तुओ का सयोग होगा।"

नूरजहाँ हँसने लगी।

"बाहर और भीतर ये दो वस्तुएँ अलग-अलग नही है। एक दूसरे मे समाया हुआ है नूरजहाँ! कैसे? किस तरह? इसका समाधान कोई कर नही सकता। पर वह समाया हुआ है अवश्य, इसको विना साक्षी के ही मानना पडेगा। आज बहुत वडे उत्सव की रात्रि होगी। दिन गिन-गिन कर जो उत्सव आता है, वह इतना मधुर नही। अचानक पडा हुआ यह पर्व, कल्पना की ओट मे से सहसा निकल आया हुआ बडा मधुर है। आज इस रस की रात्रि को भले प्रकार प्रस्फुटित होने देना। सकोच

और कृपणता दोनो को दूर कर देगे, भय एक झूठी कल्पना है। मै जब विश्व-विजय का अभियान आरभ करूँगा, तो ईरान को अपने राज्य की सीमा से मिला दूँगा कि शीराजी धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रहे।"

परन्तु उत्सव आज नही।"

"फिर कब ?"

"राजकुमार की आँखे खुल जाने के पश्चात।"

"नही नूर, उत्सव का आधा हर्ष प्रतीक्षा मे ही लग जायगा। आज ही सुन्दरि! इसी निशा को चमत्कृत करो। खुसरू का अन्धापन मेरी आँखो मे भी था, वह विगत हो उठा आज। इसलिये मै आज आमोद-प्रमोद मे रत रहूँगा। वे और तुम जो चाहो तब। अविश्वास कुछ होना न चाहिए तुम्हे। राज्य के निर्णय सर्वथा तुम्हारे ही अधीन है प्रेयसि! और तुम्हारी ही ओढनी के छोर मे बँधी हुई है इस सम्राट् की गरदन—नही, मै भूल उठा—अरिरिक्त सुरा-कोष के द्वारो की तालियाँ।" कहकर जहाँगीर ने उसकी ओढनी को पकड लिया—"लेकिन आज तुमने तालियाँ कही और सँभाल दी हैं।"

नूरजहाँ ने अत्यन्त रिस मे भरकर ओढनी खीच ली—"आप इतने बडे साम्राज्य के स्वामी हैं, आपको गभीर होना चाहिए। आयु भी तो अब आपकी वार्धक्य को प्राप्त हो चुकी।"

"गम्भीरता के लिये राजसभा है, मेरा यह कक्ष नही। यदि दिन-भर की गम्भीरता मै यहाँ न तोडूँगा, तो फिर दूसरे दिन के श्रम के लिए कदापि शय्या न छोड सकूँगा। नूरजहाँ ऐसे विचार छोड दो। मै समझता था तुम्हे सदैव यौवनमय बने रहने का रहस्य ज्ञात है। पर इधर चिताओ मे उलझी हुई तुम्हे देख रहा हूँ, उभसे जान पडता है, तुम शीघ्र ही अपने मुख-कमल मे काल की गहरी रेखाएँ गड़ा लोगी। लाओ तालियाँ, कहाँ हैं। आज सुरा-कोष के द्वार मुक्त कर दो। मै चाहे जिस

घोषित नही किया था, तथापि उसे विश्वास था, सम्राट् उसी को मनोनीत करेंगे। राजकुमार खुसरू की आँखे खुल जाने से उसकी आशाओ पर तुहिन पड गया। जब उसने सुना, नूरजहाँ की चेष्टा का फल यह हुआ, तो वह और भी द्वेष से जल उठा।

एक दिन अवसर देकर खुर्रम खुसरू के पास जा पहुँचा, और कृत्रिम हर्ष दिखाकर बोला—"तुम्हारी दृष्टि के खुल जाने पर तुम्हारा यह भाई किसी से कम हर्षित नही है, परतु एक भूल है गई है तुमसे। तुमने युवराज-पद का परित्याग क्यो कर दिया ? किसका दबाव पडा, नई रानी का या महाराज का ?"

"किसी का भी नही राजकुमार! जीवन और यौवन की जो कुछ उमग और आकाक्षाएँ थी, वे सब चौदह-पद्रह वर्षव्यापी अंधकार मे मार्ग निकालने मे ही व्यय हो गई। शेष कुछ नही रहा! लोग कहते हैं, मैं बडी जल्दी बूढा हो गया! उस दिन मैने दर्पण मे अपना प्रतिरूप देखा, बात सच पाई। यह सब चिताओ के कारण हुआ! जाने भी दूँ। क्या करना है राज्य से। अब तो केवल भगवान् की सन्निधि चाहता हूँ दिन-रात। एक बार हज की तीर्थ-यात्रा कर आता, तो जीवन की सारी साधना पूर्ण हुई समझता।"

"आश्चर्य है, पराकमी और विश्व-विजयी सम्राटो का वंशधर ऐसा गत-पौरुष और नपुसक हो गया। जोगी और भिखारी के पुत्र भी इससे बडे जगत् का निर्माण करते होगे।"

"जो कुछ भी कहो, खुर्रम, सब नतमस्तक स्वीकार है मुझे। लोगों के अपवाद सहन करने का अभ्यास-सा हो गया है मुझे।"

"तुम्हारे पुत्र को जो यह युवराजत्व दिया गया है, यह तुम्हारी आँखे खोलकर उनमे धूल डाल दी गई है। यह एक प्राणनाशिनी मरीचिका तुम्हे दिखाई गई है। मै समझता हूँ, यह सब उस नई रानी की करतूत है।'

"मैंने तो उन्हे अत्यत उदार पाया, खुर्रम, यह तुम क्या कह रहे हो ?"

"वह रूपवती जादूगरनी है, उसके रूप के जाले मे सम्राट् अधे हो गए हैं। ससार के इतिहास मे किस सम्राट् ने राज्य के समस्त अधिकार स्त्री को सौप दिए ? किसी ने भी नही। क्या इनकी रानी के समान सुदरियाँ कभी उत्पन्न ही नही हुई। कसी मीठी वाणी बोलती हैं वह, प्रकट मे कैसा उदार व्यवहार है! पर कोई जान नही सकता, विष का दाँत कहाँ पर है।"

खुसरू की नसो मे विचार, नाडियो मे रक्त और नथुनो मे श्वास-प्रवाह जहाँ-का-तहाँ रुक गया।

"तुम विचारशील हो, मै उनके विरुद्ध तुम्हे बलात् नही करना चाहता अपनी बुद्धि का उपयोग करना। तुम मेरे बडे भाई हो, तुम्हारी हित-चिंतना मेरा कर्तव्य है।"

बडी कठिनता से खुसरू बोला—"भाई, मेरा राज्य मे सत्य ही कोई आकर्षण नही, कोई स्वार्थ नही, अत. कोई मेरा क्या कर सकता है। तुम्हे इसका प्रमाण मिल जायगा। मै शीघ्र ही मक्के की यात्रा को चला जाना चाहता हूँ।"

"अच्छ, है, आओ।" अचानक कुछ सोचकर खुर्रम बोला—"साथ ही चलो न ?"

"साथ ही ?',

"हाँ, दक्षिण मे कुछ विद्रोह के लक्षण दिखाई पड रहे हैं। सम्राट् चाहते हैं, मै जाऊँ वहाँ। साथ-साथ चलेंगे। तुम्हे सूरत पहुँचाकर तुम्हारी सकुशल यात्रा का प्रबध कर दिया जायगा। समुद्र की यात्रा में भले प्रकार आत्मरक्षार्थ सैनिक साथियो को रखना ही पड़ेगा। तुम्हारे साथ और कौन-कौन जायँगे ?"

'स्त्री-पुत्रो से मतलब होगा। कोई नही, मै अकेले ही प्रस्थान करूँगा। कुछ दिन स्त्री-पुत्र, बधु बाधव, मित्र-शत्रु सबसे दूर एकात मे

रहने की इच्छा हो गई है। हज की यात्रा इस सुयोग के लिए उपयुक्त साधना है।"

खुसरू सचमुच तैयार हो गया खुर्रम के साथ जाने को। स्त्री ने उसे भी साथ ले चलने की प्रार्थना की, न मानी उसने। नूरजहाँ ने अप्रत्यक्ष रूप से खुर्रम के साथ जाने के लिये वारण किया, उसका भी कुछ फल न हुआ। सम्राट् क्षमाप्रदान करने के बाद भी पुत्र की ओर से उदासीन ही थे।

नियत तिथि को खुर्रम की रण-यात्र के साथ खुसरू की तीर्थ-यात्रा भी चली। जहाँगीर ने इस घटना को कोई महत्त्व नही दिया, पर नूर-जहाँ ने इसमे अपनी बहुत बडी पराजय समझी।

उनके जाने के बाद नूरजहाँ ने सम्राट् से कहा—"कोई प्रतिबंध लगाकर भी खुसरू राजमार खुर्रम के साथ जाने न देना चाहिए था।"

"तीर्थ-यत्रा का उसका एक धार्मिक उद्देश्य, उसमे प्रतिबध! लोग क्या कहते हमसे नूरजहाँ! पर तुम्हे व्यर्थ ही भय है। इसमे कोई राज-नीतिक संधि छिप नहीं सकती। तुम कहती हो—खुसरू राज्य की अकाक्षाओ के लिये सर्वथा वीतराग हो गया है, और फिर वह खुर्रम के साथ है।"

"खुर्रम का साथ, यही तो आकुल करता है मुझे।"

"वे दोनो किसी राजनीतिक लक्ष्य के लिये एक मन प्राण नही हो सकते।"

मार्ग में ही मालवा पहुँचते-न- पहुँचते राजकुमार खुसरू भयानक ज्वराक्रान्त हो गया, और कुछ ही दिन की बीमारी से मृत्यु को प्राप्त हुआ। खुर्रम इस घटना से अत्यत शोकाकुल हो गया। वह समझने लगा, किस मुख को लेकर अब मै राजधानी को प्रत्यावर्तन करूँगा। विद्रो-हियो का दमन अत्यत आवश्यक था। राजकुमार ने यह दु:ख-समाचार लेकर एक सवार आगरे को दौड़ा दिया, और स्वय दक्षिणी सीमा की

स्थिति सुधारने मे लग गया ।

खुसरू की मृत्यु के समाचार से जहाँगीर का अंतपुर शोक की कालिमा से ढक गया । स्वय सम्राट् भी, जिन्होने उस युवराज को पगु कर देने में कोई कसर नही रख छोडी थी, उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यत कातर हो उठे ।

नूरजहाँ बोली—"सम्राट्, यही भय था मुझे । मैने कहा नही था आपसे, पर मै जानती थी भले प्रकार ।"

"आगरा क्या मृत्यु की परिधि से बाहर है ?"

"नही महाराज, यह मतलब नहीं । युवराज के साथ विश्वासघात किया गया है ।"

"कैसा ?"

"उनकी अकाल मृत्यु हो सकती है यह । जान पडता है, उन्हे किसी विष के सयोग···।"

"चुपो, चुपो नूरजहाँ, यह क्या कहने लगी तुम । विना साक्षी पाए ऐसा अनुमान मत करो । आसफखाँ के कान तक यह बात जायगी, तो वह क्या विचारेंगे ।"

सम्राट् ने जाकर विधवा युवराज्ञी को सात्वना दी, और उसके पुत्र को युवराज-पद देने को आश्वासित कर लौट आए ।

खुर्रम दक्षिण का सुप्रबध कर राजधानी मे लौट आया । खुसरू की मृत्यु-समय की कुछ घटनाओ का उसने और उसके साथियो ने स्पष्ट और ब्यौरेवार वर्णन किया । किसी भी श्रोता को संशय करने की कोई जगह न मिली । पर नूरजहाँ के मुख से कभी-कभी किसी विश्वस्त व्यक्ति के सामने खुसरू की मृत्यु का एक गुप्त कारण खुल पडा था ।

बात कही छिपती नहीं । वह शाखा-प्रशाखाओं में प्रस्फुटित होकर फल ही जाती है । नूरजहाँ और खुर्रम के बीच मे द्वेष की आग धधक उठी थी । एक दिन जब खुर्रम के कानों तक बात चली गई तो मानो

घृताहुति पड गई। आसफखाँ ने भी यह बात सुनी, और वह भी भीतर ही-भीतर नूरजहाँ के इस अविचार पर रुष्ट हो गए।

कुछ समय बाद कधहार को फिर ईरानियो ने छीनकर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। उनकी प्रगति को तत्क्षण ही रोकना आवश्यक हो गया। उन्होने खुर्रम को वहाँ जाने की आज्ञा दी।

उसकी अनुपस्थिति में नूरजहाँ राजधानी मे उसके लिये न-जाने किस षड्यत्र की रचना कर दे, इस भय से खुर्रम ने स्पष्ट शब्दो मे वहाँ जाने से अस्वीकार कर दिया।

---

[१०]

जहाँगीर की आज्ञा स्वीकार न की राजकुमार खुर्रम ने। वह उत्तर-पश्चिम में ईरानियो की प्रगति रोकने को तैयार न हुआ।

सम्राट् ने स्वप्न मे भी उस राजकुमार से यह आशा न की थी। वह वीरता-उपासक राजकुमार, रण-उद्योग उसका परमप्रिय आखेट था। उस के लिए स्पष्ट असम्मति दे दी खुर्रम ने, विना कुछ विचार किए ही। सम्राट् गंभीर होकर सोचने लगे—"अवश्य कोई कारण है।" उन्होंने फिर कहा—"राजकुमार! तुम्हे इस प्रकार रण-विरत पाकर अत्यंत चकित और चिंतित हो गया हूँ मैं। तुमने राजपूताना और दक्षिण के युद्धो में प्रचुर उत्साह और पराक्रम प्रदर्शित किया था। मैंने इस चढाई के लिये भी तुम्हे ही चुना, केवल तुम्हारी 'शाहजहाँ' की पदवी सार्थक करने के लिये।"

नूरजहाँ बोली—"राज्य के सेनापति महावतखाँ चुटकियों में ईरा-

नियों को भगाकर लौट आ सकते हैं। कदाचित् अस्वस्थ है राजकुमार, कोई दूसरा प्रबध कर लिया जायगा। राजाज्ञा के साथ-साथ अधिनायक की इच्छा का भी सामंजस्य होना आवश्यक है। तभी तो कोई काम सफल होता है। मै चाहती हूँ, आप राजकुमार को बाध्य न करे।"

खुर्रम जल-भुन उठा। मन-ही-मन दाँत पीसकर कहने लगा—"यह शहरयार को भेजेगी वहाँ। अब कदापि न जाऊँगा मै। अब खुलेगा भेद शहरयार के बल और साहस का।"

"क्यो राजकुमार, क्या कारण है ? शरीर मे कोई अस्वस्थता है ?"

"नही महाराज !"

"फिर ?"

खुर्रम नीरव रहा। उसके मन में नूरजहाँ की भैरवी मूर्ति नृत्य कर रही थी, जो समस्त मुग़ल-साम्राज्य को अकेले ही उदरसात् कर लेना चाहती थी।

महाराज ने फिर पूछा—"खुर्रम !"

नूरजहाँ ने आँखे से संकेत देकर वारण कर दिया महाराज को। उनका अनुरोध शिथिल पड़ गया। खुर्रम बात समझ गया, वह रोष को छिपाए, विना कोई शिष्टाचार दिखाए चला गया वहाँ से।

उसकी पीठ पर ही नूरजहाँ ने सम्राट् से कहा—"देखी आपने खुर्रम की दु शीलता। इसकी भौहो में एक स्थिर वक्रता निवास करती है। इसके हृदय की कुटिलता को खोलने वाला, इसका सदैव तीखा मुख क्या एक सबल साक्षी नही है। मै समझती , हूँ आन वाले वर्षो मे यह हमारा सब से भयकर शत्रु होगा। इसलिये मैं बार-बार सम्राट् की सेवा में अनुनय-विनय करती हूँ, दूध पिलाकर इसका विष न बढाया जाय। राजकुमार परवेज को इस युद्ध का सेनापतित्व दीजिए।"

"परवेज को ?" हँस पडे सम्राट्।

"क्यो महाराज ?"

"वह मदिरा का प्याला अधिक स्थैर्य से पकड सकता है, खड्ग नहीं।"

"नियुक्ति लाकर उपस्थित कर देती है आवश्यक गुणो को। उन्हे नियुक्त तो कीजिए।"

सम्राट् के मन मे कोई दूसरा ही विचार लहरा रहा था। वह बोले—"खुर्रम, बिना यथायोग्य शिष्टाचार-प्रदर्शन किए ही चला गया।"

नूरजहाँ ने घृत की आहुति दी—"इसमें कोई भी सदेह नही।"

"उसने पहले कभी ऐसा नही किया था।"

"उसे भय न दिया जाय, सावधान तो करना ही चाहिए।"

"वह मेरा पुत्र है। राज्य का सेवक है, राज्य के वैभव का भोग करता है, वेतन पाता है, जागीर मिली हुई है उसे। और मै सम्राट् हूँ—सबका स्वामी—उसे मेरी आज्ञा का पालन करना होगा।"

जहाँगीर को खुर्रम पर क्रुद्ध देखकर नूरजहाँ की बहुत दिनो की आशा पूरी हुई। वह बोली—"हाँ महाराज!"

"मैं भेजूँगा उसे कंदहार को। जावेगा नही वह कैसे?"

"जाना पडेगा उसे।" नूरजहाँ ने कहा।

"नूरजहाँ, तुम स्वय अपने हाथ से लिखो राजाज्ञा अभी। मै उस पर हस्ताक्षर करूँगा, अभी भिजवाओ उसके पास।"

"यदि राजा के फरमान का भी उसने निरादर कर दिया, तो?"

"तो मै उसे राज्य से निर्वासित करूँगा, और उसको आश्रय देने वाले की गिनती विद्रोहियो मे लूँगा।"

"यही न्याय है।" नूरजहाँ खुर्रम के लिये आज्ञा-पत्र लिखने बैठी।

आज्ञा-पत्र मे दूसरे ही दिन कदहार के लिये रण-अभियान लेकर जाने को बाध्य किया गया था खुर्रम। एक विश्वस्त सरदार बुलाया गया उसी समय।

सरदार को आज्ञा-पत्र देते हुए सम्राट् ने कहा—"यह ले जाकर अभी राजकुमार खुर्रम को दो। अत्यत आवश्यक है। वह जहाँ भी हो,

वही जाकर उनके हस्ताक्षर कराकर लाओ।"

जहाँगीर की आज्ञा की अवहेलना कर चला आया खुर्रम। वह समझ गया, एक विषम गति ले चुका वह। उसने निश्चय किया—"लौटूँगा नही अब, लौट सकता नही। यह जीवन की रिपु नूरजहाँ, लौटने देगी नही। अत्यंत परिश्रम-पूर्वक पिता की सद्भावनाओ का अर्जन किया था, छिन्न-भिन्न कर बिखरा दिया इसी ने। मै अपने ससुर के संबंध के कारण इससे चुप हूँ, नही तो अभी तक कभी इसका आसन हिला देता। बहुत स्थिर और स्पष्ट पग बढाने पडेगे अब। कठिनाइयो की धूसर पर्वत-माला दिखाई देने लगी है मुझे। वे चालीस सरदार, जिन्होने राजपूताने की चढाई मे मन-प्राण से मेरी सहायता की शपथे ली थी, मै फिर उनको अपने साथ कर लूँगा। मुझे उनका भरोसा है, और उन्हे मेरा विश्वास। प्रधान मंत्री आसफखाँ, मै बल-पूर्वक उन्हे अपनी ओर खीच लूँगा, और सेनापति महावतखाँ, वह कूट राजनीतिज्ञ, आरंभ मे मै उसकी राजभक्ति शिथिल न कर सकूँगा, पर कुछ मैदान सर कर लेने पर, कुछ पराक्रम प्रदर्शित कर लेने पर साम्राज्य के कल्याण के लिये मैं उसे भी विवश कर दूँगा।"

शयन-कक्ष में पहुँचकर खुर्रम शय्या पर पड गया था। भविष्य का भयंकर मानचित्र उसके मस्तिष्क में खुदता हुआ चला जा रहा था। धीरे-धीरे आँख लग गई उसकी, पर वह स्वप्न नही देख रहा था। उसे ज्ञात न था, समय वेग से बहने लग गया था, उसके धूसर दृश्यो को अत्यंत समीप रख देने को।

अर्जमंद बानू ने प्रवेश किया फूलो की चापों से, धीरे-धीरे वह राजकुमार के निकट गई।

खुर्रम आँखें खोल, उठकर बैठ गया।

"शरीर में असुख है?"

"नही-तो।"

"श्रांत हो ?"

"वह भी नही ।"

"फिर ?"

पति शय्या त्यागकर उठ खड़ा हो गया। बोला—"सुंदरि ! मैं प्रलय को छेड़कर जगा आया हूँ।"

बानू अबूझ और आकुल होकर खड़ी रह गई।

"मै विद्रोह को झकझोर चुका हूँ, राजविद्रोह को !"

बानू काँप उठी—"हैं-हैं ! यह क्या कह रहे हो ?"

सम्राट् के विरुद्ध नही, सम्राज्ञी— तुम्हारी बुआ के विरुद्ध !"

"इसमें कोई अंतर नही । सम्राज्ञी का विद्रोह सम्राट् का ही विद्रोह है। नही-नही, तुम्हे विचार करना चाहिए। क्या तुम अपनी इस विवेक-हीनता से हम सबकी दुर्दशा न कर दोगे। बड़े भाई का यह आदर्श क्यों प्रिय हो गया तुम्हे। तुम्हारे इस आचरण से क्या मेरे पिता भी कष्ट में न पड़ जायँगे ?"

"क्यो पड़ जायँगे ? साहस रक्खो। जब तक वह खुले रूप से सेना और कोष द्वारा मेरी सहायता न करेंगे, तब तक कोई कुछ नही कर सकता। यदि सम्राट् इतना संकुचित हृदय रखते होंगे, तो फिर समझ लो विजय मेरी होगी। सारा साम्राज्य तुम्हारे पिता की बुद्धि पर स्थिर है, सम्राट् और सम्राज्ञी, ये दोनों इस हाथी के दिखावे के दाँत हैं। वह कदापि इतनी सरलता से मेरा पक्ष न लेंगे, और सम्राट् मेरे इस आचरण का उत्तरदायित्व उन पर रक्खेंगे। और तुम ! क्या तुम्हारी प्रेरणा मेरी पथ-प्रदर्शिका है।"

"क्या करना चाहते हो तुम, क्या कर आए हो ? मैं अभी पिता के पास जाकर उनसे विनय करूँगी कि वह तुम्हे समझा दे। मैं जानती हूँ, तुम मेरी अनुनय पर ध्यान दोगे नही ?"

"ठहरो, विचलित न होओ अभी। केवल एक चिनगारी उठा आया

हूँ, ज्वाला सुलगते दिन लगेगे, अभी संभव है, बुझ भी जाय। फिर दूसरी चिनगारी उठाऊँगा।"

एक दासी ने आकर कहा—"सम्राट् का एक आवश्यक आज्ञा-पत्र लेकर एक अश्वारोही सरदार आए हैं। वह इसी समय आप से मिलना चाहते है।"

खुर्रम का माथा ठनक पडा। उसने सोचा—"चिनगारी बुझी नही जान पडती।" दासी से बोले वह—"कह दो, राजकुमार घर पर नही हैं।"

दासी के जाने के पश्चात् वे दोनो पति-पत्नी सन्न रहकर उसके प्रत्यावर्तित चापो की प्रतीक्षा करने लगे।

दासी ने शीघ्र ही लौटकर कहा—"वह पूछते हैं, राजकुमार कहाँ गए हैं। कहते है श्रीमती जी से पूछकर मुझे अभी उनका पता बताओ। अभी उनको राजाज्ञा से अवगत कराना है।"

खुर्रम बोला—"कह दो, घोड़े पर चढकर न-जाने कहाँ गए हैं। अत.पुर मे किसी से भी कुछ नही कह गये हैं।"

दासी के जाने पर अर्जमद बानू ने कहा—"बाहर जाकर मिल क्यो नहीं आते सरदार से। हानि ही क्या हो जायगी।"

"हानि की कल्पना तुम क्या कर सकोगी बानू! मै जानता हूँ, खुर्रम को सर्वथा खा जाने का आज्ञा-पत्र है वह।"

बानू अश्चर्य की मुद्रा से देखने लगी पति को।

"हाँ-हाँ, पति के निश्चय मे ही बिश्वास रखना होगा तुम्हे। इसके सिवा और कोई मार्ग ही नही है बानू। सम्राट् के आज्ञा-पत्र मे जो भी लिखा हो, मुझे उसका विरोध करना है। अभी जाकर विरोध करता हूँ, तो मुझे अपनी रक्षा के लिये अवकाश नही मिलता। इसलिये चुप रहो, देखती जाओ, मैं क्या करता हूँ। मेरी बात का विरोध न करो।"

दासी आकर बोली—"सरदार घोडे पर सवार होकर चल गए।

वह कह गए है कि यदि राजकुमार वापस आ जाँय, तो उन्हे रोक लेना। उनका पता कही न मिला, तो मै फिर लौटकर अभी आऊँगा।"

खुर्रम ने कहा—"जाओ, तुम बाहर ही रहो, कह देना अभी नही आए।"

दासी चली गई।

"अकेले ही राजकुमार? कौन तुम्हारा सहायक होगा? युवराज खुसरू के साथियो का रक्त अभी प्रजा की स्मृति पर से धुला नही है। फिर तुम्हारे लिये कौन तैयार हो जायगा?"

"उन्होने अदूरदर्शिता से काम लिया था, और उनके साथी लोभी थे, कर्त्तव्य की पवित्र भावना थी नही उनमे। सैनिक मृत्यु से भयभीत हो, यह उसके लिए लज्जा की बात है। युवराज खुसरू के साथियो के दु.खद परिणाम से मेरे साथियो का बल बढेगा, वे प्राणपण से मेरा साथ देंगे कि मेरी पराजय न हो, और वे सम्राट् के दड के लिये न पकड लिये जायँ।"

"मिल सकेंगे ऐसे साथी?"

"मिले हुए हैं। राजपूताना और दक्षिण भारत मे मै उनकी अग्नि-परीक्षा भी ले चुका हूँ।"

"तब वे साम्राज्य के साथ थे अब केवल अकेले तुम्हारे ही!"

"प्रश्न तब भी साम्राज्य का ही है। नूरजहाँ उस दुर्बल, विलासी और मूर्ख शहरयार को राजसिंहासन सौंपना चाहती है। उसके हाथों में कुछ भी सुरक्षित न रह सकेगा।"

"नही-नही तुम बहुत शीघ्रता मे यह निर्णय कर रहे हो।" बानू ने खुर्रम को उसी समय कटि बाँधते हुए देखकर कहा।

"स्त्री-सुलभ दुर्बलता से मेरे उत्साह को क्षीण न करो। हाँ, मै अभी चल दूँगा।" खुर्रम कवच धारण करने लगा।

रोती हुई बानू ने उसके हाथ पकड लिये—"नहीं, दो-चार दिन अभी

और ठहर जाओ ।"

"असभव है ।"

"केवल आज की रात !"

"वह भी नही ।"

"पिता से परामर्श ले लो ।"

"कदापि नही ।"

"हे भगवान् !" बानू रोने लगी ।

"मै नही समझता था तुम इतनी दुर्बल-हृदया हो । सदार अभी फिर आवेगा, उसके आने से पहले मुझे चल देना चाहिए । राजधानी के निवासियो से बच निकलने को मुझे कुछ वेश बदलना ही पडेगा । अधिक सहायता यह तीव्र गति से बढता हुआ सध्या का अधकार कर ही देगा मेरी । बहुत थोडा समय है । सहस करो, और साहस दो । यही केवल मुझे कहना है ।" तैयार होने लगा ।

"कहाँ जाओगे तुम ?"

"यह सब तुमसे भी प्रकट करने की बात नही हैं । यह न पूछो ।"

"हमारा क्या होगा । मेरे छोटे-छोटे पुत्र, हम कैसे जीवन धारण करेंगे ?"

तुम्हारे पिता तुम्हें कदपि न कष्ट मे पडने देगे ।" खुर्रम ने दीवार पर से अपनी तलवार और एक ढाल उतारकर पहन ली । वह परिचय से अतीत हो गया था । बोला—"फिर तुम्हारा और तुम्हारे अबोध पुत्रो का इसमे क्या अपराध है ।"

पति को प्रस्थान पर तुला हुआ देखकर बानू अधिक और कुछ न कह सकी ।

खुर्रम ने अपने पटुके के छोर से उसके आँसू पोछकर कहा—तुम निश्चिंत रहो । तुम्हे भारत की सम्राज्ञी बनाने की आकाक्षा मन मे रख कर मै जा रहा हूँ ।"

अचानक निकट ही किसी बालक के स्वर और चापे सुनाई पड़ी।

खुर्रम की बिदा वेगवती हो उठी, वह कहने लगा—"कौन। दारा है! इसके कारण प्रस्थान विलंबित हो जायगा। बानू! बिदा!" वह मकान के पिछवाडे से निकल गया।

दारा ने माता की उँगली पकड कर कहा—"अभी-अभी इस मार्ग से कौन गया मा?"

"मै नहीं जानती। कोई प्रहरी या सेवक गया होगा।"

"नही।" बालक दारा सोच में पड गया।

मा ने पूछा—"और बालक कहाँ हैं?"

"खेल रहे हैं धाई के साथ उपवन में।"

"तुम क्यों चले आये?"

"एक घुडसवार अभी कुछ देर हुए आया था। मुझसे पूछता था पिता कहाँ है?"

"तुमने क्या उत्तर दिया?"

"भीतर ही तो थे वह, यही कह दिया। कहाँ गये वह मा!"

"बाहर चले गये। मै नहीं जानती कहाँ। राजपुरुषों की समस्त योजनाएँ राजरमणियो पर कहाँ प्रकट रहतीं हैं।"

अश्वारोही सरदार ने बिजली के वेग से आगरे की परिक्रमा की। उसने जाकर तमाम तोरण-द्वारो पर पता लगाया। राजकुमार के नगर से बाहर जाने का समाचार किसी ने नहीं दिया। उसने सतोष की साँस ली, और मन मे कह ने लगा 'न—गर ही में तो हैं, ढूँढ ही लूँगा सध्या होते-न-होते। पर ढूँढू कहाँ? गभीर प्रकृति का यह राजकुमार गोष्ठी और मडलियों से घृणा करता है। कोई भी अतरग मित्र नहीं है उसका, यह मै जनता हूँ। प्रधान मत्री मिर्जा आसफखाँ के यहाँ? राज्य के पदाधिकारी हैं, और राजकुमार के श्वसुर ठहरे, सभव है, वहीं होगे। मिल जावेगे। बडा विलब हो गया, इस सुसमाचार को उनके पास तक पहुँचते-

पहुँचते ।"

परंतु जब सरदार प्रधान मत्री के यहा पहुँचा, तो राजकुमार वहाँ भी नही मिले। वह फिर खुर्रम के भवन मे गया, जिज्ञासा की—'राजकुमार लौट आए ?"

एक सेवक ने उत्तर दिया—"नही ।"

"कितनी देर हुई उन्हे गये ?"

यह भी कोई नही बता सका सका सरदार को। आज्ञा-पत्र वही छोड आने की भी राजाज्ञा न थी उसे । घोडे को एक वृक्ष से बाधकर बैठ गया वह सरदार उपवन की एक चौकी पर।

राजकुमार प्रस्थान कर चुके थे उस समय तक। एक दासी और अर्जमद बानू के सिवा और कोई न जानता था इस बात को। कुछ भ्रम मे पड़ा हुआ था राजकुमार दारा। उस सरदार को फिर आया देखकर वह उसके निकट चला गया।

सरदार ने उसे पहचानकर बुलाया अपने पास, कहा—"राजकुमार !"

तुम्हे देखकर भय लग रहा है मुझे। तुम ऐसी तत्परता से क्यो मेरे पिता का पीछा कर रहे हो ?"

"मै उनके लिये एक शुभ-सवाद लाया हूँ ।"

दारा ने नाक-मुँह सिकोड़े।

"मै उन्हे रणपति बनाने की राजाज्ञा लेकर आया हूँ।"

"सिहासन-पति नही ?"

"सिहासन-पति हैं ही वह।"

"तब तो एक दिन मैं भी सम्राट् बनूँगा क्यों सरदार, सम्राट का सबसे बड़ा पुत्र ही तो सिहासन का अधिकारी होता है।" अचानक दारा को कुछ याद आया—"परंतु राजकुमार परवेज तो मेरे पिता से बड़े हैं।" सोचते-सोचते दारा उदास हो गया।

सरदार बैठे-बैठे जँभाई लेने लगा था। सध्या के सूर्य ने छाया बढा-कर प्रकाश आधा कर दिया था

"आप चले जायँ, कहाँ तक प्रतीक्षा करेंगे। हम यह समाचार उन्हें देंगे।"

नही राजकुमार! केवल उन्हे सूचित करना ही नही है। उनके हस्ताक्षर लेने हैं सम्राट् के आज्ञा-पत्र में।"

"मै कर दूँगा हस्ताक्षर।"

हँसकर सरदार ने कहा—"नही राजकुमार!"

संध्या बीत गई। जब रात्रि का अंधकार व्यापने लगा, तो सरदार उठा, अपने स्थान पर नियुक्त करने के लिए एक प्रहरी को बुला लाया। उससे कह गया; राजकुमार के आते ही मुझे तत्क्षण सूचित करना।

राजभवन मे पहुँचकर जब सरदार ने सम्राट् और सम्राज्ञी को यह समाचार दिया, तो वे दोनो आश्चर्य मे पड गये।

सरदार बोला—"पाँच घंटे से मै घोडे की पीठ पर समस्त राजधानी का कण-कण छान आया हूँ, कोना-कोना ढूँढ आया हूँ, राजकुमार का कही पता नही है। घर पर भी नही हैं, उनके स्त्री-पुत्र भी कहते हैं कि उनसे कुछ कह नहीं गए हैं। साँच-झूठ भगवान् जाने।"

नूरजहाँ ने पूछा—"क्या आपको यह संशय है कि राजकुमार भवन के भीतर छिपे हैं?"

"छिपने की आवश्यकता कैसी, पर मै ठीक-ठीक अनुमान नही कर सकता।"

नूरजहाँ रोष मे भरकर बोल उठी—"सशस्त्र सैनिकों की टोली ले जाकर राजकुमार का भवन घेर दो।"

सम्राट् ने उसे शांत करते हुए कहा—"उत्तेजना मे न आओ नूरजहाँ। क्या अर्थ सिद्ध होगा इससे?"

"मेरा अनुमान कहता है, राजकुमार अपने घर मे ही छिपे बैठे हैं,

और इस प्रकार वह महाराज की अप्रत्यक्ष अवज्ञा करना चाहते हैं।"

सम्राट् ने सरदार को बिदा कर नूरजहाँ से कहा—"खुर्रम अपने सकल्प मे बडा दृढ है। वह सेना और सरदारो में प्रिय और परिचित है, स्वय वीर और साहसी है। उससे अकारण ही कलह मोल ले लेना हमारे लिये भय का कारण होगा।"

"इसीलिये तो मै बराबर महाराज से उसका उत्साह न बढाने की प्रार्थना करती चली आई हूँ और इसीलिये मैने सदैव राजधानी मे उनके हामियो की सख्या घटाई है। नही, उनका भय सम्राट् को हो, यह बडी लज्जा की बात है।"

"एक बात पूछता हूँ नूरजहाँ! मिर्ज़ा आसफखाँ, साम्राज्य के प्रधान मत्री तुम्हारे भाई और राजकुमार खुर्रम के श्वशुर, समय पड़ने पर किसकी सहायता करेगे?"

"कैसा समय पड़ने पर?"

"तुम्हारे और खुर्रम के बीच का मतभेद जब चरम सीमा पर पहुँच जायगा, तब?"

"उन्हे मेरी सहायता करनी होगी।"

"वह करेगे नही तुम्हारी सहायता। जो कुछ करेगे, वह केवल एक प्रपच और दिखावा-मात्र होगा।"

"यदि उन्होने ऐसा किया, तो वह घोर विश्वासघात के पातकी होगे। क्या मेरी प्रसन्नता के लिये ही उन्हे प्रधान मत्री का पद नही मिला है?"

"इससे क्या होता है? जगत् घोर स्वार्थ से ढका हुआ है। कितने मनुष्यो को यह याद रहता है। अब तो वह प्रधान मत्री है न? हम-तुम समझते हैं, राज्य-सूत्र हमारे हाथ में है। वह केवल शोभार्थ, प्रकृति-सचालन कहाँ से होता है, हम दोनो इससे अनवगत नही। बडे पोले और थोथे सबध हैं इस संसार मे नूर! स्वार्थ, घोर स्वार्थ ही सबसे बडा नाता

है, उसी के पीछे मनुष्य अधा है। इसीसे मै तुमसे कहता हूँ, थोडी-सी सुरा का सेवन करो। एक अद्भुत दार्शनिकता जाग उठेगी तुम्हारे। जगत का प्रकृत स्वरूप अपनी पूर्ण स्पष्टता मे खिच उठेगा तुम्हारे नेत्रो मे। भगवान् और उसकी सृष्टि, फिर किसी के प्रति कोई उलाहना न रहेगा तुम्हारे।"

"कितनी गभीरता को तुम कैसे परिहास से उडा दे रहे हो?"

"कोई गभीरता नही, राजकुमार परवेज् को भेज देंगे कदहार के युद्ध मे।"

"राजकुमार खुर्रम ने यदि विद्रोह कर क्षमा कर दिया, तो?"

"उसे विजित कर दिया जायगा।"

"क्षमा?" बड़ी हेला के साथ उसने सम्राट् को देखा।

"हाँ नूर, खुसरू का अत एक बड़ी भयानक स्मृति है मेरे पास। मैं कदापि अब उस भूल को नही दुहराऊँगा। ये भवन, सिंहासन हमारे चिरनिवास नही हैं। यात्रा के केवल एक विश्राम-स्थल, रैन के बसेरे हैं। कुछ करना है अवश्य, इसलिये हँसता भी हूँ, और रोता भी हूँ। तुम मेरी विलासिता को कोसोगी। वह जीवन का एक अभ्यास है। प्राण रहते वह छूट सकता नही। क्या मध्यवित्त की रोटी, निर्धन का और धनी का पुलाव, मध्यवित्त का विलास नही है। मैं दारिद्र्य की ही सीमा पर पहुँच गया हूँ। जिस नवीन सुख की कामना करता हूँ, वह मेरे वश मे नही है। वश मे न होने के कारण ही मैने उसे तुच्छता दी है। इसीलिये जहाँगीर की पदवी पर काई जम गई। सच कहो नूरजहाँ, क्या राज्य-विस्तार की कामना सुरा-पान बढा देने के तुल्य नहीं है? हे रूप की प्रतिमे! मैने ससार मे सबसे श्रेष्ठ तुम्हे ही समझा।"

नूरजहां ने सम्राट् को अविश्वास की दृष्टि से देखा—"नही महाराज, यदि ऐसा होता, तो आजराजकुमार का यह साहस न होता। जब तुमने उन्हे शाहाजहा की पदवी दी थी, तो मैने उसका घोर प्रतिवाद किया था। अब

हमे उसका फल भोगना पडेगा ।

"जहाँगीर के न्याय मे अतर आता ।"

"राजा का न्याय उसकी कल्पना और मन्त्रियो की तीव्र बुद्धि का समर्थन है ।"

"ठीक है, प्रधान मत्री मिर्जा आसफखाँ, उनकी भृकुटियो को भी तो सम रखना था मुझे । पर तुम्हे खुर्रम की ओर से व्यर्थ ही चिता हो गई है । इस चिंता मे अपने सौंदर्य की बहुत-सी श्री घुला दी है तुमने, मै कहता हूँ, आयु का यह प्रभाव नही हुआ है ।"

"खुर्रम का भय यह एक कल्पित वस्तु नही है सम्राट् । आपको इस उदारता के लिये शीघ्र ही पछताना पडेगा ।"

"आसफखाँ का अकुश रहेगा खुर्रम पर, और वह प्रधान मत्री उदार है, इसी से बुद्धिमान् है; धर्म-भीरु है इसी से अपने उपकारो पर मैने सदैव उसका मस्तक विनत पाया है ।"

"देखो, फिर क्या होता है ।"

"अचानक कही आखेट के लिये चला गया होगा राजकुमार । विद्रोह क्या इस प्रकार बरात निकाल देने के तुल्य है, वह मस्तको का सौदा है । भूल जाओ, यह सब एक कल्पना है—छाया और परिमाण-विहीन एक आभास ! उस पर ध्यान जमाकर अपनी पीडा न बढाओ ।" सम्राट ने सुराही को आकुल पिपासा से देखा ।

राजकुमार खुर्रम रात को भी लौटकर नही आया । एक, दो, तीन, दिन ..एक सप्ताह बीत गया । खुर्रम के अंत.पुर मे अर्जमद बानू और एक-दो दासियो के अतिरिक्त किसी को उसका प्रस्थान ज्ञात न था । क्यो वह राजकुमार गया है, इस बात को केवल बानू जानती थी, कहाँ गया है, इसे कोई भी नही । खुर्रम पत्नी और दासियो को गभरी चेतावनी दे गया था कि उसके प्रस्थान की चर्चा यत्न-पूर्वक छिपी ही रहे ।

मिर्जा आसफखाँ पहले ही दिन बडी चिंता मे भरकर अर्जमद बानू

के पास गए, और राजकुमार के बारे में पूछा उन्होने । बानू बडी असमंजस मे पड गई, अंत मे विवश होकर जो कुछ ज्ञात था, उसे कह दिया उसने । आसफखां ने धैर्य की साँस ली । कुछ विचार किया, हँस पडे, और पुत्री को चिंता न करने का उपदेश देकर चल दिए ।

समस्त राजधानी मे इस समाचार को फैलते क्या देर लगती । कोई अनुमान लगाता, राजकुमार को सम्राज्ञी ने देश-निर्वासित कर दिया है । कोई कहता पत्नी से कलह कर भागे हैं, शीघ्र ही क्रोध शात होने पर लौट आवेगे । कोई सोचता, महाराज ने किसी गुप्त राजनीतिक अभिसधि के लिये उन्हे कही भेज रक्खा है ।

सम्राट् जहाँगीर पुत्र के इस सहसा अतर्द्धान हो जाने पर सचित हो गए । वह सोचते, क्या बात हो गई किसी शत्रु ने कही राजकुमार की हत्या तो नही कर दी । इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा विचार नही ठहरा उनके मस्तिष्क में ।

नूरजहाँ सतर्क हो गई उसी क्षण से । उसे पक्का विश्वास हो गया था, वह कूट राजकुमार किसी गहरे षड्यत्र के लिये या राजधानी में छिपा है, या कही बाहर मत्रणा कर रहा है, और साधन जुटा रहा है । उसने चारो ओर गुप्तचरो की सेना भेज दी । उसने राजधानी की रक्षा के लिये रात-दिन सेना और सेनाध्यक्षो को तत्पर रखने का प्रबध किया । वह सूबेदारो के पास साम्राज्य-भक्ति के उपदेश और आज्ञा के पत्र भेजने लगी सवाद-वाहको के हाथ । खुर्रम की गतिविधि ने ही उसका ध्यान खीच लिया, ईरानियो के प्रतिरोध की कोई चिंता ही न रही उसे ।

अनति काल मे आगरे समाचार पहुँचा कि राजकुमार खुर्रम ने बिहार और बगाल के प्रांत अधिगत कर अपने को स्वतत्र सम्राट् विघोषित कर दिया है ।

जहाँगीर यह समाचार सुनकर हँस दिए—"मूर्ख राजकुमार, यदि यही उसकी आकांक्षा थी, तो मै कब इसे अस्वीकार करता । वह जब

चाहता, मै उसे वहाँ की सूबेदारी दे देता।"

"अब कहिए सम्राट्, दड का विधान कीजिए शीघ्र-से-शीघ्र।"

"दंड का विधान, नही नूरजहाँ, ठहर जाओ। बालक ही समझो उसे अपना, है ही। देखती जाओ, किस प्रकार वह बिहार और बगाल के इन दोनो खिलौनों से खेलता है। बडा आनद आवेगा!"

"किस फेर मे है सम्राट् आप? क्या यह एक बडा मोहक, उज्ज्वल आदर्श न हो जायगा अन्य सूबेदारो के लिये? मुगल-साम्राज्य के धागो को काट-काटकर एक के बाद दूसरा स्वतत्र होता जायगा, और महाराज की रस-जिज्ञासा परिपूरित होगी।"

नूरजहाँ की ताडना से कुछ गभीर हुए सम्राट्—"फिर क्या करना उचित है।"

"सेनापति महावतखाँ को अधिक-से-अधिक सेना का सचालन देकर भेज दीजिए पूर्व को, इसमे तनिक भी दीर्घसूत्रता न हो। वह जाकर अराजको का दमन करें; उन्हे दड दे, और विद्रोह के नायक राजकुमार खुर्रम को पकडकर आगरे ले आवे न्याय के लिये।"

"महावतखाँ कदहार की रण-यात्रा के लिये प्रस्तावित है। वही इस समय साम्राज्य का सबसे अधिक चिंता करने योग्य विषय है।"

"वहाँ सेना लेकर आप जाइए।"

"मै? नूरजहाँ!" बड़ी अशक्यता दिखाकर जहाँगीर ने कहा—"तुमसे बात छिपी नही है, पाचन क्रिया दुर्बल हो गई है मेरी। शरीर में दिन-दिन शक्ति का ह्रास पाता हूँ। देख ही रही हो, आखेट कितना प्रिय विनोद था मेरा, निकटतम जंगलो मे जाने की भी उमग नही उठती मन मे।"

"खुर्रम को ईरानियो से कुछ कम शत्रु न समझिए। दोनो ने आपके विजित देशो को दबा लिया है। दोनो के समान अपराध हैं, दोनो को एक-सा ही दंड मिलना चाहिए। आप अपने निश्चय से दृढ रहिए।

कंदहार के लिये सेना के सूत्र मैं धारण करती हूँ अपने हाथो में।"

'तुम ?" आश्चर्य मे डूबकर सम्राट् ने कहा।

"हाँ महाराज, युद्ध का सचालन साहस और सूझ का व्यापार है। हृदय और मस्तिष्क की शक्ति का निदर्शन है। इसमे नारीत्व और पुरुषत्व कोई अतर नही उपजाते। यदि मन सेना का साहस जगाकर स्थिर नही रह सकता, तो सेनापति का व्यक्तिगत दृढ और पुष्ट शरीर किस काम का ? हाँ महाराज, मै सेना-नायिका हो सकती हूँ। आपको इसमे कोई शका न करनी चाहिए।"

"नही नूर, तिल-भर नही। तुम्हारे रूप के अनुशासन में जब सम्राट् का जीवन बधक है, तो फिर उसके सेवको की गिनती ही क्या ? वीरागने ! तुम्हारी इस तेजस्विता का अभिनदन करता हूँ मैं। सैन्य-सचालन के लिये प्रस्तुत तुम्हारे मुख मे जो प्रकाश उपजा है, उससे मेरी नाडियो का रक्त नवीन हो गया, और मै रोग को विजित पाता हूँ।"

"अच्छी बात है फिर, आज ही इस विधान की लिखित कार्यवाही हो जाय।"

"हो जायगी, उसमे क्या देर लगती है। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।"

"अच्छी बात है।"

"पर कदहार को नही, खुर्रम को शात करने के लिये।"

"खुर्रम का विद्रोह कहिए। नही राजन् ! आप यहीं से इतने उदार हैं, वहाँ जाकर और भी दयार्द्र हो जावेंगे। साम्राज्य के हितों पर इससे कुठाराघात होगा। न्याय कहता है, अपराध की भूमि पर पुत्र और एक साधारण प्रजा की इकाई इन दोनो की समान ही अवस्थिति है।"

"दया न्याय का शृगार है नूरजहाँ। अकारण दया नही, जहाँ पर चाहिए वहाँ। फिर खुर्रम से केवल कठोरता के ही व्यवहार से प्रधान मत्री के हृदय मे क्या कम आघात पहुँचेगा ? क्या फिर उनकी वर्षों की

स्वामिभक्ति मे अतर न पड जायगा ? पिता द्वारा तिरस्कृत पुत्र अवश्य-मेव श्वशुर की समवेदना का पात्र हो जायगा। जिस प्रधान मत्री ने अपनी बुद्धि के कौशल से बराबर हमारा साथ दिया है, वह हमसे विभक्त हो जायगा।"

"हो जाने दो महाराज ! हम अपने आधार पर स्थिर होगे। चिता छोड दीजिए। मै आपको पथ-निर्देश करती हूँ। मै रण मे आपके प्रधान सेनापति के कर्तव्य धारण कर लूँगी। मै सभा-गृह मे आपके प्रधान मत्री का स्थान अधिकृत कर लूँगी।"

"चलो फिर नूरजहाँ, जिधर सकेत करती हो, उधर ही। जब सब कुछ तन और मन तुम्हें समर्पित कर चुका हूँ, तो फिर तुम्हारे विचार से असाम्य रखना ठीक नही है। कहो फिर, कहाँ, किधर ?" जहाँगीर आसन छोड़कर सहसा उठ पडता है। वह लडखडाया।

नूरजहाँ ने हाथो का सहारा देकर सँभाल लिया उसे।

"कहो, फिर तुम क्या चाहती हो ?" सम्राट् बोले।

"पर्याप्त उपकरणो के साथ शीघ्र-से-शीघ्र सेनापति महावतखाँ को पूर्व को भेजिए कि वह तुरत ही खुर्रम को पकडकर राजधानी में ले आवे कि उस विद्रोही राजकुमार का न्याय हो। कन्दहार के लिये किसी अन्य योग्यतम सेनापति को ससैन्य भेजिए। खुर्रम से निश्चित होने तक आशा तो है ईरानियो को भी दबा लिया जायगा।"

ऐसा ही किया गया। दो ही दिन मे महावतखाँ ने एक विशाल सेना को लेकर पूर्व के लिये प्रस्थान किया। जाते समय तक नूरजहाँ ने सेनापति के कानो में बराबर यही मत्र फूँका कि जैसे भी हो, वैसे खुर्रम को पकड़कर राजधानी लाना होगा।

सेना के प्रमुख उपनायको को जगाकर नूरजहाँ ने उच्च स्वर में कहा—"यह घर के भीतर से फैलने वाली अग्नि अत्यत भयंकर है। यह पूर्व मे नही, राजधानी मे सुलगती हुई समझनी चाहिए। यह एक

प्रजा-प्रिय न्यायनिष्ठ सम्राट् की व्यवस्थित प्रजा में निर्दोष रक्त बहा देने की गर्हित पाप-चेष्टा है। राजकुमार खुर्रम के प्रति हमने अपने सभी कर्तव्य चुकाए हैं। बराबर उनका उत्साह बढाया गया, भाँति-भाँति से उनकी प्रतिष्ठा की वृद्धि की गई। क्या उन्होने यह उचित किया है ? कदापि नही। एक दयालु और उदार पिता का विद्रोह ? फिर अकारण ही ? क्या यह सह्य हो सकता है ? कदापि नही। क्यों उन्हे एक अपराधी न समझा जाय। क्यो न वह राजधानी में पकड मगाएँ जायँ, और एक विद्रोही की भाँति उनका न्याय हो ?" नूरजहाँ ने समस्त सरदारो की ओर अपनी दृष्टि फिराई उनका आशय जानने के लिये।

सबके मुख और होठो पर से यही प्रकट हुआ—"अवश्य होना चाहिए।"

नूरजहाँ ने फिर कहा—"राजकुमार से मेरा कोई वैमात्रिक द्वेष नही समझा जाना चाहिए। उनके साथ मेरा दोहरा संबध है। वह मेरे भाई के जामाता है, मेरे भी हुए। खुसरू—वह अभागा युवराज, किसी अश मे उनका अपराध न्यायानुमोदित था, वह सम्राट् अकबर के मनोनीत थे। स्वभावत ही उनके मन में विद्रोह उत्पन्न होना स्वाभाविक था। कितने कठिन दड को चुपचाप सहन किया उन्होने ! पिता की कठोरता हो सकती है यह, सम्राट् की नही।" उस रमणी ने फिर समस्त श्रेताओ को निहारा।

वे सब-के-सब प्रवाहित थे उसी के साथ। उन सबने कहा—"सत्य ही है महारानीजी।',

नूरजहाँ ने कहा—"और युवराज खुसरू की मृत्यु यह एक अप्रकट रहस्य है। प्रत्यक्षदर्शी कहते हैं, इसका उत्तरदायित्व राजकुमार खुर्रम पर ही है।"

अनेक सरदार यह सुनकर स्तभित हो गए।

"मेरा कोई स्वार्थ नही है अपना। मैं अपने जामाता को युवराज

नही बनाना चाहती । युवराज खुसरू का वह बालक, न्याय उसी की ओर है, दया-धर्म उसी की ओर सकेत करते हैं । पिता जिस सिंहासन के लिये आजन्म अधकार और अकाल मृत्यु का ग्रास हुआ, उनका पुत्र उस सिंहासन पर सुशोभित होकर अपने अधिकार का उपभोग करे ।"

"धन्य हो सम्राज्ञी ! यही सर्वथा उचित है ।"

"तब उन्हे पकडकर ले आओ । यही एकमात्र लक्ष्य है । विद्रोह अपने आप दब जायगा । जैसे भी हो, जिस प्रकार भी हो, बदी कर लाओ, यही सम्राट् की आज्ञा है ।"

सबने सम्राट् की ओर देखा । नूरजहाँ ने भी । सम्राट् के मुख पर कोई भी विरोधी रेखा न खिची ।

राजकुमार खुर्रम को पकडकर लाने वाला अच्छी तरह पुरस्कृत किया जायगा । मैं सोने-चाँदी के सिक्को से सम्राट् की तुला करूँगी, और वह समस्त भार उस पितृ-विद्रोही के पकडने वाले को भेट दूँगी ।"

इस पुरस्कार की घोषणा सुनकर अनेक सरदारो के मुँह मे पानी भर आया । एक सरदार मन मे सोचने लगा—"राजकुमार के बधन का उचित मूल्य हो सकता है यह, पर सम्राज्ञी का कोषाध्यक्ष उसमे चाँदी के सिक्को का अनुपात अवश्य ही अधिक कर देगा । मै जानता हूँ उसे । ऐसा समझता है, वह मानो सब कुछ उसके वेतन मे से कटता है ।"

सेना उत्साह मे भरकर बिहार को चली, पर सेनापति महाबतखाँ के मन मे कुछ दुबिधा थी । मिर्ज़ा आसफ़खाँ के साथ उनकी बहुत दिनो की मैत्री थी । इस अभिमान मे सम्राट् और प्रधान मत्री के मध्य मे कोई मार्ग निकाल लेना उनके लिये बड़ा कठिन हो गया ।

पुरस्कार के लालच ने प्रचुर स्फूर्ति भर दी थी सैनिको मे । बिहार तक पहुँचते-पहुँचते, प्रत्येक पडाव मे पडे-पडे, रात को उस सेना का अधिकाश भाग खुर्रम को पकड़ लेने के मनसूबे बाँधता, युक्ति विचारता और सपने देखता ।

विद्रोही राजकुमार के अनुवादियो के साथ सम्राट् की सेना की मुठभेड हुई। खुर्रम के साथी सख्या और साधन दोनो मे ही कम थे। साम्राज्य की सेना की तुलना मे ठहर न सकी वह। उसके पैर उखड गए। खुर्रम शरीर-रक्षको के साथ बगाल को भागा। महावतखाँ ने उसका वहाँ भी पीछा किया।

बगाल में एक-दो स्थानों पर बहुत साधारण प्रतिरोध को विजित कर महावतखाँ ने सेना-सहित बगाल की राजधानी मे प्रवेश किया। राजकुमार के वहाँ पहुंचने की पक्की सूचना और प्रमाण थे उनके पास, पर वहाँ जाने पर सारी सेना मे निराशा छा गई।

सेनापति के निकट बगाल का सूबेदार उनके वहाँ पहुँचते ही भागा हुआ आया। वडी दीनता दिखाकर बोला—"मुझसे क्या अपराध हो गया ?"

महावतखाँ ने आश्चर्य मे पड़कर उसे सिर से पैर तक देखा। बड़े धैर्य और शाति के साथ उसने पूछा—"आपने राजकुमार खुर्रम को सम्राट् के विद्रोह के लिये सहायता दी ?"

उतने ही आश्चर्य मे सूबेदार बोल उठा—"विद्रोह ?"

"हाँ, मै विग्रह को बढाने के पक्ष मे नहीं हूँ। सच बताइए, आपने राजकुमार से क्या समझौता किया था ?"

"समझौता ? कुछ नही। राजकुमार ने मुझसे यही कहा कि बगाल और बिहार के ये दो प्रांत सम्राट् ने उन्हें दे दिए हैं। भविष्य में राजस्व उन्ही के पास भेजा जायगा, और सूबो की बाहरी और भीतरी नीति में उन्ही की आज्ञा प्रचलित होगी।"

"कोई लिखित राजाज्ञा थी उनके पास ? दिखाई तुम्हें ?"

"नही।"

"फिर ?"

"वह साम्राज्य के राजकुमार, उन्हे किसी बात के लिये प्रेरित करना

मैंने शिष्टाचार का अतिक्रमण समझा।"

"आश्चर्य है सूबेदार, क्या एक प्रांत का शासक, बुद्धि की इस पूँजी से अपना काम चलावेगा। तुमने राजकुमार को हमारा विरोध करने को सेना और शस्त्र दिए ?"

"नही।"

"जितना पिता-पुत्र के बीच का विद्रोह शात करने की इच्छा से मै यहाँ आया हूँ, उतना ही चाहता हूँ मै सूबेदार और सम्राट् के बीच के सबध भी निर्मल ही रहे। सूबेदार ! यह स्पष्ट सत्य है, आपने उन्हे सेना नही दी ?"

"नहीं सेनापति महोदय, मैंने कोई सेना नही दी। यह सुना है मैंने, राजकुमार के नौकरों ने सूबे से कुछ सेना एकत्र की अवश्य। इसमे मेरा क्या अपराध है ? साम्राज्य का वेतन भोगी बंगाल के सूबे का एक भी सैनिक आपके विरुद्ध खडा नही हुआ।"

"अच्छी बात है, मै जाँच करूँगा। यदि यह सत्य अनुमोदित हुआ, तो मै इस विद्रोह को यही बुझाकर चल दूँगा। आपको भी कोई आँच न आने दूँगा।"

"आप जाँच कर लीजिए। यह सत्य ही है। इस सूबेदार का सौभाग्य पतित होते-होते बच गया, जब मैने राजकुमार को सैन्य-ऋण स्पष्टतः अस्वीकृत कर दिया।"

सेनापति महावतखाँ, विद्रोह को दमन करने के लिये राजधानी से सम्राट की पूरी शक्ति लेकर आए थे। वह स्वतन्त्र थे, चाहे जैसे भी विद्रोहियो का न्याय करे। केवल एक अनुरोध गुप्त रूप से सम्राट् ने किया उनसे कि राजकुमार की रक्षा का ध्यान रक्खा जाय, और यदि वह बंदी हो गए, तो उनकी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रखकर ही उन्हे राजधानी मे लाया जाय। प्रधान मत्री की कुछ मत्रणा पर भी उनका ध्यान अविचल था।

महावतखाँ नें सूबे के कई उच्च पदाधिकारियों को बुलाकर पूछ-ताछ आरभ की। अनेक गुप्तचर भी नगर मे छोड दिए। सेनापति को जो कुछ भी सूत और साक्षी मिली, उस पर से बगाल का सूबेदार छूट भी सकता था। उसे छोड देना ही निश्चय किया उन्होने कि प्रजा में शीघ्र ही शाति और व्यवस्था स्थिर हो जाय।

अचानक सध्या-समय एक गुप्तचर ने सेनापति से आकर कहा—"राजकुमार सूबेदार के महल मे छिपे है। आज्ञा हो कि उन्हे पकड़ लिया जाय।"

"तुम्हे ठीक ज्ञात है ?

"अनुमान है एक।"

"निश्चित ?"

"निश्चित तो नही, सभावित।"

"नही गुप्तचर। सूबेदार एक सभ्रात व्यक्ति है। विना उसे सूचित किए अचानक उसके महल मे छापा नही मारा जा सकता। फिर अभी तक हमे उसके विरुद्ध कोई ऐसी प्रबल साक्षी नही मिली है। उसके प्रासाद के भीतर सैनिको के प्रवेश से उसे अनेक प्रकार की क्षति पहुँच जायगी, फिर राजकुमार हो तो देखो, स्वय ही आत्मसमर्पण कर देना पड़ेगा उन्हे। अधिक दिन आवरण मे रह नही सकते वह।"

कुछ रात वीतने पर फिर एक गुप्तचर ने महावतखाँ से निवेदन किया—"राजकुमार अनेक घुडसवार अग-रक्षको के साथ छद्मवेश मे नगर से निकल भागे है। आज्ञा हो, उनका पीछा किया जाय।"

"किस ओर भागे हैं ?"

"कदाचित् दक्षिण को।"

"पूर्व को क्यो नही ?"

"बिहार मे उनका सामना करने के लिये बहुत बड़ी सेना जो छोड़ आए हैं।"

सेनापति हँसने लगे—"कितनी सेना है उनके साथ ?"

"साथ मे केवल कुछ अग-रक्षक है। सेना आगे बढ गई होगी, और कही पूर्व-निश्चय के अनुसार उनकी प्रतीक्षा करती होगी।"

"नही गुप्तचर, अभी पीछा करना कठिन है। कई दिन बाद आज सेना को अवकाश मिला है। आज उन्हे पूरा विश्राम कर लेने दो, यदि कोई बीमारी जाग पडी उसमें, तो फिर कठिनता मे पड जायँगें। इसके अतिरिक्त कुछ सशयो का निवारण और कुछ निश्चयो का प्रतिपादन भी करना है हमे यहाँ।"

दक्षिण पर के नाको की चौकसी करने को सेनापति ने जो प्रहरी नियुक्त कर रक्खे थे, उनमे से एक ने दूसरे दिन आकर उन्हे राजकुमार के दक्षिण-प्रयाण की सूचना दी।

महावतखाँ को वहाँ से प्रस्थान करते-करते चार दिन लग गए। इसके अतिरिक्त मार्ग मे उनकी गति अनेक कारणो से विलबित हो गई थी। वह पूरे वेग से राजकुमार का पीछा न कर सके। राजकुमार को दक्षिण के मार्ग, दुर्ग और प्रजा भले प्रकार अभ्यस्त थे। उसने वहाँ पहुँचते ही अनेक दुर्गों पर अपना अधिकार कर लिया।

महावतखाँ की विशाल सेना को आक्रमण के लिये सन्नद्ध देखकर राजकुमार खुर्रम ने सधि का प्रस्ताव लेकर एक दूत भेजा।

महावतखा संधि के लिये तैयार हो गए। उन्होने राजकुमार से तुरंत ही अधिकृत दुर्ग छोड़ देने को कहा, एकत्र सेना और शस्त्र-सग्रह को तितर-बितर करने तथा भविष्य में सम्राट् के विरुद्ध कोई विद्रोह खड़ा न करने का अनुशासन दिया। राजकुमार ने मान लिया। वह एक साधारण नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करने को तैयार हो गया। उसने सधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

महावतखाँ के अधीनस्थ सरदारो ने कहा—"सेनापति, यह आपने क्या कर दिया। राजकुमार को आगरा पकडकर ले जाने की राजाज्ञा है।"

"मेरे पास सम्राट् से प्राप्त कुछ अधिकार भी हैं, जिनका मर्म है, मै चाहूँ जैसे, वैसे इस विद्रोह को शात करूँ।"

उन्होने कहा—'यह उस अधिकार का दुरुपयोग है। आपको अपने अधीनस्थ किसी सैनिक को उन्हे पकडकर पुरस्कार का अधिकारी बनने देना चाहिए था।"

"पकडे जाने की परिधि से बाहर आ गए राजकुमार। अब उन्हे पकडना क्या कठिन है। राज्य की आकाक्षा से रिक्त हो गया उनका मस्तिष्क, और उनके अग-रक्षको का घेरा टूट गया! अब क्या मूल्य है उनके पकडने का।"

एक सरदार बोला—"हमे सम्राट् का कोप-भाजन बनना पडेगा आगरा पहुँचकर।"

"केवल एक मुझे ही, यदि बनना पडा तो। पुरस्कार का अधिकारी चाहे जो भी होता, कोप का अधिकारी केवल मै हूँ। मुझ ही पर इसका सारा उत्तरदायित्व है।"

बडी सरलता से खुर्रम के विद्रोह को शात कर महावतखाँ ने आगरे को लौट जाने की तैयारी की। उसने राजकुमार से कहा—"चलिए, राजकुमार आप भी।"

राजकुमार सम्मत न हुए।

सेनापति ने कहा—"सम्राट् आपके अनुकूल है। मैं उन्हें समझा-बुझा लूँगा।"

"नही सेनापति, सम्राट् की अनुकूलता से क्या होता है। वहाँ और भी तो अनेक विषम शक्तियाँ हैं। वास्तव मे उन्ही से छूटने को मै छट-पटाया था, पर निष्फल हो गया। यह प्रदेश मुझे प्रिय है। जनता की भीड मे मै यहाँ अपरिचित रहकर अपने दिन काट लूँगा। यह प्रवास का एकात मेरे भग्न मनोरथो को छिपा लेगा।"

"जीविका का क्या साधन होगा यहाँ?"

"कोई नौकरी कर लूँगा, नही तो किसी व्यवसाय में मन लगाऊँगा।"

"साम्राज्य के राजकुमार को साम्राज्य की ही नौकरी चाहिए। चलो, सम्राट् से कोई जागीर लेकर यही लौट आना, इस प्रात की सूबेदारी भी मिल सकती है तुम्हे। तुम्हारे स्त्री-पुत्र वही हैं। तुम्हारी अनुपस्थिति उन्हे भी कष्टदायक होगी।"

"नही सेनापति, मुझे राजधानी को ले जाने का अर्थ ठीक न होगा, वह फिर मेरे रक्त मे उबाल उत्पन्न कर देगा, इसलिये यही मुझे भूला और खोया हुआ रहने दो। मेरे श्वसुरजी से कह देना, वह कृपा कर मेरे स्त्री-पुत्रों को यहाँ पहुँचा दें।"

सेनापति महावतखाँ राजधानी मे पहुँचे। उन्होंने खुर्रम का विद्रोह जिस प्रकार शात किया, वह सम्राज्ञी नूरजहाँ को असह्य हो उठा। वह उस विद्रोही को उतने अनुरोध पर भी पकडकर नही ले आए, इससे तो वह ताड़िता फणिनी के समान क्रुद्ध हो उठी!

वह सम्राट् से कहने लगी—"इस सेनापति ने विश्वासघात किया है सम्राट्। यह कदापि साम्राज्य के इस पद पर रहने योग्य नही है।"

सम्राट् ने शाति से कहा—"फिर और कौन इस पद के योग्य है?"

कह तो चुकी हूँ, मैं स्वय उठा लूँगी यह भार।"

सम्राट् असमजस में पड गए।

नूरजहाँ कहने लगी—"ऐसे ही न दबने दूँगी मैं यह बात। मैं महावतखाँ को पदच्युत कर ही नहीं रह जाऊँगी। उसका गभीर अपराध है, उसका न्याय होना चाहिए सम्राट्।"

'तुम हमारे लिये भयानक शत्रुओ का निर्माण कर रही हो नूरजहाँ।"

"वह निर्मित शत्रु है महाराज. वह राजकुमार को दक्षिण मे बसा आया है, और यहा से छिपे-छिपे उसे गुप्त सूचनाएँ और सहायता भेजता रहेगा कि अपने दूसरे विद्रोह मे सफल हो सके। वह राजकुमार

के स्त्री-पुत्रो को उसके पास भेजने का सदेश लाया है । मैं उसके सबसे बड़े और सबसे छोटे इन दोनो पुत्रो को जाने न दूँगी वहाँ। यही बधक-रूप से रक्खूँगी उन्हे कि वे पिता का सहसा विद्रोह न पनपा सके फिर ।"

---

[११]

कुछ समय और बीत गया। इस अवधि में नूरजहाँ महावतखाँ का बिगाड न कर सकी कुछ, पर उन दोनो का विद्वेष भीतर-ही-भीतर चरम सीमा को पहुँच गया। राज्य के भीतरी कलह, बाहरी आक्रमणों के भय, आयु की वृद्धि और सुरा-पान की अधिकता से सम्राट् का स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता गया, एव नूरजहाँ अपने अधिकारो के दुर्ग को किसी सुदृढ टीले पर निर्मित करने को छटपटा उठी।

राजकुमार शहरयार दुर्बल, कायर और मूढ सिद्ध हुआ, उसकी सभी आशा छोड देनी पड़ी उसे। एक शिशु कन्या को छोडकर नूरजहाँ की लड़की चल बसी, जिसके कारण शहरयार पर से उसका मोह और भी छूट गया। राजकुमार परवेज भी योग्य न सिद्ध हुआ। नूरजहाँ को अपनी सत्ता और अधिकार स्थिर रखने के लिये युवराज खुसरू के पुत्र राजकुमार बुलाकी को ही पात्र बनाना पडा।

राजकुमार खुर्रम ने अपने मन से ही निर्वास ले लिया। उसने न कभी राजधानी को लौटने का साहस किया, न कभी कोई दूत ही भेजा। उसके स्त्री-पुत्र उसके पास पहुँचा दिए प्रधान मत्री आसफखाँ ने। नूरजहाँ अपने हठ पर दृढ रही, और उस विद्रोही राजकुमार का सबसे बडा पुत्र दारा और सबसे छोटा पुत्र उसने अपने पास बधक-रूप से रख लिए कि खुर्रम फिर कभी विद्रोह का साहस न कर बैठे। नूरजहाँ ने कई गुप्तचर छद्मवेश में उसके पीछे लगा दिए कि वे उसकी गति-विधि को लक्ष्य में रखकर समय-समय पर राजधानी में उसके समाचार भेजते रहे।

कई महीने बीत गए, वर्ष भी शेष हो गया, पर खुर्रम ने फिर कभी सिर न उठाया। दक्षिण मे वह एक स्थान से दूसरे स्थान मे भटकता रहा। प्रात के पदाधिकारियो को उसे आश्रय देने का कठिन निषेध था। उसके श्वशुर राजधानी से बराबर गुप्त रूप से उसे सहायना देते रहे और देते रहे, शाँति एव धैर्य धारण किए रहने का उपदेश।

सम्राट् पुत्रो की ओर से घोर निराशा मे पड गए। प्रधान सेनापति के साथ भी अप्रकट वैमनस्य उत्पन्न हो गया, और प्रधान मत्री के मन मे भी विद्वेष जड जमाने लगा। जहाँगीर इस चिंता मे रहने लगे कि यदि एक-एक कर प्रातो ने राजधानी से अपने-अपने सबध उच्छिन्न करने आरभ कर दिए, तो फिर क्या होगा।

उत्तर-पश्चिमी सीमा पर की अराजकता को दबाने के लिये सेना भेजी गई, पर अल्पकाल-स्थायी प्रभाव उपजा सकी वह। अचानक वहा से ईरानियो की वेगवती प्रगति के समाचार आ पहुँचे राजधानी मे।

सम्राट् घबरा उठे, उन्होने नूरजहाँ से कहा—"बडे भयानक बादल उठे हैं ये नूरजहाँ, मेरा मन न-जाने क्यो आकुल हो उठा है इतना।"

नूरजहाँ बोली—"कोई चिंता की बात नही है महाराज, आपको दृढ़ होना चाहिए। हम स्वय जाकर विद्रोहियो को अल्प समय मे ही कुचल देगी।"

"पर जैसे मेरे मन मे भीतर से कोई—" जहाँगीर ने दीर्घ श्वास लेकर वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

नूरजहाँ भी एक क्षण के लिये अवसन्न रह गई। पर उसने तत्क्षण ही साहस जमा कर लिया—"यह एक भ्रम है केवल सम्राट्। इसको मन मे स्थान देना ठीक नही, भुला दीजिए इसे।"

"पर कैसे?"

'बुद्धिमानी से, भगवान् की स्मृति से।"

"नही नूर, वह और भी गहरी और स्पष्ट होती जा रही है मानव-पटल मे। सुरा—इसका आवेश भुला देता था पहले, पर अब यह भी और सब कुछ भुला दे रहा है, केवल उसी को और भी प्रत्यक्ष कर दे रहा है। नूरजहाँ! मेरे हृदय के प्रज्वलित प्रकाश! मेघ उठ चले हैं। जीवन के वर्ष ग्रीष्म की सूख चली धारा के समान बिंदु-बिंदु होकर बहने लगे, वह प्रवाह नही रहा। इसलिये इंद्रियो मे कपन उपज गया क्या ?"

"नए हकीम साहब की औषधि से लाभ तो हो रहा है तुम्हे।"

"वह भी तो सुरा के विरुद्ध ही कहते है।"

"सारा जगत् कहता है। सत्य ही कहता है। तुम्हारे स्वास्थ्य में जो व्यतिक्रम उपस्थित हुआ है, उसका सारा उत्तरदायित्व इसी सर्व-नाशिनी सुरा पर है। अब भी यदि आप मान ले, तो कदाचित—"

"शरीर-मन की स्फूर्ति, बल और उमग थोडे-थोडे अशो मे प्रत्येक दिन मे बँटे हुए थे, सुरा की सहायता से मै सब वह पेशगी ले चुका। जिस अवस्था मे मै बूढा हो गया हूँ, मेरे पिता सम्राट् अकबर दक्षिण के राज्यो पर विजय प्राप्त कर रहे थे। नूरजहाँ! कदहार की रण-यात्रा सह्य हो सकेगी मुझसे ?"

"हाँ-हाँ, क्यों नही ? हकीम साहब कहते है, एक ही सप्ताह में तुम बिलकुल ठीक हो जाओगे।"

"हो जाऊँगा नूरजहाँ। तुम भी तो यही कहती हो। मै ही नही, मेरे रोग-शोक, दुःख और ताप भी तुम्हारी आज्ञा मानते हैं।"

"मन की प्रसन्नता स्थिर रक्खो। जितना भी समय लग जाय, कोई चिंता नही, तब तक हम सेनापति महावतखाँ को सेना-सहित सीमा पर भेज देगे।"

"पर तुम कहती हो, तुम्हारा विश्वास नही है उन पर। परंतु उन का कौशल और पौरुष कहते हैं, हमें विश्वास नही खोना चाहिए उनका। मुझे उनकी स्वामिभक्ति का भरोसा है नूरजहाँ। तुम बार-बार कहती

हो, उन्होने खुर्रम को छोडकर हमारी भारी हानि की है।"

"खुर्रम का प्रकरण छोड दो सम्राट्! उसके नाम की ध्वनि से मेरे मानस में बडी खलबली उत्पन्न हो जाती है, और मै फिर सो नही सकती चैन से। मैने बार-बार प्रार्थना की है आपसे, उसकी स्मृति किसी प्रकार जगावे नही आप।"

जहाँगीर ने बात टालकर कहा—"मैं चलूँगा नूर, रण-क्षेत्र मे! मेरे पुरखो की आयु का अधिक भाग घोडो की पीठ और खड्गो की मूठो मे कटा है। धिक्कार है मुझको! मै अत.पुर में ही रह गया! जहाँगीर की पदवी ग्रहण कर एक भी रण की विजय धारण न कर सका। इतिहासकार क्या लिखेगा मेरे लिये, कहाँ तक झूठ बोलेगा, कहाँ तक चाटुकारी करेगा? मै जाऊँगा युद्ध मे।" कहते-कहते जहाँगीर उठ गए।

"जय हो सम्राट् की! जहाँगीर के उपयुक्त ही ये उद्गार तुम्हारे मुख से निकले हैं। भगवान् करे, ये पूर्ण हो।"

"होगे, अवश्य होगे। जब तुम कह चुकी हो, तो फिर संदेह नही रहा कोई। मै अग-रक्षको से घिरा तबुओ मे ही पडा पडा रण-सचालन न करूँगा। मै युद्ध के क्षेत्र में खुलकर खेलूँगा। शत्रु के रक्त से उस सीमा पर यह चेतावनी लिखूँगा कि मुग़ल सम्राटो को छेडने का क्या दुष्परिणाम है। वे सावधान होवें, और फिर लौटकर उधर न देखे। और, तुम भी तो नूरजहाँ, अपने रण-कौशल की साक्षी देना चाहती हो इसी युद्ध मे। जहाँगीरनामे में वह अश सुवर्ण के अक्षरो में लिखा जायगा।"

नूरजहाँ का मुख-मंडल उद्भासित हो उठा। उसने सम्राट का हाथ पकडकर उन्हे आसन पर बिठा दिया।

जहाँगीर ने कहा—"और कश्मीर भी तो निकट ही है। हमारी प्रिय विहारभूमि! गृह-कलह मे ही फँसा रह गया मै। कब से उसके दर्शन नही किए है, वहाँ जाकर मै प्रकृति के रूप में नाच उठता हूँ। फूलो

के रग, चिडियों के गीत और हिम की शाति का उपभोग फिर मुझे मेरा यौवन लौटा देता है। मै फिर स्वस्थ और युवक होकर ही लौट आऊँगा। नूरजहाँ, हाँ, मैं इस बार स्वय ही युद्ध के मैदान में प्रवेश करूँगा। तुम तैयारियाँ करो।"

सेनापति महावतखाँ ने ससैन्य प्रस्थान किया काबुल के लिए। कुछ ही दिनो बाद सम्राट् स्वस्थ और सशक्त हो गए। नूरजहाँ के साथ एक बडी सेना लेकर उन्होने भी प्रस्थान किया।

शहरयार की मातृहीन कन्या नूरजहाँ ने अपने पास रख ली थी। उसके लिये धाइयो का प्रबध था, फिर भी सम्राज्ञी अवकाश ढूँढ-ढूँढकर उसके निकट-संपर्क मे रहती थी। अधिकतर अपने ही हाथों से उसे खिलाती-सुलाती, उसके प्राथमिक यौवन की एक स्मृति-स्वरूप थी उसकी कन्या, अपने जीवन की अधिकांश आकाक्षाएँ उसी में स्थापित कर रक्खी थी उसने। शेर अफगन की मृत्यु का कारण वह स्वय अपने को समझती थी, इसलिये वह कन्या उसे परम प्रिय हो गई थी। उसके सुख-सौभाग्य के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किए उसने। पर भगवान् ने उसे भी छीन लिया। कन्या की मृत्यु के बाद, वह कन्या की कन्या स्वभावतः ही उसके मोह की पात्री हो गई।

शहरयार उसके मन में कोई स्थान न बना सका। उस कन्या को उसके पास रखने को उसकी तिलाश भी रुचि न हुई। जब नूरजहाँ उस दौहित्री को अपने पास उठा ले गई, शहरयार समझने लगा, वह सम्राज्ञी की समस्त स्नेह और समवेदना खो चुका। बात भी ऐसी ही हो गई।

रण-यात्रा के समय उस दौहित्री का प्रश्न बहुत कठिन हो गया नूरजहाँ के लिये। अत.पुर मे किसी संबधी के पास उसे रखकर उसके आभार को सिर पर लेना सम्राज्ञी के स्वभाव के विरुद्ध था। वेतनभुक्ता धाइयाँ पीठ-पीछे उसकी अधिक चिंता न कर सकेंगी। यदि कभी वह बीमार हो गई, तो वे अपने सुख और नीद के पीछे उसकी सेवा-शुश्रूषा

न करेगी। अत मे उसे साथ ही ले जाना स्थिर किया उसने। वह साथ ही रख ले गई उसे। ममता का बडा दृढ बंधन है। रण के क्षेत्र मे शिशु कन्या को लेकर चली वह, और उसके हृदय मे थी रण-सचालन की साधना। छाती पर बालक और कधे पर तूणीर! दो बिषम सिरे एक साथ ही ले लिए उस वीरागना ने!

बडे समारोह से दास-दासियो, अग-रक्षको, सेना-सरदारो से घिरे सम्राट काबुल की रणयात्रा को चले। धीरे-धीरे एक पडाव के अनतर दूसरा पडाव पारकर ये लोग झेलम नदी के तट पर पहुँचे।

नदी में पुल बाँधकर महावतखाँ की सेना कुछ नदी के इस पार और कुछ उस पार डेरा डाले हुए पडी थी। सम्राट् और सम्राज्ञी के वहाँ पहुँचने का समाचार बहुत पहले ही सेनापति को ज्ञात हो चुका था। इस आगमन से भी उसने अपने कर्तव्य मे कोई प्रगति नही दिखाई। उलटा सम्राट् का वह प्रवेश उसके मन मे खटकने लगा। नूरजहाँ और उसके बीच मे विष तो बढ ही रहा था, वह सोचने लगा—"सम्राट् ने आकर मेरे प्रति यह अपना अविश्वास दिखाया है।"

सम्राट् ने बडी शाति के साथ सेनापति को बुलाकर पूछा—"प्रगति बडी विलबित जान पडती है।"

"हाँ महाराज, नदी मे यह तीसरी बार पुल बाँधा है हमने।" बडी उदासी के साथ महावतखाँ ने उत्तर दिया।

"हमारे आने से और भी उत्साह बढना चाहिए था आपका।"

"हाँ महाराज।"

नूरजहाँ वहीं पर उपस्थित थी। सेनापति का वह भाव असह्य हो हो उठा उसे। बोली—"पर आपका उत्तर जिस अर्थ की व्यजना कर रहा है, आपका उच्चारण और मुख का भाव बिलकुल ही साम्य मे नही हैं उसके साथ।"

"इससे और अधिक क्या प्रगति दिखाऊँ मैं। सम्राट् चाहे जो प्रबध

कर सकते हैं।" रिस-पूर्वक महावतखाँ ने उत्तर दिया।

नूरजहाँ के सारे अग मे आग लग गई!

सम्राट् चौक पडे इस उत्तर से। वह समझने थे, नूरजहाँ एक दर्शिका के ही रूप मे रहेगी साथ मे। सेनापति के उस उत्तर से वह घबराने लगे। नूरजहाँ फिर उस हठ पर स्थिर होजावेगी। वह चुप ही रहे।

नूरजहाँ निर्भय होकर बोली—"अच्छी बात है, फिर कल से मै करूँगी सेना का सचालन।"

सेनापति ने सम्राट् की ओर देखा।

सम्राट् हाथ उठाकर निवारण करते हुए कहने लगे—"नही, नही, नूरजहाँ!"

निकट ही नूरजहाँ के डेरे से उस मातृहीना, शहरयार की कन्या ने रोना आरभ किया। सम्राज्ञी का ध्यान उधर खिच गया, वह उधर चली गई।

सम्राट् ने बडे शुद्ध भाव से कहा—सेनापति!"

सेनापति की रूक्षता तो तिरोहित हो चुकी थी नूरजहाँ के प्रस्थान पर ही, सम्राट् का मधुर सबोधन पाकर महावतखाँ का ही आदर-भाव उमड पडा रोम-रोम से। वह हाथ जोडकर कहने लगा—"हाँ महाराज!"

"जो उचित है, वही कीजिए सेनापति!"

"वही करता आ रहा था सम्राट्। मेरा अक्षम्य अपराध हुआ, मैं राजकुमार खुर्रम को बाँधकर न सौप सका सम्राज्ञी को।"

सम्राट् ने सेनापति का हाथ पकड़ लिया, और अपने अधरो पर उँगली रख दी।

"यदि मै स्पष्ट कहता हूँ, तो मै सम्राज्य का मित्र हूँ। क्या खुसरू के अत से महाराज सतुष्ट हैं?"

"धीरे-धीरे कहो सेनापति!"

"नही महाराज, यह उज्ज्वल सत्य धीरे-धीरे कहने से इसकी आभा

विकृत हो जाने का भय है !" महावतखाँ ने अपने स्वर में कहा।

"नूरजहाँ सुन लेंगी।"

"यही महाराज की सबसे बडी दुर्बलता हुई। अत.पुर के भीतर ही उनका जादू जहाँ तक रहा, ठीक हो सकता था। वह राजसभा में आई, राजधानी मे खुल पडी। धर्म और नीति के विरुद्ध सम्राट् ! अब रण के मार्ग पर निकल पडी हैं। भगवान् रक्षा करे सम्राट् और साम्राज्य की ! कन्या-महिला, सहज कोमल जाति, रण की नायिका हो सकती है ? अपने मान-सभ्रम के लिये नही कहता महाराज ! राज्य का बरसों से नमक खाता चला आ रहा हूँ, सत्य कहूँगा, अवश्य कहूँगा। नारी के हाथ मे युद्ध के सूत्र न दीजिए महाराज, श्रेय न होगा। आप स्वय सेना-सचालन कीजिए, यही प्रार्थना है।" महावतखाँ ने तीव्र उत्तेजना मे भरकर कहा।

सम्राट् ने आश्वासित कराते हुए कहा—"सुनो सेनापति !"

"जानता ही हूँ मैं आप जो कहेगे। कहिए फिर, सुनूँगा मैं।"

"यह समझता हूँ मैं, युद्ध के मैदान मे रमणी के खेलने का स्थान नही। पर उनकी हठ पूरी करने को नही, उनको एक कटु अनुभव दे देने को मै चाहता हूँ, वह रण के सूत्र हाथ में लें। अवश्य ही एक घडी के ही युद्ध मे वह फिर जीवन-पर्यंत के लिये उससे विरत हो जावेगी।" धीरे-धीरे सम्राट् बोले।

मुँह बनाकर महावतखाँ ने कहा—"ठीक है सम्राट् !" वह जाने के उपक्रम में लगा। उसके मन मे विचार उठने लगा—"यदि आज ही झेलम पार करने से पहले ही इस रमणी को इन लोहे के चनो का अनुभव दे दिया जाय, तो कैसा ?"

"ठहरो सेनापति !"

"कोई लाभ नही, मुझे आगरा जाना चाहिए।"

"साथ रहेगे आप भी।"

नूरजहाँ गोद में उस बालिका को लिए हुए आ पहुँची। उसकी आँखो से मानो चिनगारियाँ निकल रही थी। कदाचित उसने सेनापति का सारा उपालभ सुन लिया था।

सम्राट् फिर न रोक सके सेनापति को, वह चुपचाप खिसककर अपने डेरो मे चला गया, और अपने उप-नायको के साथ किसी मत्रणा मे नियुक्त हो गया।

"एक कायर की भाँति आपका यह सेनापति चला गया। यह नारी-जाति का तिरस्कार कर अपना मूल्य बढाना चाहता है। अब मेरा सकल्प और भी दृढ हो गया। मै ही रण का संचालन करूँगी। क्यों सम्राट्! आप अपने विचार मे पलटेंगे तो नही?"

"नही नूरजहाँ!"

सध्या का समय निकट आया। सम्राट् की छावनी में सैनिक को अवकाश मिल जाने से अधिक चहल-पहल मच गई। सम्राट के अंग-रक्षकों की पक्ति भी कुछ टूटकर बिखर गई। अचानक सेना के साथ हाथी पर चढा हुआ महावतखाँ टूट पडा सम्राट् के डेरो पर। उसके सैनिको ने सम्राट् के रक्षको को मार गिराया, और सम्राट् को बदी कर ले चला। सेना-सहित पुल पर से होकर वह झेलम नदी के उस पार पहुँच गया।

नूरजहाँ चिल्ला उठी। तत्क्षण ही महावतखाँ का पीछा करने के लिये उसने सेना को तैयार कर लिया। उस बालिका को छाती से लगाए हाथी पर चढकर वह आगे-आगे चली।

उस पार पहुँचते ही महावतखाँ के अनुचरो ने पुल में आग लगा दी। आग सुलग उठी। धँस पडी नूरजहाँ उस अग्नि मे। उसका रण-आह्वान साक्षात् यम की पुकार थी। उसके अनुचरो मे उसकी सहायता का आवेश फैल गया। वे सब मृत्यु का भय भूलकर, शस्त्रो को लिए, हाथी-घोड़ो पर चढ़े धँस पडे उस पुल पर!

नूरजहाँ के हौदे पर महावत के अतिरिक्त दो दासियाँ थीं। एक ने उसकी दौहित्री को सँभाल रक्खा था, और दूसरी उसके साथ धनुष मे शर-सधान कर रही थी।

नूरजहाँ चिल्ला उठी—"मृत्यु कायर के लिये है। बढ चलो, भय नही है। आग पुल के केवल एक सिरे पर है।"

सारा पुल सैनिको की जय-ध्वनि, शस्त्रो की झकार और वाहनो के भार से भर गया। उस नारी की आर्त पुकार खीच ही ले गई प्रत्येक सैनिक को। कोई कर्तव्य की भावना से, कोई करुणा से प्रेरित होकर, कोई युद्ध के उत्साह मे और कोई पद-वृद्धि के लोभ से उस पुकार मे बँध गए।

भयानक वेग के साथ पुल ठसाठस भर गया। अचानक वह टूट गया। भीड से, भार से या अग्नि से, नही कहा जा सकता। घोडे, हाथी सैनिक डूबने-उतराने लगे। जल मे जीवन के लिए तुमुल सघर्ष हो गया, युद्ध भूल गए सैनिकगण।

सेनापति महावतखाँ की सेना झेलम के पार से पुल पर बढती हुई नूरजहाँ के दल पर बाण-वर्षा करने लगी। पुल के उस सिरे पर से आग भी बढ रही थी। तीरो की बौछार और आग की लपटो से होकर नूरजहाँ का महावत बढा रहा था हाथी को अकुश दे-देकर। अचानक पुल टूट गया, और महावत शर-विद्ध होकर गिर पडा प्रवाहित नदी में। तट अभी कुछ ही पग शेष था।

नूरजहाँ का तीरो से विद्ध हाथी पथ-प्रदर्शक को खोकर जल मे डगमगाने लगा। नूरजहाँ तत्क्षण ही हाथी के मस्तक पर कूद पडी, और बडे कौशल से हाथी को तट पर ले चली। हाथी तट की ओर जब बढ रहा था, एक तीर आकर शहरयार की कन्या की पीठ में घुस गया।

नूरजहाँ चिल्ला उठी—"हाय हत्यारे! यह अबोध और मातृहीन कन्या ही क्या तेरा अहेर था?"

तट पर आकर हाथी बैठाया गया। दासियो से घिरी नूरजहाँ उस बालिका के अग मे से तीर को सावधानी से खीचने लगी। बालिका की शोचनीय अवस्था देखकर वह रोने लगी—"अरे राक्षसो! हमारा ही नमक खाकर तुम हम पर ही तीर चला रहे हो? दयनीय स्त्रियो पर और असहाया बालिका पर! अर नराधमो! आततायियो! क्या तुम्हें भगवान् के न्याय के अतिम दिन का भी कोई भय है?"

सेनापति महावतखाँ ने जब देखा, नूरजहाँ की सारी सेना अस्त-व्यस्त हो गई, तो वह मूछो पर ताव देकर हँसा। उसने जब देखा, तीर से आहत होकर उसकी दौहित्री अचेत हो गई है, और नूरजहाँ बडे करुण स्वर से रुदन करने लगी है, उसने युद्ध का कोई प्रयोजन न समझा। उसने सेना को रण शेष कर डेरो की ओर लौट जाने की आज्ञा दी।

महावतखाँ ने लौटकर बदी सम्राट् के तबू के चारों ओर सैनिको के घेरे डाल दिए, और एक टुकडी पुल के पास नूरजहाँ की चौकसी के लिये जमा दी। उसने अनेक सैनिको को नूरजहाँ के विपद्-ग्रस्त योद्धाओ की सहायता के लिये भेज दिया।

रात्रि शनै-शनः धरती पर उतर रही थी। नूरजहाँ ने दौहित्री के अग मे से तीर खीच लिया, उसके साथ उसके प्राण भी उड़ गए! सम्राज्ञी विकल होकर विलाप करने लगी।

सम्राट जहाँगीर जिसके सकेत पर नृत्य करता था, भारत की मम्राज्ञी, कोटि-कोटि नर-नारियो के शासन के सूत्र जिसके हाथो मे थे, अभी-अभी उसकी स्थिति ने कैसा पलटा खाया। उसकी परम प्रिय दौहित्री विना उपचार के ही चल बसी! उसने अपने चारो ओर देखा, कुछ दासियो, कुछ अत्यत पुराने सेवक और सैनिको के अतिरिक्त शेष सेना न जाने कहाँ को चली गई। उसने अनुमान लगाया, कुछ बहाना बनाकर भाग और छिप गए हैं, अधिकाँश निश्चय ही महावतखाँ की सेना मे घुल-मिल गए! उसने सिर पीटकर कहा—"हाय नियति!"

छाती से उस शिशु के शव को लगा कर उठी वह। बाल खुलकर बिखर गए थे उसके मुख, छाती, पीठ पर। उसका परिच्छद अस्त-व्यस्त हो गया था, उसे कोई ध्यान ही न था इसका। उसके जीवन की एक आशा आज बिलकुल निर्वापित हो गई। एक के बाद दूसरे को वह शेर अफ़गन की करुण-स्मृति सौपती चली आ रही थी। अब किसे ? कुछ क्षण के लिये तो वह सम्राट् को भी भूल गई। शेर अफ़गन उसकी आँखो के आगे जीवित हो उठा!

नूरजहाँ कहने लगी—"तुम्हारी यह शेष स्मृति इसे भी मैंने अपने ही पैरो से मसल डाला। मैं क्यो इसे लोगो के उतना निवारण करने पर भी रण-क्षेत्र मे ले आई! क्या होगा अब ?"

दासियाँ उसे समझा रही थी, सब निष्फल था।

"यह तीर मेरे क्यो नही लगा? दैव! किसलिये तू मुझे जीवित रखना चाहता है। मैं भी मर जाऊँगी, पर ऐसे ही नही। मेरी तलवार कहाँ है? लाओ, मुझे दो। मै मृत्यु का सहारकारी नृत्य करना चाहती हूँ, लाओ, लाओ!" उसने दौहित्री का शव भूमि पर रख दिया।

उसके आर्तविलाप से खिचकर चारो ओर दूरी पर अनेक सैनिक उसको देख रहे थे। भारत की सम्राज्ञी की क्षण-भर में ही यह दशा देखकर उनके हृदय मे उसके प्रति करुणा जागने लगी।

"कहाँ है मेरी तलवार?" दोनो हाथ आकाश मे उठाकर उसने गर्जना की।

एक दासी बोली—"हौदे पर से न-जाने कहाँ गिर गई।"

"कोई दूसरी दो। मै आज मित्र-शत्रु, नर-नारी, छोटा-बडा, बच्चा-बूढा, काला-गोरा, इन सब भेदो को भूलकर तलवार चलाऊँगी। लाओ, लाओ।" उसने एक सैनिक से तलवार छीन लेने को हाथ बढाया—"लाओ, तुम्हे ही केवल जीवित छोडूँगी।"

अचानक महावतखाँ की सेना के कुछ सरदार और सैनिकों ने वहाँ

पर आकर कहा—"सम्राज्ञी नूरजहाँ की जय हो !"

"कौन हूँ मै, सम्राज्ञी ?"

"हाँ, हाँ, आप सम्राज्ञी हैं ।"

सम्राज्ञी का भाव सयत हुआ, उसे अपनी स्थिति अवगत हुई—"मैं सम्राज्ञी हूँ । सम्राट् कहाँ हैं ?"

"तबू मे ।" किसी ने उत्तर दिया ।

"बदी हैं ?"

किसी ने कोई उत्तर नही दिया ।

"हाँ, बदी हैं । सेनापति ने उन्हे बदी किया है । चलो, मुझे भी वही पहुँचा दो । मै भी स्वेच्छा से बंधन पहनकर उनके साथ रहना चाहती हूँ । यह सर्वथा अनुचित है, मै मुक्त रहूँ, और सम्राट् बंधन मे ।"

उस सुदर और आत-शोक-संतप्त मुख की करुणा पर निछावर हो गए समस्त सेना के दर्शक । उनकी स्वामिभक्ति जाग पडी । एक ने कहा—"कौन है वह, जो हमारे सम्राट् को बंदी कर सकता है ।"

नूरजहाँ बोली—"तुम्हारा सम्राट् न्याय-परायण है, दयालु है, प्रजा-प्रिय है—नही, उसे कोई बदी नही कर सकता । सैनिको, मेरी आज्ञा मानोगे ?"

"सम्राज्ञी नूरजहाँ की जय हो !"

"चलो, हम सम्रट् को छुडा लेंगे ।" नूरजहाँ ने कहा ।

सारी सेना में एक बिजली-सी दौड गई । नूरजहाँ दौहित्री के शव को होदे में रखकर आगे बढी । तमाम सेना ने उसका अनुसरण किया । जो आगे मिलते गए, वे विरोध छोडकर उसी के साथ सम्मिलित होते गए ।

दीपक जलने का समय था । महावतखाँ सम्राट् के तबू में उनके सम्मुख खडा था । तंबू के भीतर अनेक नगी तलवारें लिए सैनिक

जागरूक थे ।

सम्राट् कह रहे थे—"सेनापति ! तुमने केवल मुझे लौह-शृखलाएँ नही पहनाई हैं । तुमने मेरी सुरा को और भी अधिक बाँध दिया, यह हथकडी-बेडी से अधिक पीडा-भरा है ।"

"उचित मात्रा दी जायगी सम्राट् !"

सम्राट्-सबोधन सुनकर भौचक्का रह गया जहाँगीर—"सम्राट् ! और, तुम अभी तक मुझे सम्राट्-सबोधन ही दे रहे हो । क्यो, तुम क्यो अपनी महत्त्वाकाक्षा मे पश्चात्पद हो गए ?"

"नही सम्राट्, कोई महत्त्वाकाक्षा नही रखता हूँ मै । यह सेवक सदैव आपका हिताकाक्षी है । केवल आपको एक शिक्षा देने के लिये ही आपके सम्मुख यह दृश्य रक्खा गया है ।"

"तुमने मेरी सुरा-पान की आदत छुडाने को यह प्रयास किया है क्या ? फिर भूल की है । कुछ भी करो तुम । नूरजहाँ कहाँ हैं ?"

"सेनापतित्व का भाव ज्ञात हो रहा होगा उन्हे ।"

"यही ला दो उन्हे । बहुत कम वह मेरी आँखो की ओट मे रहती हैं । वह मेरे इस बधन मे तुम्हारा आभार मानकर प्रविष्ट हो जावेंगी ।

"नही सम्राट् ! यही शिक्षा उद्दिष्ट है मुझे, छोड दो नूरजहाँ को ।"

"कदापि नही । जहाँगीर स्वतन्त्र होता, तो तुम यह शब्द कदापि न निकाल सकते ।"

"वह सुरा से अधिक भयकर हैं । जिन्होने ऐसा नही कहा, वह चाटुकार हैं । यदि उनका त्याग नही कर सकते, तो राज्य के सूत्रो पर से धीरे-धीरे उनके हाथ हटा दीजिए ।"

"हहहह ! राज्य के सूत्र !" ठहाका मारकर हँसे सम्राट्—"साम्राज्य तो एक साधन-मात्र है—उस रूप की उपासना के लिये पूजा-सामगी ! तुम नही जान सके अभी तक, क्यो सेनापति ? नूरजहाँ ही तो साधना है । सिद्ध क्या है, कोई नही बता सका, मै भी जानता । इसी से केवल

साधना से सतुष्ट हूँ। तुमने सुरा के साथ उनकी तुलना कर सुरा को उनसे श्रेष्ठ बताया है। इसलिये कि मै उनके निरतर अनुरोध और अवरोध पर भी अब तक सुरा का परित्याग नही कर सका ? सच पूछो, तो वे दोनो समान ही हैं। फिर किसके कहने से किसका त्याग किया जा सकता है। तुम मुझे शिक्षा देने के लिये गुरु बनाना चाहते हो। बताओ, तुम्ही बताओ।"

"हाँ सम्राट्, बताऊँगा। यह न समझिए, यह केवल एक महावतखाँ बोल रहा है। इसके साथ आपके राज्य के विद्वानो, पडितो, मुल्लाओ और अनुभवियो की वाणी भी सबद्ध है। वे सब कहते हैं, नारी की सीमा है, उसकी मर्यादा है।"

"तुम दूसरे प्रवाह में बह गए! ठहरो सेनापति! पहले मुझे अपनी बात पूरी कर लेने दो। सारी सृष्टि कामनामय है। केवल जीव ही नही, जड भी तो। (हरियाली अन्न उपजाती है, फूल खिलाती है, बादल बरसते हैं, और जल नदियो की रचना करता है। समुद्र ज्वार-भाटा उत्पन्न करता है, और ज्वालामुखी आग बरसाता है। पवन शोषण करता है, और ताप-विदग्ध! सुरा उस कामना की वल्लरी का सिंचन कहो या दीपक का स्नेह! केवल सुरा ही नही, सौंदर्य भी, कीर्ति और यश की वीप्सा भी, विद्या भी, सब कुछ, मैं तो कहता हूँ भगवान् की उपासना भी, ये सब सुरामय हैं—उत्तेजक है।")

"सम्राट् न-जाने क्या कह रहे है।"

"मै तो समझ रहा हूँ तुम्हे। तुम लौट-फिरकर यही कहना चाहते हो कि नूरजहाँ को केवल अत पुर तक ही सीमित रक्खो। क्यो मित्र! नर और नारी, दोनो समान क्यो नही है? क्या नारी मनुष्य का-सा हृदय और मस्तिष्क नही रखती? फिर उसकी उपेक्षा क्यो?"

"वह रण के सूत्र धारण नही कर सकती।"

"कर क्यो नही सकती? विश्व के इतने बडे विस्तार और इतिहास

की इन अगणित शताब्दियो के अधकार मे ढूँढने का भी क्या परिश्रम है। अभी सम्राट् अकबर के शासन-काल मे ही चाँदबीबी का नाम भूल गए क्या ? जिस वीरता और कौशल से उसने मुगलो की सेना से लोहा लिया, उसका यशोगान करते हुए मैने सम्राट अकबर को कई बार सुना। तुम नूरजहाँ को वीरागना नही समभते, मै समभता हूँ। कहाँ हैं वह ?"

महावतखाँ मन-ही-मन सोच रहा था—"कोस रही होगी कही पर अपने दुर्भाग्य को।"

"निश्चय ही वह मुझे बधन से छुडाने को सैन्य एकत्र कर रही होगी!"

"हाँ महाराज!" बडे तीखे व्यग्य के साथ महावतखाँ ने अपने अधर विस्फारित किए।

"क्यो, क्यो सेनापति! क्या सेना सब-की-सब तुम्हारे ही वश में हो गई ?"

अचानक दूर पर, बडा कोलाहल सुनाई दिया।

महावतखाँ ने घबराकर उधर कान दिए।

"साम्राज्ञी नूरजहाँ की जय!" निकट ही जय-घोष सुनाई दिया।

"आ गई! कहा न था मैंने मित्र! हैं, तुम भागते कहाँ को हो? ठहरो, देखो, खड्गधारिणी को देखो, कैसी प्रियदर्शना है वह!"

महावतखाँ तंबू के बाहर निकल आया। नूरजहाँ को बदी कर लेने मे भी सफल हो गया। महाराज और महारानी दोनो के मान-सभ्रम की पूरी-पूरी रक्षा कर उसने उन दोनो को अपनी और अपने सैनिको की दृष्टि से कई दिन तक घेर रक्खा।

जो उन दोनो को भ्रमण-अटन की स्वतत्रता प्राप्त थी, उसके कुछ दिन के अभिनय से नूरजहाँ ने सैनिको और प्रहरियो का विश्वास जीत लिया।

एक दिन जब महाबतखाँ अपने तबू मे भविष्य की परिकल्पनाओ पर ऊघ रहा था, नूरजहाँ जहाँगीर के साथ हाथी पर चढकर घूमने को

निकली। उसने अवसर पाकर महावत के हाथ का अंकुश ले लिया, और हाथी को नदी के पार ले चली।

चारो ओर कोलाहल मच गया! प्रहरी आज व्यस्त थे, और महावतखाँ अपने तंबू से बाहर आ उनके रोकने का कोई प्रबंध न कर सका। वह निराश होकर बोला—"क्या करूँ अब? नूरजहाँ मेरे उज्ज्वल उद्देश्य को नहीं समझ सकती। वह उस पार अपनी सेना के बीच में पहुँच जायगी शीघ्र ही। आज उसके हाथ मेरी गर्दन आई है। वह कदापि उसे अब अधिक क्षण मेरे कंधो पर स्थिर न रहने देगी। कहाँ जाऊँ फिर? राजधानी भी निरापद न रहेगी। खुर्रम के पास दक्षिण को जाना ही एकमात्र उपाय है। उसके साथ मेरे विचारो का साम्य होगा।"

महावतखाँ तुरत ही अपने घोड़े पर चढ़ बड़े वेग से उसे भगाकर चल दिया। उसने उस निशा और अनवगत मार्ग की कुछ भी चिंता न की।

नूरजहाँ ने सेना के बीच में पहुँचकर कहा—"कहाँ है वह नराधम! महावतखाँ! सैनिको। पकड़ो जाओ उसे, जो उसका कटा हुआ मुंड मेरे पास लावेगा, उसे मै सुवर्ण और रत्न-मणियो से भर दूँगी।"

अनेक सैनिक उसकी आज्ञा का पालन करने को दौड़े।

सम्राट् ने कहा—"नूरजहाँ, क्षमा करो उसे। उसका शुद्ध उद्देश्य था। केवल नाम-मात्र का बंधन दिया था उससे मुझे। मेरी प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रक्खा है!"

"नही महाराज, कदापि नही!" नूरजहाँ ने दौहित्री का शव मँगवाकर सम्राट् के निकट रख दिया—"यह देखिए, सम्राट्! यह निर्दोष बालिका उसी की आज्ञा से मृत्यु को प्राप्त हुई है। इस पर मेरा अमित स्नेह था, सम्राट् को ज्ञात है। मै कैसे धैर्य रक्खूँ? मै क्यो उसे क्षमा करूँ?"

"तुम धन्य हो वीरांगने! इस बालिका को रण-क्षेत्र मे ले आए, यह

हमारी भी भूल थी।"

"भूल कदापि नही सम्राट् ! यह मेरे स्नेह की साक्षी है। मैं सबको क्षमा कर दूँगी, केवल उसे ही नहीं। इस सेना का, जिसने भूलकर उसकी आज्ञा का अनुसरण किया, कोई अपराध नही, जो कुछ भी हो, मै उसे क्षमा करती हूँ। और, उस महावतखाँ के शिरोच्छेदन की राजाज्ञा अभी आपको अपने साम्राज्य-भर मे विस्तारित करनी होगी।"

किसी प्रकार न मानी नूरजहाँ ! उसने उसी समय राजधानी और समस्त सूबों के शासको के पास यह राजाज्ञा भिजवाई कि महावतखाँ सम्राट् के अत्यधिक क्रोध और घृणा का पात्र हुआ है। वह जहाँ भी पकडा जाय, वही उसका मस्तक छिन्न कर सम्राट् के पास भेज दिया जाय। इस राजाज्ञा का पूर्ण करने वाला व्यक्ति भले प्रकार समाहत और पुरस्कृत होगा।

राज्य-भर के लिये घुडसवार दौडाकर ही नूरजहाँ शात हुई। उसने सारी रात दौहित्री के शव पर आँसू बहाने मे बिताई, सम्राट् और कुछ दासियो ने साथ दिया। शेष सेना को आनद-उत्सव मनाने के लिये आज्ञा और साधन दे दिए गए।

दूसरे दिन नूरजहाँ ने दौहित्री की समाधि का प्रबध किया। सम्राट् ने अस्वास्थ्य के कारण काबुल की यात्रा स्थगित कर दी। एक कुशल सेनापति के अधीन समस्त सेना भेज दी गई वहाँ के लिए। सम्राट् नूरजहाँ के साथ अपने प्रिय ग्रीष्म-निवास कश्मीर के प॰ मे बढे। माग मे उन्हे अपने दूसरे पुत्र राजकुमार परवेज की मृत्यु का समाचार मिला। सम्राट् को इस समाचार से बडा शोक पहुँचा, और उनके स्वास्थ्य पर इसका बडा बुरा प्रभाव पडा।

प्रकृति की सुरम्य स्थली मे पहुँचते ही वहाँ के नैसर्गिक वातावरण के दर्शन-मात्र से समस्त रोग और शोक अवसृत हो जायगा, इस आशा पर नूरजहाँ और दल-बल के साथ सम्राट् कश्मीर के पथ में बढ रहे थे।

दौहित्री की मृत्यु से नूरजहाँ का आधा ससार मरुस्थल हो गया था, और आधा जगत !—जब जहाँगीर के मुख पर वह दृष्टि डालती, दिन-दिन उसमे रोग की अधिकाधिक गहराई पाती—और सारा भूगोल उसे शून्य दिखाता।

सम्राट् कश्मीर पहुँचे। जिस आशा से खिचकर गए थे, वह बँधती दृष्टिगत न हुई। रोग बढने लगा, औषधि सहायक न हुई, रस विष हो गया, भोजन अरुचिकर और सारी प्रकृति रूखी और फीकी ! सम्राट् रोग-शय्या-शायी हो गए।

एक दिन सम्राट् ने कहा—"नूरजहाँ ! तुम्हारे दर्शन-मात्र से सारा दु:ख-सताप तिरोहित हो जाता था। अब क्यो नहीं होता ? कदाचित् तुम अब उदास रहने लगी हो, इसी से वह आकर्षण खो गया ! पर तुम्हे इतना चिंतित रहने की आवश्यकता क्या है ?"

नूरजहाँ ने अपने सारे दु:ख भुलाकर प्रसन्नता धारण की।

सम्राट् ने कहा—"नही सम्राज्ञी, तुमने अपने मुख पर जो उत्साह प्रकट किया है, वह बाहर से एकत्र किया हुआ है, इससे स्थायी नही है। इस हिम-प्रदेश मे शरत् का प्रवेश ही सबसे अधिक सुहावना लगता था। हमे आने मे देर नही हुई, फिर क्यों वह आवेश नहीं मिलता मुझे। क्यो नूरजहाँ ! क्या ऋतु अपने यौवन पर नही है ? क्या सचमुच फूलो मे वह रंग, पक्षियो मे वह स्वर, झरनो में वह प्रवाह और गिरिबालाओ मे वह प्रेरणा नही रही ?"

"कुछ शून्यता है अवश्य महाराज !"

"पर हमारे साथ जो हकीम साहब हैं, वह ऋतु के रूप मे कोई कसर नही बताते। वह कहते हैं, शरीर मे रोग और मन मे चिंता हो, तो फिर कही कुछ अच्छा नहीं लगता। मै समझता हूँ, चिंता रोग की पूर्व दूती है, इसी से कहता हूँ, तुम्हे उसके जाल से बचना चाहिए।"

"चाहती तो हूँ मै भी, इन भविष्य के भयावने चित्रो से मुक्त रहूँ,

पर वे स्वयं ही मेरे आगे आकर बनते रहते है।"

"वह भविष्य की भयानकता क्या है नूरजहाँ ?"

नूरजहाँ चुप रही। उसके मन मे जहाँगीर का वह दिन-दिन गिरता हुआ स्वास्थ्य और भी अधिक गिरा हुआ प्रकट हो उठा। उसने अपने अधर सी लिए। उस भयानकता को स्पष्ट करना जहाँगीर की निराशा को बढा देना था।

"निकास कहाँ पर है नूरजहाँ ? कुछ समझ मे नही आया !"

"सुख, उमग और उत्साह का। प्यास लगी है नूरजहाँ !"

"हकीम साहब का बताया हुआ शरबत ही दूँगी।"

"नही नूरजहाँ ! मृत्यु से यह शरबत भी छुडा नही सकता, फिर तुम क्यो मेरे विश्वास पर कुठाराघात करती हो ?"

"विश्वास कैसा ?"

"जीवन-भर सुरा को शक्ति का उद्गम समझता चला आया हूँ। थोडी-सी दे दो। फिर मै धीरे-धीरे इस शय्या को छोडकर तुम्हारे सहारे से थोडी दूर छत पर टहलूँगा। शुभ्र हिमालय पर पडती हुई साध्य रवि की ये सुवर्ण किरणे कदाचित कुछ देर के लिये मुझे रोग से विस्मृति दे दें।"

"नही महाराज, कदापि नही। हकीम साहब का कठोर निषेध पालन करना ही पडेगा।"

"उस व्यक्ति के आग्रह को कोई मूल्य न दोगी, जिसने जीवन-भर तुम्हारी उपासना की है ?"

"तुम्हारी इस दुर्बलता मे सुरा विष के समान है।"

"सुरा के लिये मुझे मृत्यु का भी भय नही है। तुम्हे भी मेरी मृत्यु से घबराना नही चाहिए।"

"नही, नही सम्राट् ऐसा न कहो।" नूरजहाँ ने उनके अधरो पर अपना हाथ रख दिया।

"सुनो, हमे प्रत्येक बात के लिये तैयार रहना होगा। तुम सम्राज्ञी हो। मैंने तुम्हारा सैन्य-कौशल भी देखा है। मेरे अभाव मे अपने जीवन तक सिंहासन पर अधिकार न रख सकोगी क्या?"

'नही सम्राट्!" नूरजहाँ रोने लगी।

"आज तुम्हारे नेत्रो मे दूसरी बार मैंने आँसू देखे हैं।" जहाँगीर-शोक मे भर उठा—"जान पडता है नूरजहाँ! उसकी पुकार निकट ही है।"

"किसकी?"

"मृत्यु की।"

'हे भगवान्!" नूरजहाँ चिल्ला उठी।

"धीरज रक्खो। खुर्रम की ओर से हृदय को स्वच्छ कर लेना। वह आदर-पूर्वक रक्खेगा तुम्हे।"

"नही महाराज! न्यायत. राजकुमार खुसरू का पुत्र यह अधिकार रखता है।"

" इस चेष्टा से कठिनता मे पड जाओगी।

"खुर्रम के शिरोच्छेदन का दंड वैसा ही स्थिर रहेगा।"

"मैं नही समझता नूरजहाँ। पर तुम्हे उसे क्षमा कर देना चाहिए। महावतखाँ उसी के पास चला गया है, और आसफखाँ उसे छोडकर तुम्हारा साथ न देगा।"

नूरजहाँ सिसक सिसककर रुदन करने लगी।

"नही नूरजहाँ, रोने की कोई आवश्यकता नही है। अश्रु सदैव ही हमारे स्वार्थ को खोलते हैं। मैंने तुम्हे इतना दुर्बल नही समझा था। कदाचित् तुम्हारे इस रुदन से अब यह दौड़ अधिक विलबित न रह सकेगी।"

सम्राट् के अतिम वाक्य ने नूरजहाँ के मानस मे उथल-पुथल मचा दा। उसने रुदन शेष किया। उसने सम्राट् के रोग-क्षाण मुख पर

दृष्टि की ।

"हाँ," सम्राट् ने कहा—"रुदन के लिये पर्याप्त समय रहेगा, फिर वह भी तो समय होने से ही बेसुरा नही लगता । मेरी बात मानो नूरजहाँ ! कदाचित् अब जहाँगीर के अनुरोध उँगलियो मे ही गिने जा सकेंगे ।"

एक-एक अग काँपने लगा नूरजहाँ का । वह बल-पूर्वक दबाया गया, रुदन कपन मे प्रकट हुआ । दासी के समान विनीत भाव से नूर-जहाँ उठकर खडी हो गई सम्राट् के सामने हाथ बाधे हुए ।

"अधीर न होओ नूरजहाँ ! अब अधिक नही छिपाया जा सकता, मै मृत्यु की देहली पर खडा हुआ उसके द्वार को खटखटा रहा हूँ । मेर कहना मानो ।"

"क्या आज्ञा है महाराज !"

"ला ही दो एक-प्याला भरकर । तुम्हारे-अभाव मे भी यह मेरी सहचरी थी। इसी से तुम्हारा अनुरोध इसे छुडा न सका । यह तुमसे ज्येष्ठ है । इसे साथ ले जाऊँगा ।"

"और मै ?"

"तुम यही रहोगी ।-तुम्हारी जीवनचर्या के लिये अभी अनेक काम-नाओ के चित्र हैं तुम्हारे मस्तिष्क मे । सुनती ही रह गई तुम, ले आओ न ।"

पराए हाथ-पैरो से जाकर नूरजहाँ एक प्याले मे थोड़ी-सी सुरा भरकर ले आई । उठ नही सक रहे थे सम्राट कई दिनों से । सुरा की गध पाकर उठ बठे—"मृत्यु और जीवन दोनो का मान रखती हुई लाई हो तुम । जितनी भी है, ठीक है ।" सम्राट् ने एक ही साँस मे पात्र रिक्त कर दिया ।

"अब सम्राट विश्राम करे ।"

"नही नूरजहाँ ! चलो, मेरा हाथ पकड लो, बाहर ले चलो मुझे ।"

"नही महाराज, बडी शीतल पवन बह रही है, जान पड़ता है, पहाडी पर कही हिम पडा है । ठड लग जायगी ।"

"अच्छी तरह अग को ढककर चलूँगा । पर्वतो की श्रेणियो को देखना चाहता हूँ ।"

"बादल उठा है । वे सब-की सब ढक गई हैं ।"

"हाँ नूर, बादल उठा है, मै भी समझ रहा हूँ । फिर भी देखूँगा, बादल को ही देखूँगा, चलो ।" सम्राट् ने हठ-पूर्वक कहा ।

नूरजहाँ को साथ देना पडा उनका । उसी रात से सम्राट के स्वास्थ्य मे घोर विकृति उपस्थित हो गई । बडा रौद्र ज्वर उनके चढ़ गया । उतके समस्त अनुचरों में बडी हबडाहट फैल गई ।

ज्वर की अचेतावस्था मे वह कहने लगे—"ले चलो, मुझे अभी राजधानी को ले चलो । मुझे मेरे मित्र-सबधियो के बीच मे ले चलो । मै इतनी दूर, इनने कठिन और ऊँचे प्र्वतों मे प्राण विसर्जित नही कर सकता ।" सम्राट् ने बार-बार इसी विचार की आवृत्ति की ।

अत मे सम्राट् के उपचारको, सहचरो, सरदारो तथा नूरजहाँ ने सम्राट को उसी दशा मे आगरा को ले जाना निश्चय किया । पालकी का प्रबध किया गया । बडी सावधानी से वाहक चले ।

नूरजहाँ पालकी मे ही बैठी सम्राट् के साथ । उपचारक पालकी के दाहने-बाएँ पदल ही चले । मार्ग मे पड़ावों का प्रबंध करने को पहले ही सेवक दोड़ा दिए गए ।

यात्रा के आरभिक कुछ पडावों तक सम्राट् की अवस्था में थोडा-सा परिवर्तन प्रतीत हुआ । नूरजहाँ और साथियो मे आशा फलने लगी, परन्तु पजाब-प्रात मे प्रवेश करते ही फिर रोग बढ़ने लगा ।

एक दिन सम्राट् ने नूरजहाँ से कहा—"बस नूरजहाँ, अब नही खींचा जा सकता मुझसे यह भार अधिक दूर तक ।"

'नही सम्राट्, हकीम लोग सब इस पर एकमत हैं, आपके स्वास्थ्य

मे आशातीत सुधार हुआ है ।"

"होगा नूरजहाँ !" किसी उत्साह के साथ नही कहा सम्राट् ने—आगरा अभी और कितनी दूर है ?"

"बहुत दूर है सम्राट् ! अभी तो हम लाहौर ही नही पहुँचे हैं। दो पडाव और होगा वह ।"

"तब लाहौर ही सही, अच्छा तो है । सारी भूमि उस एक ही भगवान् की तो है । आगरे का मोह हो गया था, जन्मभूमि होने के कारण ।

नूरजहाँ का हृदय धडकने लगा । उसने डरते-डरते पूछा—'किसलिये सम्राट् !"

"जीवन की साधना की सिद्धि के लिये, ध्येय की प्राप्ति को । विश्व की विजय एक भ्रम से भरी महत्त्वाकाक्षा थी । अब ज्ञात हुआ । तुम्हे भी बताऊँगा । मृत्यु ही तो है वह जीवन का लक्ष्य । यह सब विजय-पराजय, उत्सव-शोक, हर्ष-अश्रु के दृश्य चित्रकार के रँगे हुए भ्रम-फलक हैं । यही वह अगाध विस्मृति है, अटूट निद्रा है, शाश्वत शाति है । यही पर बरयात्रा का विश्राम है नूरजहाँ ! सुरा ! वह केवल एक भ्राति थी, अच्छी तरह पहचानता था मै उसे । मन था उसके पीछे, उसीके बल से वह जीवित थी । वे सभी कुछ उपकरण भ्रांति के ही तो हैं । केवल एक अदृश्य छिपी हुई शक्ति, जिसे जगत् ने भाँति-भाँति के नाम और रूपो मे बाँधा है, मृत्यु रूप मे मैं उसे देखूँगा, और वह भ्राति न होगी । कदाचित् समय हो गया !" जहाँगीर ने धीरे-धीरे आँखें बँद कर ली !

नूरजहाँ चिल्ला उठी—"सम्राट् ! क्या इस प्रकार मुझे छोड जाओगे ?"

सम्राट् ने फिर आँखे खोली, बोले—"मुझे फिर वही दो कपोत याद आरहे हैं, नूरजहाँ ! उन्हे तुमने अपनी प्रेरणा से पकडा था । एक स्वय उड़ गया, दूसरा—उडना ही उसका गुण था । वह मेरी मूढ

जिज्ञासा थी । दूसरा भी उड गया !" सम्राट् ने फिर आँखे बद कर ली !

नूरजहाँ आकाशवेधी रुदन करने लगी । उसने सम्राट् को झकझोरा । आँख और अधर इनमे से फिर किसी को न खोला उन्होने । हकीमो ने आकर उनकी नाडी और श्वास की परीक्षा की और कहा—"सम्राट् मृत्यु को प्राप्त हो गए !

सब मिलकर शोक-सतप्ता नूरजहाँ को समझाने लगे ।

बूढे हकीम साहब ने सबसे पहले मुख खोला—"आप स्वय ही समदार है, कवयित्री है । मृत्यु सब ही की नियत है, यह सत्य आपके लिये अगम्य नही है ।"

एक दूसरे मत्री ने कहा—"आप सम्राज्ञी हैं, सम्राट् का निधन कोई हानि की बात न थी, पर राजधानी मे स्थिति दूसरी है । सम्राट् की मृत्यु का समाचार वहाँ पहुँचते ही उथल-पुथल मचा देगा । अत शोक मे अधिक समय देना ठीक नही । सम्राट की समाधि का तुरन्त ही प्रबध कर आगरे को चल देना कर्त्तव्य है ।"

यही किया गया । लाहौर पहुँचकर वहाँ सम्राट् को प्राथमिक समाधि दी गई । समाधि के निर्माण और रक्षा के लिये कारीगर और प्रहरी नियुक्त किए गए ।

यत्न-पूर्वक सम्राट् की मृत्यु का समाचार अपने ही अनुचरो से घेर-कर नूरजहाँ आगरे पहुँची । सारी राजधानी में वह शोक-सवाद फैलते देर न लगी ।

प्रधान मत्री आसफखाँ यह सुनते ही नूरजहाँ के पास दौड़े आए । वह बहन की दयनीय दशा देखकर कातर हो उठे ।

नूरजहाँ ने कहा—"सम्राट् ने अपनी इच्छा मे यही प्रकट किया है कि युवराज खुसरू के पुत्र राजकुमार बुलाकी को ही राजसिंहासन पर बिठाया जाय । तुम मेरे भाई हो, इस न्याय और उचित पक्ष को ही तुम्हारा समर्थन प्राप्त होगा ।"

आसफखाँ ने पूरा विश्वास दिलाया उसे ।

खुर्रम के राजधानी मे अभाव और कुछ समय तक नूरजहाँ का आश्वासन पाने के कारण राजकुमार शहरयार भी सिंहासन पर अधिकार कर लेने को छटपटा उठा । वह सेना का सग्रह और सरदार तथा मत्रियो को अपने पक्ष मे कर अपना बल बढाने लगा, वह नूरजहाँ पर भी अपने मत्र पढने लगा ।

पर नूरजहाँ ने स्पष्ट ही उससे कह दिया—"तुम मेरे जामाता भी हो, इसमे सदेह नही । मुझे न्याय करना चाहिए, सम्राट् की इच्छा की अनुवर्तिन होना उचित है । फिर तुम्हारे कधो मे यह साम्राज्य का भार स्थिर रख सकने की सामर्थ्य नही है ।' नूरजहाँ को राजकुमार शहरयार से आतरिक घृणा हो गई थी । उसको कुछ ऐसा विश्वास हो गया था कि उसकी कन्या की असमय मृत्यु शहरयार की उपेक्षा और उसके अनादर से ही हुई है ।

दुहिता और दौहित्री की मृत्यु से नूरजहाँ के प्राणो मे एक वैराग्य जागने लगा था, सम्राट् के निधन से वह स्थिर होने लगा । जगत् की नश्वरता चैतन्य रहने लगी उसके विचारो मे । सुख-भोग, प्रभुता-ऐश्वर्य की निस्सारता व्यापने लगी उसकी श्वासो मे । केवल हृदय का एक कोना धुल न सका था अब तक ।

उस कोने मे भरी हुई थी खुर्रम की प्रतिहिंसा, उसके विच्छिन्न मस्तक को देखने की एक लालसा । सम्राट् मृत्यु के समय खुर्रम के प्रति अपना हृदय शुद्ध कर लेने का अनुरोध कर गए थे । लौट-लौटकर इस बात पर अटकने लगा नूरजहाँ का मन ।

प्रधान मंत्री आसफखाँ को जब उसने राजकुमार बुलाकी को राज्याधिकारी बनाने मे दत्तचित्त देखा, तो उसका हृदय स्वत धुल गया । उसने राजकुमार खुर्रम की क्षमा-दान की आज्ञा प्रचारित करा दी प्रत्येक सूबे में ।

राजकुमार बुलाकी के सिहासनारोहण का दिन निकट आने लगा। सम्राट् की मृत्यु को अभी एक मास पूरा नही हुआ था।

साम्राज्य को उचित उत्तराधिकारी को सौप, उसकी रक्षा का पूरा प्रबध कर नूरजहाँ लाहौर जाने का विचार करने लगी। वहाँ वह अपनी देख-रेख मे ही सम्राट् के पचत्व की रक्षा करने के लिये सुविशाल समाधि बनवाना चाहती थी। आयु का शेषाश भगवान् के स्मरण मे बिताने के लिये राजनगरी के सघर्ष से दूर जाने को उत्कठित थी, और रावी के तट की उस एकातस्थली मे ही अपनी अतिम निद्रा मे अभिनीत हो जाने को उत्सुक थी।

अचानक शीघ्र ही एक दिन राजधानी मे राजकुमार खुर्रम की मृत्यु का समाचार आया। सारी नगरी मे शोक छा गया। नूरजहाँ को भी इस बुरे सवाद से क्लेश पहुँचा, पर उसके मन के लिए यह एक बडी शाति थी कि वह खुर्रम को समय पर क्षमा कर चुकी थी।

हठात् नगर मे बडा कोलाहल मच गया, सहस्रो मनुष्यों की भीड के साथ खुर्रम की अर्थी राजधानी मे प्रवेश कर रही थी। और, कुछ समय बाद यह भेद खुला कि अर्थी मे खुर्रम छिपा पड़ा था, और उसके साथियो ने वस्त्रो से शस्त्र ढक रक्खे थे। सेनापति महावतखाँ भी राजकुमार के साथ थे।

खुर्रम की सेना सिंहासन पर अधिकार चाहनेवालो पर टूट पड़ी। राजकुमार बुलाकी और शहरयार अपने प्राण बचाकर भागे। उनका पीछा किया गया, वे दोनो पकड लिए, और उन्हे प्राणो से हाथ धोने पडे।

अल्प प्रयास और थोडे ही समय मे राजकुमार खुर्रम ने राजधानी पर अधिकार कर लिया, और मार्ग के तमाम कटक दूर कर लिए। उसे राज्य के मत्रियो और पदाधिकारियो को वश मे करते भी कुछ देर न लगी।

इसकी कल्पना भी न थी नूरजहाँ को। इसके विरोध के लिये कोई भी विचार न उठा उसके मस्तिष्क मे। अत्यत उदासीन होकर उसने एक अभिनय की भाँति देखा इस विचित्र षड्यत्र को सफल होते हुए।

नूरजहाँ की शेष आशा भी चूर-चूर हो गई! सारा विश्व का प्रपच बडी गहराई के साथ उसके मानस मे गड गया। एक विचित्र हँसी उसके अधरो पर फूट पडी, एक अद्भुत तृप्ति उसके नेत्रो मे झलक उठी। साम्राज्य पद्र के शेष बधनो को भी वह कच्चे धागे के समान तोडकर दूर हो गई!

उसी घड़ी से उसने समस्त सुख और ऐश्वर्य का त्याग कर दिया। उसने शोक और निस्पृहता-सूचक, अरजित धवल वस्त्र धारण किए, और एक दर्शिका की भाँति उस साम्राज्य को देखती रही, जब तक जीवित रही।

खुर्रम पिता की दी हुई शाहजहाँ की पदवी धारण कर सिंहासन पर बैठा। उसने नूरजहाँ के त्याग को सराहा, और सदैव उसका सम्मान किया।

नूरजहाँ अट्ठारह वर्ष और जीवित रही। मरने पर रावी के किनारे जहाँगीर की समाधि के निकट ही उसका चिर विश्राम-स्थल हुआ।

छब्बीस वर्ष पहले मैंने अतिम निद्रा मे अनुशयाना नूरजहाँ की वह समाधि देखी थी, काल और अराजकता से विकृत! कभी जो ससार की ज्योति थी, आज उसकी समाधि पर कही दीपक जलने के चिह्न भी नही।

पंतजी की कुछ अन्य श्रेष्ठ रचनाएँ

एक सूत्र (ऐतिहासिक उपन्यास)

हिंदी-साहित्य मे 'एक सूत्र' के समान उपन्यास की रचना आज तक नही हुई। महाकाव्य की प्रबधात्मकता, नाटक की गतिशीलता, कहानी की मुख्य सवेदना आदि तथ्यो का समन्वय एक ही स्थान पर उपन्यासकार ने सर्वोत्तम ढंग से किया है। उपन्यास-कला मे दक्ष पं० गोविंद-बल्लभजी पत के भी किसी अन्य उपन्यास मे इतना आकर्षण नही, जितना 'एक सूत्र' में। उपन्यास के सभी तथ्यो से पूर्ण यह उपन्यास एक ऐतिहासिक सत्य का प्रतिपादन करता है। वातावरण, चरित्र-चित्रण, शैली सभी एक दूसरे के अनुगामी है। मूल्य ३)

अमिताभ (ऐतिहासिक उपन्यास)

सारे जगत् मे वह अहिंसा का जय-घोष करनेवाला, वह पहला समाजवादी, जिसने ऊँच-नीच की दीवार तोडकर धरती पर प्रेम का पवित्र बीज बोया, वह समतावाद का आदि नेता, जिसने पूँजी-प्रभुता, शृगार-विलास, सुख-भोग की तुच्छता और असारता दिखाई, वह प्रेम-भिखारी, जिसका विश्व-प्रेम शत्रु को भी प्यार सिखाकर परिपूर्ण हो उठा, सत्य के विरह मे जिसका बालकाल बीत गया, सत्य की खोज मे जिसने अपना यौवन निछावर कर दिया, और अतिम साँस तक जिसने सत्य को विस्तारित किया, प्रस्तुत पुस्तक उपन्यास के रूप मे अमित आभा-युक्त गौतमबुद्ध का जीवन-चरित्र है। मूल्य ४॥)

मदारी (सचित्र उपन्यास)